

1

विंशद् पुरुष

साक्षात् नानाजी



विंशद्
पुरुष



साक्षात्
नानाजी

विशद पुरुष
साक्षात्
नानाजी

विशद पुरुष साक्षात् नानाजी



दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**

4/19 आसफ अली रोड,

नई दिल्ली-110002

सर्वाधिकार • सुरक्षित

संस्करण • 2017

मूल्य • तीन सौ रुपए

मुद्रक • ग्राफिक वर्ल्ड, नई दिल्ली

VIRAT PURUSH SAKSHAT NANAJI

₹ 300.00

Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road,

New Delhi-110002 • e-mail: prabhatbooks@gmail.com

in association with Deendayal Research Institute,

7-E, Swami Ramtirth Nagar, Rani Jhansi Road, New Delhi-55

e-mail: dridelhi1@gmail.com

Vol. 1 ISBN 978-93-5186-076-1

Set of 6 Vols. ISBN 978-93-5186-082-2 • Price: ₹ 2000.00

आमुख

विराट् पुरुष नानाजी विभिन्न विषयों में अलग-अलग खंडों में पाठकों के सामने प्रस्तुत हैं। लेकिन संकलन के समय एक विधा ऐसी सामने आई, जिसने संपादक मंडल को थोड़ी दुविधा में डाला। वह थे—समय-समय पर नानाजी के साक्षात्कार। विभिन्न समाचार-पत्रों व प्रकाशनों के अतिरिक्त वे संस्थान के प्रकाशन 'मंथन' में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। इन सभी साक्षात्कारों को किसी एक विषय से संबंधित खंड में नहीं रखा जा सकता। इनमें प्रश्नों में विविधता थी और नानाजी के उत्तरों में समग्रता का पुट। इनमें से एक साक्षात्कार तो ऐसा था, जिसमें विभिन्न विषयों पर नानाजी के विचारों को बहुत ही विस्तृत रूप में पढ़ा-समझा जा सकता है।

ऐसा भी महसूस हुआ कि जितने भी साक्षात्कार उपलब्ध थे, उन्हें एक साथ प्रकाशित करने से नानाजी के व्यक्तित्व को समग्रता से समझने में आसानी रहेगी। इसलिए संपादकीय टीम ने निर्णय लिया कि नानाजी के साथ विभिन्न माध्यमों में हुए साक्षात्कारों का एक अलग ही खंड प्रकाशित किया जाए। इनमें से दो-तीन साक्षात्कार ऐसे भी हैं, जिनके स्रोत नहीं मिल पाए, लेकिन ये जिस रूप में टाइप हुए मिले, उससे स्पष्ट होता है कि इन्हें मूल स्रोत से संकलन हेतु ही टाइप किया गया होगा। संपादक मंडल के वरिष्ठ सदस्यों की स्मृति में भी ये साक्षात्कार कहीं छपे जरूर थे। इसलिए हम पूरी जिम्मेदारी के साथ इन्हें प्रथम खंड में प्रकाशित कर रहे हैं। इसी खंड में नानाजी की जीवनयात्रा का वर्णन भी है।

सन् 1995 में श्रीदत्त प्रसाद दाभोलकर द्वारा नानाजी के साथ किया गया यह साक्षात्कार मराठी प्रकाशन 'कालनिर्णय' के दीपावली अंक, 1995 से साभार लिया गया है। मराठी से इसका हिंदी अनुवाद वर्षों तक दीनदयाल शोध संस्थान में नानाजी के सहयोगी तथा 'पाञ्चजन्य' के संपादक रहे श्री यादवराव देशमुख ने किया तथा इसकी प्रस्तावना भी उन्होंने ही श्री दाभोलकर से बातचीत के आधार पर लिखी है। इसके अतिरिक्त श्री दाभोलकर ने एक मनोगत भी लिखा है। वह इस खंड के अंत में दिया गया है। साधारणतया, तकनीकी रूप में ये नानाजी समग्र का हिस्सा नहीं होते, लेकिन साक्षात्कार के पीछे की भावना को समझने में ये मदद करते हैं। साक्षात्कार के बीच-बीच में श्री दाभोलकर की जो टिप्पणियां लिखी हैं, वे काफी लंबी लग सकती हैं, लेकिन



विराट् पुरुष

प्रश्नों व उत्तरों के संदर्भ समझने में वे भी सहायक होंगी, इसलिए उन्हें भी ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तावना तो साक्षात्कार के आरंभ में दी गई है और मनोगत खंड के अंतिम पृष्ठों में। श्री दाभोलकर की टिप्पणियों को इटैलिक (Italics) अक्षरों में दिया गया है। पूरे खंड में प्रश्न समान रूप से काले (Bold) रूप में हैं और नानाजी के उत्तर नॉर्मल फॉण्ट (सामान्य लिपि) में।

विराट् पुरुष

नानाजी देशमुख

जिन दिनों प्रस्तुत वाङ्मय का संकलन व संपादन चल रहा था, उन्हीं दिनों अंग्रेजी की एक उपन्यास शृंखला चर्चा में आई—शिव ट्रायोलॉजी। एक युवा भारतीय लेखक अमीश ने उसमें भगवान् शिव की एक मनुष्य-रूप में कल्पना कर उनकी स्तुति की है। बहुत खूबसूरत वर्णन है। देवों के देव महादेव का उन्होंने दुष्टता का नाश करनेवाले, प्रचंड प्रेमी, महान् योद्धा, नृत्यकला में निपुण, एक करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, परम शक्तिशाली लेकिन फिर भी सब प्रकार के दोषों से मुक्त, अद्भुत वाक्पटु, पूरे ब्रह्मांड को कंपा देनेवाला गुस्सा, लेकिन विशाल, दया व करुणा से भरपूर हृदय, ऐसे व्यक्तित्व के रूप में चित्रण किया है।

लेखक का संभवतः नानाजी से परिचय नहीं रहा होगा। वरना वे नानाजी को सामने रखकर भी एक जीवंत उपन्यास की रचना कर सकते थे—देवताओं के सभी गुणों से परिपूर्ण, राजनीति में दुष्ट लोगों को साफ-साफ खरी-खोटी सुनानेवाले और उन्हें राजनैतिक तौर पर ही नष्ट करनेवाले, स्वयं ब्रह्मचारी लेकिन गृहस्थ जीवन के कट्टर समर्थक व गृहस्थों को प्रेम का पाठ पढ़ानेवाले, महान् रणनीतिकार, ललित कलाओं के प्रेमी, करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली राजनेताओं में से एक, लेकिन महत्वाकांक्षाओं व अहंकार से पूर्णतया मुक्त, वाक्पटुता अद्वितीय, आवश्यकता पड़ने पर गजब का गुस्सा, यानी वही सब गुण, जिनको आधार बनाकर वह उपन्यास लिखा गया।

नानाजी के निधन के पश्चात् हम सबने उनका राष्ट्रऋषि के रूप में स्मरण किया। अपने जीवनकाल में मानव कल्याण के लिए उन्होंने जो साधना की, जो तपस्या की, उसे देखते हुए तो उनके जीवित रहते हुए ही उन्हें इस रूप में संबोधित किया जा सकता था। लेकिन नानाजी को यह स्वीकार्य नहीं होता। चित्रकूट में नानाजी से मिलने व उनके काम को देखने के बाद तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम उन्हें एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति के रूप में ही संबोधित करते थे।

अपने शास्त्रों में विराट् पुरुष की जो व्याख्या की गई है, नानाजी उसके मूर्त रूप थे। आमजन के लिए तो विराट् पुरुष वह है जो चतुष्पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभी में संतुलन बैठा सकता हो।

विराट पुरुष

नानाजी का समस्त जीवन, विचार व कर्तृत्व उन्हें विराट पुरुष के फ्रेम में ही रखते हैं। जिन लोगों के बीच वे काम करते थे, जो वंचित थे, उनके लिए तो नानाजी विराट पुरुष ही थे। नानाजी के सहयोगी रहे लोग या जिन्होंने नानाजी के साथ कुछ भी समय काम किया, वे भी उनके इस वर्णन से सहमत होंगे।

देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान करने से लेकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक प्रचारक के रूप में नानाजी ने पहले राष्ट्रीय राजनीति में और बाद में सामाजिक पुनर्गठन के कार्य में अपनी जो छाप छोड़ी, वह अद्वितीय है।

राजनीति में उनके विरोधी भी उनका लोहा मानते हैं। नानाजी ने देश में राजनीति की विभिन्न धाराओं को राष्ट्रहित के लिए एकजुट करने का जो अनोखा काम किया, उनके अलावा कोई अन्य राजनीतिज्ञ वैसा फिर नहीं कर पाया। यहां तक कि जिस कांग्रेस को हराने के लिए वे जीवन भर प्रयासरत रहे, समय आने पर उन्होंने उसे भी राष्ट्रहित में साथ आने का निमंत्रण देने में संकोच नहीं किया। संघ जीवनपर्यंत उनकी जीवनरेखा रहा। संघ पर जब भी कोई अनर्गल आक्षेप लगा तो नानाजी उसके सामने एक ढाल की तरह खड़े रहे, एक योद्धा के रूप में।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनके सखा व प्रेरणास्रोत थे। लेकिन जब उन्हें लगा कि बदले परिवेश में अन्य विचारों को साथ लेना भी जरूरी हो गया है तो उन्होंने डॉ. राममनोहर लोहिया और आचार्य कृपलानी जैसे लोगों को भी अपने साथ आत्मसात् करने में कोई परहेज नहीं किया। 70-80 के दशकों में ऐसा समय आया जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण अपने राजनैतिक कार्यों के लिए पूरी तरह नानाजी पर निर्भर हो गए।

60 बरस की उम्र होने पर सक्रिय राजनीति छोड़कर सामाजिक पुनर्गठन के काम में उन्होंने स्वयं को समर्पित कर देश के राजनीतिज्ञों के लिए एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उनके इस कदम का बाद में किसी ने अनुकरण नहीं किया और अधिकांश राजनेता दलगत व स्वार्थपरक राजनीति में उलझे रहे। हां, उनके कुछ साथी राजनेताओं ने नानाजी के काम को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान अवश्य दिया।

सामाजिक कार्यों में उन्होंने समाज की पहल और उसकी भागीदारी के आधार पर जो मॉडल देश के सामने प्रस्तुत किया, उसकी सराहना देश भर में होती रही है। आज विदेशों से भी कई शोधार्थी और विद्यार्थी उस मॉडल को समझने व उसे अपने यहां दोहराने की दृष्टि से चित्रकूट आते रहते हैं। देश के तत्कालीन राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री स्वयं इस मॉडल को देखकर आने के बाद इसकी प्रशंसा ही नहीं करते रहे बल्कि इसके अनुसरण की अनुशंसा करने में भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। गोंडा तो प्रारंभ से ही उनकी कर्मभूमि रहा और बाद में बीड़ व नागपुर भी।

नानाजी के बहुआयामी व्यक्तित्व को टुकड़ों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। मानव जीवन में जिस समग्रता के वे आगहरी थे, उन्हें भी उसी समग्रता से देखने की आवश्यकता है। उनके जीवन के हर आयाम, हर पहलू को आनेवाली पीढ़ी के समक्ष रखने का प्रकल्प है यह नानाजी वाङ्मय। नानाजी ने अपने सार्वजनिक जीवन के सात से अधिक दशकों में बहुत कुछ बोला और लिखा। राष्ट्रहित में शायद उससे भी ज्यादा उन्होंने अपने सीने में छुपाकर रखा।

साक्षात् नानाजी

नानाजी द्वारा स्थापित दीनदयाल शोध संस्थान ने उनके निधन के पश्चात् जब 'नानाजी समग्र' प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो उसकी संपादकीय टीम के सामने एक प्रश्न खड़ा हुआ कि नानाजी के विचारों का संकलन कैसे किया जाए? नानाजी के बहुत से सहयोगी उनसे पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। उनके साथ काम कर चुके या उनसे संपर्क में रहे बहुत से सहयोगियों की स्मृति काफी क्षीण हो चली थी। फिर भी लगभग दो वर्ष तक अलग-अलग स्रोतों से सामग्री जुटाने का प्रयास हुआ। संस्थान के दिल्ली व चित्रकूट कार्यालयों में काफी सामग्री मिली थी; लेकिन इमरजेंसी से पूर्व की सामग्री नहीं मिल पाई।

इस तैयारी के प्रारंभिक दिनों में कल्पना यह थी कि नानाजी ने अपने जीवनकाल में जो भी लिखा व बोला, उसे एकत्र कर कालखंड या विषयवार रूप में प्रकाशित किया जाए, ताकि आनेवाली पीढ़ियां जान सकें कि इस युग में भी एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति ने जन्म लिया था। जिसने अपना संपूर्ण जीवन दीन-दुखियों की सेवा, मानव जीवन को सार्थक बनाने, भारतीय मूल्यों के संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने, व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को एकात्म करने, देश की राजनीति को नई दिशा देने, विकास का देशानुकूल, परंतु साथ ही युगानुकूल प्रतिमान खड़ा करने में समर्पित कर दिया।

लगभग पांच हजार पन्नों की सामग्री को संकलित कर उन्हें नए सिरे से कंप्यूटरीकृत किया गया। इस बीच इस बात पर मंथन चलता रहा है कि समग्र को किस रूप में प्रेषित किया जाए—कालखंडानुसार, विषयानुसार अथवा विधानुसार, यानी पत्रों, भाषणों, बौद्धिकों आदि को अलग छपा जाए। यों तो समग्र को कालखंडानुसार प्रकाशित करना सर्वाधिक श्रेयस्कर होता, लेकिन नानाजी के जीवनकाल के एक बहुत बड़े हिस्से का रिकॉर्ड तो बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है। यह कालखंड यानी इमरजेंसी (1975) से पहले का काल।

ऐसा नहीं कि नानाजी व उनके सहयोगियों ने इससे पहले के नानाजी के भाषणों, पत्रों आदि का संग्रह नहीं कर रखा था। स्वयं नानाजी इस बारे में बताते रहे कि इमरजेंसी से पहले का उनका बहुत ही समृद्ध अभिलेखागार कहीं सुरक्षित जगह पर छिपाकर रखा गया था। क्योंकि उन परिस्थितियों में वह राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील था। जिन मित्रों के पास नानाजी की बहुत सी सामग्री थी, उनसे बीच-बीच में नानाजी की अनबन की बात समग्र में कहीं न कहीं पढ़ने को मिलेगी। लेकिन यह अनबन उनके अभिलेखागार के न मिल पाने का कारण नहीं रही होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। बहरहाल, इस महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन कालखंड की सामग्री तथा अन्य कुछ सामग्री अंत तक उपलब्ध नहीं हो पाई। दैवयोग से अगर कभी मिली, तो संस्थान उसे प्रकाशित करने में अपना सौभाग्य समझेगा।

बीते तीन बरसों में सभी संभावित और उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री एकत्र हो पाई, उसके आधार पर नानाजी समग्र को विषयवार प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। लेकिन नानाजी के कुछ वरिष्ठ सहयोगियों का मानना है कि इसे समग्र नहीं कहा जाए। क्योंकि नानाजी के जीवनकाल का एक बहुत बड़े भाग का लेखा-जोखा, जो उन्होंने स्वयं संजोकर रखा था, उपलब्ध नहीं है और उसके बिना उन्हें समग्रता से नहीं देखा जा सकता। वास्तव में, यह बहुत तकनीकी विषय है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर भी नानाजी का व्यक्तित्व समग्रता से देखा जा सकता है। बहुत से साक्षात्कारों व उनके द्वारा बाद में लिखे गए पत्रों आदि में नानाजी ने कई बार अपने उस कालखंड का विस्तार से उल्लेख किया है।

इसलिए उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही यह नानाजी वाङ्मय तैयार करने का निर्णय लिया गया।

विराट् पुरुष

नानाजी ने जिन विषयों पर विशेष जोर दिया, उन्हें प्रमुख रूप से निम्न विषयों में विभाजित किया गया। ये हैं—

1. सामाजिक पुनर्रचना
2. स्वावलंबन
3. शिक्षा
4. लोकनीति व राजनीति
5. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इनमें से प्रथम तीन विषय गोंडा, बीड़ और चित्रकूट प्रकल्पों से संबंधित हैं। इनमें प्रकल्पों की विस्तृत जानकारी (जो नानाजी के स्वयं के शब्दों में ही है), उनके लेख, भाषण, बौद्धिक व पत्रों का संग्रह है। सक्रिय राजनीति से दूर हो जाने के बाद भी नानाजी राजनैतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी लिया करते थे, लेकिन दखल नहीं दिया करते थे। वस्तुतः वह राजनीति से अधिक लोकनीति थी। यह एक ऐसा विषय रहा, जिस पर अन्य लोगों की नजर नानाजी के वक्तव्यों व विचारों पर रही। इसलिए कहीं-न-कहीं राजनीति पर उनके विचार संगृहीत होते ही रहे। संघ के मामले में तो वे जीवनपर्यंत स्वयं को स्वयंसेवक ही मानते रहे, और उनका कर्तृत्व भी उसी अनुरूप रहा। संघ के स्वयंसेवकों व अन्य पाठकों के लिए यह विषय भी बहुत रोचक रहेगा।

लेकिन यह समग्र तैयार करने की अंतिम अवस्था में संपादकों को एक नई समस्या से जूझना पड़ा। पुनरावृत्ति टालने के लिए जब Process of Elimination अपनाया गया, तब महसूस हुआ कि किन्हीं खंडों में सामग्री बहुत ही कम हो गई है और किसी में अधिक। इसलिए विभिन्न खंडों में विषयों का जिस प्रकार समावेश प्रस्तावित था, उसे बदलना आवश्यक हो गया।

वैसे भी इस वाइमय को अब समग्र न कहकर 'विराट् पुरुष नानाजी के जीवन के विभिन्न आयामों के प्रतिबिंब' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। विराट् पुरुष के चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—की प्रतिमूर्ति थे नानाजी। उनके विचारों व कर्तृत्व को इन चारों विषयों में अलग-अलग तो विभाजित नहीं किया जा सकता, न ही यह संभव है, न ही वांछित। इसलिए प्रकाशन व पठनीयता की दृष्टि से इन्हें निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. साक्षात् नानाजी
2. समाजशास्त्री नानाजी
3. अर्थशास्त्री नानाजी
4. शिक्षाविद नानाजी
5. राष्ट्रप्रेमि नानाजी
6. राजनीतिज्ञ नानाजी

उपलब्ध सामग्री के आधार पर उपर्युक्त छह खंड आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं। संपादकीय टीम इनकी

साक्षात् नानाजी

विश्वसनीयता की पूरी जिम्मेदारी लेती है। यों तो प्रकाशन में किसी प्रकार की गलतियाँ न रह जाएं, इसका भरपूर प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी कोई गलती रह गई है तो उसके लिए संपादकीय टीम क्षमाप्रार्थी है।

इसके साथ ही सुधी पाठकों से निवेदन है कि अगर उन्हें नानाजी से संबंधित सामग्री कहीं भी उपलब्ध होने का भान होता है तो कृपया संस्थान के पते या दूरभाष पर संपादक को सूचित करने का कष्ट करें।

इस वाङ्मय के प्रकाशन में अनेकों लोगों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग रहा है। संस्थान के संरक्षक व पालक माननीय मदनदासजी इसमें निरंतर रुचि लेते रहे, इसकी प्रगति की जानकारी लेते रहे, मार्गदर्शन व सुझाव देते रहे। प्रधान सचिव डॉ. भरत पाठक ने चित्रकूट में जो सामग्री थी, उसे संपादकीय टीम को उपलब्ध कराने में स्वतःस्फूर्त भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व में चित्रकूट की टीम ने बिना किसी हस्तक्षेप के बहुत ही सटीक और व्यावहारिक सुझाव दिए। नानाजी के साथ भरतजी का लंबा अनुभव संपादकीय टीम के लिए बहुत काम आया। नानाजी के प्रति असीम भक्ति-भाव में डूबे संगठन सचिव श्री अभय महाजन को तो इसके प्रकाशन की चिंता निरंतर सताए रहती थी। उसके लिए उन्होंने कभी भी किसी भी प्रकार के संसाधनों की समस्या खड़ी नहीं होने दी। कुछ ऐसी समस्याओं के समाधान में भी उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही, जिनका उल्लेख किया जाना वांछनीय नहीं है।

नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. देवेंद्र स्वरूपजी और श्री यादवराव देशमुख से भी प्रारंभिक काल में विस्तार से चर्चा हुई। संस्थान के सचिव तथा दीर्घकाल तक नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. महेश चंद्र शर्मा पिछले तीन वर्षों में लगातार इसकी तैयारियों में रुचि लेते रहे। वाङ्मय का प्रथम प्रारूप उन्हीं के मार्गनिर्देशन में और सहमति से तैयार हुआ तथा उसका वर्तमान स्वरूप भी। हर कदम पर उन्होंने वाङ्मय के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया।

श्रीमती सुमेधा मिश्रा ने इसके प्रकाशन में सूत्रधार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बहुत विशाल भंडार था उनके सामने। उसमें से छंटाई करना, पुनरावृत्ति को टालना, संपादन करना, संदर्भ ढूँढ़ना, सामग्री को सिलसिलेवार संजोना, सचमुच भारी-भरकम काम था। इसके लिए लगन, निष्ठा, मेहनत व तन्मयता के साथ-साथ धैर्य की भी आवश्यकता थी। इन सभी गुणों का सुमेधाजी ने खूब परिचय दिया।

संस्थान के हर काम में सहयोगी रहने वाले पत्रकार राकेश शुक्ल ने संपादन में भी एक गुणी सहयोगी की भूमिका निभाई। समय-समय पर अन्य पत्रकार मित्रों ने भी पन्नों को पलटा और अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

संस्थान के दिल्ली कार्यालय में उपमहाप्रबंधक और वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री अमिताभ वशिष्ठ ने वाङ्मय के प्रकाशन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं जुटाकर काम को आसान किया। नानाजी के साथ बरसों तक कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करनेवाले संस्थान के महाप्रबंधक मेजर टी.आर. वर्मा इस महायज्ञ के लिए सदैव उपस्थित रहे।

बहुआयामी नानाजी के अनन्य सहायक रहे हेमंत पांडे संस्थान के हर काम में बहुपयोगी रहते हैं। नानाजी के साथ उनका लंबा अनुभव बहुत काम आया। इस वाङ्मय के प्रकाशन में भी उनकी उपयोगिता

विराट् पुरुष

हर कदम पर महसूस हुई और काम आई। ऐसे ही अंशुमान सिंह भी ऑलराउंडर हैं। हर किसी तरह के काम में मुसकराते हुए प्रस्तुत रहे। मुकेश का संस्थान या नानाजी से पहले का कोई परिचय नहीं रहा। लेकिन उन्होंने बहुत जल्दी ही पूरे काम को अच्छे से आत्मसात् कर लिया। श्री गब्बर सिंह रावत ने संस्थान के अभिलेखागार से पुरानी पुस्तकें व अन्य संदर्भ ढूँढ़ने में बहुत मदद की।

सुश्री दीपा सूद लगभग एक दशक से संस्थान के प्रकाशनों हेतु ग्राफिक व लेआउट डिजाइनिंग में जुड़ी हुई हैं। मामूली से संकेतों से ही नानाजी की पसंद, नापसंद को समझ जाती हैं और उसी के अनुरूप आउटपुट देती हैं।

प्रभात प्रकाशन किसी भी राष्ट्रवादी प्रकाशन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। नानाजी के लिए तो प्रभात कुमारजी ने स्वयं को समर्पित कर ही रखा है। उन्होंने इस वाइमय के प्रकाशन की जिम्मेदारी स्वेच्छा से ली। उनका हार्दिक साधुवाद।

इस महत्वपूर्ण प्रकाशन में सहयोग देने वाले जिन सहयोगियों के नाम यहां उल्लेख होने से रह गए हैं, उनसे करबद्ध क्षमाप्रार्थना।

युगाब्द 5116, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी
11 अक्टूबर, 2014, नई दिल्ली

अतुल जैन
संपादक

(प्रस्तुत वाइमय में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त नानाजी ने अपने जीवनकाल में एक पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' शीर्षक से 1979 में लिखी थी, जिसे दीनदयाल शोध संस्थान ने प्रकाशित किया था। उस समय देश भयंकर राजनैतिक झंझावात से गुजर रहा था। संघ के बहाने कुछ राजनैतिक तत्त्वों ने देश को फिर से अस्थिरता के दौर में ढकेल दिया था। इस पुस्तक में राजनैतिक दुर्भावना के शिकार संघ का विचारोत्तेजक अध्ययन अद्वितीय है। अगस्त 2011 में प्रभात प्रकाशन ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।)

विषय-सूची

आमुख

v

विराट् पुरुषः नानाजी देशमुख

vii

1. अर्वाचीन ऋषि : राष्ट्र को समर्पित	1
2. आनंद यात्री : एक खोज यात्रा	21
3. बुजुर्गों! सिंहासन खाली करो	62
4. राष्ट्रीय एकता : सत्ताभिमुखी राजनीति त्यागनी होगी	65
5. लोकतांत्रिक प्रणाली : आत्मस्तुति और परनिंदा त्याज्य	74
6. राष्ट्रीय एजेंडा : नेतृत्व में नैतिकता उभरे	82
7. ग्रामोदय : विश्वोदय का मार्ग	86
8. जनसहभागिता : समाज की समृद्धि का मंत्र	91
9. आर्थिक विकास : हर नागरिक स्वावलंबी बने	96
10. सहजीवन : विवादमुक्त समाज का पथ	99
11. सामाजिक पुनर्रचना : लोकशक्ति व राजनीति परस्परपूरक बनें	101
12. राष्ट्र निर्माण : समाज का हर घटक उत्तरदायी	106
13. पंथनिरपेक्षता : विभेद की नीति छोड़नी होगी	109
14. एकात्म मानववाद : व्यावहारिक अनुसंधान की आवश्यकता	112
15. अटल बिहारी वाजपेयी : अद्भुत व्यक्तित्व के धनी	116
16. मानव विकास : अनुकूल व्यवस्थाओं का पुष्पन	121
17. भारतीय अर्थव्यवस्था : सहजीवन बने आधार	125
18. ग्रामोदय : जनाक्रोश मिटाने का समाधान	128
19. ग्राम चेतना : नेतृत्व अपनी जिम्मेदारी समझे	130
20. अक्षय गांव : स्वावलंबन बिना संभव नहीं	137
21. अनुलग्नक	
(i) मनोगत	152
(ii) दो शब्द अनुवादक के	158
(iii) समग्र विकास के माध्यम से समग्र क्रांति	160

अर्वाचीन ऋषि राष्ट्र को समर्पित

अब से 98 वर्ष पूर्व 11 अक्टूबर, 1916 को शरद पूर्णिमा की चांदनी सब ओर छिटकी हुई थी। तब महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र के परभणी जिले के हिंगोली तालुका के कडोली नामक छोटे से गांव में अमृतराव देशमुख की धर्मपत्नी राजाबाई की कोख से एक पुत्र ने जन्म लिया। तीन पुत्रियों और एक पुत्र के बाद यह बालक पांचवां और सबसे छोटी संतान था। देशमुख घराना होने के कारण अमृतराव के पास प्रतिष्ठा और प्रभाव तो था, पर इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण एवं देशमुख परिवार के लोकाचार को निभाने लायक आर्थिक साधन नहीं थे। लंबे काल तक निजामशाही के अधीन रहने के कारण उस क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा तक की सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं। अमृतराव और राजाबाई दोनों ही अनपढ़ थे। उस समय कौन सोच सकता था कि अभाव और अशिक्षा की गोद में जनमा यह बालक किसी दिन पूरे देश की श्रद्धा और प्रेरणा का केंद्र बन जाएगा और राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने सफल कर्तृत्व की जय पताका फहराएगा? अब लगता है, शायद उस रात शरद पूर्णिमा स्वयं ही राजाबाई की कोख में सिमट आई थी।

शिशुकाल में ही नाना माता-पिता की स्नेहछाया से वंचित हो गए। बड़ी बहन लक्ष्मीबाई का विवाह अकोला जिले के रिसौड़ में प्राइमरी स्कूल के शिक्षक दत्तात्रेय देशपांडे के साथ हो गया। दूसरी बहन मैनाबाई नांदेड़ के बरहाडे परिवार में ब्याही गई। तीसरी बहन सखुबाई या बायडाबाई का विवाह नांदेड़ जिले में जुन्नी नामक स्थान में एक बड़ी उम्र के विधुर के संपन्न परिवार में हुआ। नाना के पालन-पोषण का भार बड़े भाई आबाजी देशमुख पर आ पड़ा। अभाव और अशिक्षा के घने अंधेरे से नाना को कितना विकट संघर्ष करना पड़ा, इसका वर्णन उनके अपने शब्दों में ही जानें। 15 नवंबर, 1986 को अपनी ममेरी बहन को एक निजी पत्र में नानाजी ने लिखा, “कडोली में मेरी मां का निधन हुआ था। सच तो यह है कि उसने आत्महत्या की थी। मैं बहुत छोटा था। कडोली बिलकुल ही देहात है। पिताजी अनपढ़ थे। घर में शिक्षा का वातावरण

लेखक श्री देवेंद्रस्वरूप देश के लब्धप्रतिष्ठित इतिहासकार हैं। कई पुस्तकों के रचयिता हैं, देश के कई अखबारों में समसामयिक विषयों पर नियमित रूप से लेख लिखते हैं। साप्ताहिक पाञ्चजन्य के संपादक व दीनदयाल शोध संस्थान के उपाध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं। नानाजी की जीवन-यात्रा लिखने के लिए उनके अनन्य सहयोगी रहे देवेंद्रजी ही सर्वाधिक आधिकारिक व्यक्ति हैं।

विराट पुरुष

नहीं था। इसी वजह से मेरी स्कूली शिक्षा ठीक से नहीं हो पाई। बायडाबाई (सखुबाई) का विवाह हुआ नांदेड जिले के गांव जुन्नी के परिवार में। यह उसके पति का दूसरा विवाह था। उनकी पहली पत्नी का निधन हुआ था। वे आयु में बहुत बड़े थे। घर में केवल बायडाबाई व उसके पति, जो खेती करने पास के गांव में चले जाते थे, घर में बाई को अकेले रहना पड़ता था। मैं घर में छोटा था, इसलिए मुझे उसके साथ रहने के लिए जुन्नी भेजा गया। वहां न स्कूल था, न शिक्षक। चौबीस घंटे खाली समय में बाई के साथ पते खेलना, इतना ही काम। खेलते-खेलते मेरी उम्र बढ़ती जा रही थी। मैं 11 साल का हो गया। 1927 की बात है। ताई (लक्ष्मीबाई) के पति का स्थानांतरण चिंचांबा से रिसोड़ में हुआ था। ताई को मेरे प्रति दया आई और वह करीब-करीब जबरदस्ती करके मुझे जुन्नी से अपने पास रिसोड़ ले गई। वहां पर मुझे 11 साल की उम्र में तीसरी कक्षा में प्रवेश दिलाकर दत्तोपंत मुझे रोज घर में पढ़ाते थे। उसके बाद मुझे भाऊ मामा (भगवंतराव देशपांडे पार्डीकर) ताई के यहां से अपने यहां ले आए, तब से तुम्हारा-मेरा परिचय। तुम्हारी भी मां नहीं थी, शायद इसीलिए तुम्हारे प्रति मेरे मन में आत्मीयतापूर्ण लगाव उत्पन्न हुआ।”

मां ने आत्महत्या क्यों की? इसका उत्तर भी नानाजी के ही एक अन्य निजी पत्र में मिल जाता है। 19 जुलाई, 1984 को सौ. नीलम देशपांडे को अतिथि-सत्कार का महत्त्व बताते हुए नानाजी लिखते हैं कि “अतिथि के द्वारा व्यवस्था में कमी का उल्लेख तो बहुत ही लज्जा का विषय है। मेरी जन्मदात्री मां ने इसी एक कारण से आत्महत्या कर ली थी, जिसकी जानकारी शायद किसी के स्मरण में नहीं है। उसका घाव आजीवन मेरे हृदय पर बना रहनेवाला होने के कारण इस बात को मैं बहुत ही महत्त्व देता हूँ।”

स्पष्ट है कि आर्थिक दुरवस्था के कारण नानाजी की मां घर आए अतिथियों का यथोचित सत्कार नहीं कर पाती थीं, जिसकी पीड़ा उन्हें कचोटती रहती थी। ऐसे ही किसी अवसर पर घर में कुछ न होने से उद्ध्विग्न मनःस्थिति में उन्होंने घर के पीछे स्थित कुएं में छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। नानाजी डेढ़ या दो वर्ष की आयु में ही मां के वात्सल्य से वंचित हो गए। यह घटना गहरा दंश बनकर उनकी चेतना में समा गई। 21-22 जून, 1997 को हिंगोली के डॉ. हेडगेवार रुग्ण चिकित्सालय के कार्यक्रम से निपटकर, उन्होंने 23 जून को अपने गांव कडोली जाकर उस कुएं की विधिवत् पूजा करके एक प्रकार से मां का तर्पण किया था।

नौ वर्ष की आयु तक नानाजी ‘क ख ग’ भी नहीं पढ़ पाए, पर विधाता ने उन्हें कुशाग्र बुद्धि दी थी, जिसके बल पर वे रिसोड़ में आठवीं कक्षा तक प्रत्येक कक्षा में प्रथम स्थान पाते रहे। रिसोड़ में ही नानाजी का संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से स्थापित हुआ। नियति उनकी जीवन की दिशा तय करने लगी। मैट्रिक तक की पढ़ाई के लिए उन्हें वाशिम आना पड़ा। वहां उन्हें पाठक परिवार का आश्रय मिला। इस परिवार में नानाजी के पिता और बड़े भाई का पहले से आना-जाना था। तीनों पाठक बंधु (भाऊ, तात्या और आबाजी) नानाजी से बहुत स्नेह करते थे। छोटे भाई आबाजी तो नानाजी के समवयस्क और सहपाठी ही थे। नानाजी उस परिवार का अंग बन गए। सहज रूप

साक्षात् नानाजी

से घर के सब काम करने में सहयोग देने लगे। वाशिम में संघ-कार्य बहुत प्रभावी था। डॉ. हेडगेवार भी बहुधा वहां आते रहते थे, वाशिम में ही 1934 में डॉक्टरजी ने 17 स्वयंसेवकों को संघ की प्रतिज्ञा दी। इन 17 में नानाजी एवं उनसे 10 साल बड़े उनके ममेरे भाई कृष्णराव भगवंत देशपांडे, एडवोकेट भी थे। तीनों पाठक बंधु भी संघ के स्वयंसेवक थे, वाशिम में नानाजी पूरी तरह संघ-कार्य में रम गए। संघ-मार्ग से राष्ट्रसेवा का भाव उनके मन में दृढ़ होने लगा। 1937 में मैट्रिक की परीक्षा पास करके प्रश्न उठा कि आगे की पढ़ाई कैसे हो? आबा पाठक नानाजी के सहपाठी थे। दोनों के पास ही बाहर जाकर पढ़ने के लिए साधन नहीं थे। इसका नानाजी की कल्पक बुद्धि ने उपाय खोजा। वे और आबा पाठक शहर से फल, सब्जी तथा अन्य घरेलू सामग्री खरीदकर थोड़े से अधिक भाव पर संपन्न परिवारों में पहुंचाने लगे। इस प्रकार दो वर्ष परिश्रम करके उन्होंने आगे की पढ़ाई के लिए कुछ धन इकट्ठा कर लिया। 1939 में चार मित्र, नानाजी, आबा पाठक, बाबा सोनटक्के और बाजीराव देशमुख, सभी इकट्ठे राजस्थान के पिलानी बिड़ला कॉलेज में अध्ययन के लिए रवाना हो गए।

पिलानी में नानाजी की जन्मजात प्रतिभा और क्षमता का प्रस्फुटन हुआ। 18 रुपए की एक जापानी साईकिल के सहारे वे संघ-कार्य करते और जीविकोर्जन करने के साथ ही कॉलेज में चित्रकला, अभिनय और भाषण प्रतियोगिताओं में भाग लेते। शाखा पर कबड्डी और कॉलेज में फुटबॉल की टीमों में बढ़-चढ़कर खेलते। नेतृत्व का उनका गुण भी सबको दिखाई देने लगा। उस कॉलेज के संस्थापक सेठ घनश्याम दास बिड़ला की सूक्ष्मदृष्टि से नानाजी की ये अपार क्षमताएं छिपी न रहीं। उन्होंने कॉलेज प्रिंसिपल सुखदेव पांडे को कहा कि मैं इस लड़के को अपने निजी सहायक के रूप में लेना चाहता हूं। उसे भोजन-आवास की सुविधा के अतिरिक्त 80 रुपए मासिक पगार भी दूंगा। उस युग में एक कॉलेज विद्यार्थी के लिए यह सुविधा व वेतन बहुत बड़ा था। पर नानाजी संघ-मार्ग से राष्ट्रसेवा के लिए जीवन-समर्पण का संकल्प ले चुके थे, इसलिए उन्होंने बिड़लाजी के इस प्रलौभक प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

वर्ष 1940 में वे संघ की प्रथम वर्ष शिक्षा के लिए नागपुर गए। वहां उन्होंने डॉ. हेडगेवार को असाध्य बीमारी से जूझते देखा। उनके अंतिम भाषण को सुना। वर्ग के बाद डॉक्टरजी की चिता को धधकते देखा। इस सबका उनके संवेदनशील राष्ट्रभक्त अंतःकरण पर भारी प्रभाव हुआ। उन्होंने पढ़ाई को बीच में ही छोड़कर संघ का पूर्णकालिक कार्यकर्ता बनने का निश्चय कर लिया। डॉक्टरजी के वरिष्ठ सहयोगी बाबासाहेब आटे का उन पर भारी प्रभाव था। आटेजी ने उन्हें भाऊ जुगादे के साथ आगरा शहर में संघ कार्य के लिए भेज दिया। आयु के 24वें वर्ष में कॉलेज की पढ़ाई को बीच में छोड़कर नानाजी आगरा पहुंच गए। आटेजी के निर्देशानुसार 3 जुलाई को डॉक्टरजी के श्राद्ध-दिवस पर आगरा में संघ शाखा शुरू हुई। इसी समय पं. दीनदयाल उपाध्याय कानपुर से बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करके अंग्रेजी में एम.ए. की पढ़ाई करने आगरा पहुंच गए। वे कानपुर में संघ के अच्छे कार्यकर्ता बन चुके थे। अतः आगरा में ये तीनों कार्यकर्ता एक ही कमरे में रहने लगे। उस अल्प सहवास में नानाजी के मन में दीनदयालजी की संघनिष्ठा, बौद्धिक क्षमता, आदर्शवादी

विराट पुरुष

प्रकृति और सहज-सरल स्वभाव के प्रति जो आत्मीयता व श्रद्धाभाव पैदा हुआ, वह जीवन के अंत तक बना रहा।

उन दिनों संघ के पास पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की संख्या बहुत थोड़ी थी और संघ-कार्य से अछूता क्षेत्र बहुत बड़ा। अतः आगरा में तीन-तीन श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं का जमघट अनावश्यक लगा। नानाजी को आगरा से भाऊराव देवरस के पास कानपुर भेज दिया गया। भाऊराव ने उन्हें पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर नगर में संघ-कार्य आरंभ करने के लिए भेजा। नानाजी ने बताया कि वे 15 अगस्त, 1940 को केवल 14 रुपए जेब में लेकर गोरखपुर के लिए रवाना हो गए। गोरखपुर नानाजी के लिए चुनौती बनकर आया। नया स्थान, कोई परिचय नहीं, ठहरने-खाने का ठिकाना नहीं। कुछ दिन धर्मशाला में काटे। उसे बार-बार बदलना पड़ता, क्योंकि एक साथ तीन दिन से अधिक ठहरने की अनुमति नहीं थी। किसी ने घनश्याम नारायण प्रसाद सिंह नामक एडवोकेट से परिचय कराया। वे जमींदार परिवार के थे, उनके पास बड़ी कोठी थी, अकेले प्राणी। खाना बनानेवाला कोई नहीं। नानाजी उनके लिए दोनों समय भोजन बनाने लगे और वहीं रहने लगे। कुछ समय बाद देवी प्रसाद अग्रवाल ने उनके रहने-खाने की व्यवस्था अपने घर में की। बहुत प्रयास करने पर भी शाखा नहीं लग पा रही थी। उनकी आंखें खोजने लगी, कहाँ से कैसे तरुणों को जुटाया जाए। नानाजी की खोजी बुद्धि सक्रिय हो गई। डी.बी. इंटर कॉलेज के बंगाली डे मास्टर फुटबॉल की टीम बनाने की कोशिश कर रहे थे। नानाजी बाहर खड़े होकर उनकी टीम को खेलते देखते। फुटबॉल में वे निष्णात थे। नानाजी ने डे मास्टर से खेलने की अनुमति मांगी, बहुत अनुनय-विनय पर अनुमति मिल गई। लेफ्ट खेलने को कहा, नानाजी से गोल लग गया। उन्हें टीम में ले लिया गया। उसी टीम को नानाजी ने संघ की शाखा बना दिया। उसमें के सात खिलाड़ियों को साथ ले वे 1941 के संघ शिक्षा-वर्ग में नागपुर गए। संघ-कार्य बढ़ाने के लिए उन्होंने नए-नए उपाए अपनाए। अपनी व्यवहार कुशलता से एक ओर उन्होंने महंत दिग्विजय नाथ, गीता प्रेस के संस्थापक भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार, कांग्रेसी नेता बाबा राघवदास जैसे प्रतिष्ठित और बड़े लोगों से संपर्क बनाया। बार एसोसिएशन के चेयरमैन हरिहर प्रसाद दुबे को संघचालक बनाया। प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉक्टर हृषिकेश बनर्जी को जिला कार्यवाह का दायित्व दिया। शुगर मिल के मैनेजर ठाकुरदास साहनी को जोड़ा। युवकों में राष्ट्रप्रेम और वीर भाव का संचार करने के लिए अभिनव ढंग के विशाल कार्यक्रमों की रचना की।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के समय संघ के एकत्रीकरण को भंग करने के लिए अंग्रेज एस.पी. मि. टामस पिस्तौल हिलाता हुआ पुलिस टुकड़ी के साथ 'डिस्पर्स, डिस्पर्स' चिल्लाता हुआ आ धमका। नानाजी ने स्थिति की नाजुकता को भांपा, दौड़ते हुए टामस के पास पहुंचे, उसके कान में कुछ कहा। संपत कराया, प्रार्थना और ध्वज प्रणाम करके विकिर कर दिया। टामस को अपना पौरुष दिखाने का अवसर नहीं दिया। देवरिया जिले के गौरी बाजार के पास टप्पी गांव में एक विशाल शीत-शिविर लगाया। स्वयंसेवकों के द्वारा 500 रावटी या पटकुटियां

साक्षात् नानाजी

तैयार कराई, शंख ब्यूह रचना के बाद सूर्यास्त के समय एक विशाल युद्ध का दृश्य खड़ा किया। इस युद्ध में 17 हाथियों और घुड़सवारों का भी योगदान रहा। शौर्य का यह दृश्य स्वयंसेवकों और ग्राम-नगरवासियों के मन पर छा गया। 1944 में नारायणी नदी का प्रकोप छितौली गांव पर टूटा। नानाजी स्वयंसेवकों को लेकर उस गांव के सहायतार्थ दौड़ पड़े। सैकड़ों बोरी खाद्य-पदार्थ वहां पहुंचा दिए। बाबा राघवदास की टोली स्वयंसेवकों की यह तत्परता और सेवावृत्ति देख चमत्कृत रह गई। नानाजी का कार्यक्षेत्र बढ़ता जा रहा था। गोरखपुर नगर से जिला, देवरिया और बस्ती, आजमगढ़ तथा बलिया जिलों तक विस्तार हो गया। पूरे क्षेत्र में शाखाओं का जाल बिछ गया। 1942 तक 250 शाखाएं खुल गईं। 1946 तक पूरा क्षेत्र संघ-शाखाओं से ढक गया। उन दिनों पूर्वी उत्तर प्रदेश में बाल-विवाह होता था। अतः नानाजी ने पहली बार उदयवीर सिंह जैसे विवाहित युवकों को प्रचारक निकाला। नानाजी की प्रेरणा से योगेंद्रजी, हरीश श्रीवास्तव, सुधीरजी जैसे अनेक क्षमतावान प्रचारकों की शृंखला खड़ी हुई। उन दिनों संघ-कार्य की दृष्टि से नानाजी का क्षेत्र उत्तर प्रदेश में सबसे आगे माना जाता था। गोरखपुर में मारवाड़ी व्यापारियों की बड़ी बस्ती थी, नानाजी उन्हें संघ में खींच लाए। बालाप्रसाद तुलस्यान, मुरलीधर तुलस्यान, मदन जालान, देवी प्रसाद अग्रवाल जैसे श्रेष्ठ कार्यकर्ता मिले। पूरे प्रांत में नानाजी के कर्तृत्व की चर्चा होती थी। उस कालखंड पर एक बड़ा ग्रंथ लिखा जा सकता है।

1942 से उत्तर प्रदेश में संघ शिक्षा वर्ग का लगना आरंभ हुआ। पहला वर्ग लखनऊ में लगा। 1943 से काशी में लगने लगा। प्रारंभ से ही नानाजी को शिक्षा-वर्ग की व्यवस्था का भार दे दिया गया। 1945 में काशी के शिक्षा-वर्ग पर ब्रिटिश सरकार की कोप दृष्टि पड़ी। उसे बीच में ही स्थगित करना पड़ा। उन्हीं दिनों नानाजी के बड़े भाई आबाजी अपनी पत्नी के देहांत से शोक-विह्वल होकर नानाजी को लेने काशी पहुंचे। नानाजी ने वर्ग छोड़कर जाने से मना कर दिया। आबाजी रोते-बिलखते वापस लौटे। कुछ ही दिनों बाद 29 अप्रैल को उनके इकलौते पुत्र के निधन का तार पहुंचा। भाऊराव जी ने नानाजी को कडोली होते हुए 5 मई को नागपुर में आरंभ होनेवाले वर्ग में तृतीय वर्ष का शिक्षण पूरा करने को कहा। उन दिनों कडोली की यात्रा बहुत समय लेती थी। नानाजी वहां 3 मई की रात में 8 बजे पहुंचे, पर नागपुर समय पर पहुंचने के लिए अगली प्रातः 4 बजे पैदल ही कडोली से 6 मील पर स्थित वाशिम के लिए रवाना हो गए, ताकि बस से समय पर नागपुर पहुंच सकें। शोक-विह्वल परिवारजन एवं ग्रामवासी उनकी इस कठोर संघ-निष्ठा को देखकर कहने लगे कि उनका दिल पत्थर का बना लगता है। पर नानाजी का अतिसंवेदनशील अंतःकरण ध्येयनिष्ठा एवं अनुशासन-भाव से बंधा था। 1945 में तृतीय वर्ष शिक्षण पूरा कर वे पुनः गोरखपुर विभाग में संघ-कार्य में जुट गए। 1946 में उनके क्षेत्र में शाखाओं की संख्या 600 पार कर गई थी।

कार्य तेजी से बढ़ रहा था कि 30 जनवरी, 1948 को गांधीजी की हत्या का दुर्भाग्य घटित हुआ। पं. नेहरू ने उसे बहाना बनाकर 4 फरवरी को संघ पर प्रतिबंध थोप दिया। देश भर में हजारों-हजार स्वयंसेवक अकारण ही गिरफ्तार कर लिए गए। गोरखपुर में नानाजी को भी

विराट् पुरुष

गिरफ्तार किया गया। उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने महंत दिग्विजयनाथजी से गोडसे की भेंट कराई, उसे पिस्तौल दिलवाई। पहले 15 दिन उन्हें डाकुओं और खूनियों के साथ 'कंडेंट सेल' में रखा गया। चार महीने अकेले सेल में बंद रखा। वहां उनके साथ नेशनल गार्ड के नेता मोइनुद्दीन को भी रखा गया। उससे नानाजी की गहरी दोस्ती हो गई। कांग्रेस नेता रफी अहमद किदवई उसके सहपाठी रहे थे। वे उनसे भेंट करने जेल आए। उन्होंने नानाजी का किदवई साहब से परिचय कराया। किदवई साहब के यहां से दोनों के लिए भोजन आता। जेल से छूटने पर नानाजी रफी अहमद किदवई को धन्यवाद देने गए। बाद में भी उनके साथ संबंध बनाए रखा।

छह महीने बाद जेल से बाहर आने पर नानाजी को 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन की व्यवस्था संभालने के लिए दीनदयालजी के पास लखनऊ भेज दिया गया। दीनदयालजी के मार्गदर्शन में 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन की स्थापना 1947 में हुई थी। 1947 के रक्षाबंधन पर अटलजी और राजीवलोचन अग्निहोत्री के संयुक्त संपादकत्व में 'राष्ट्रधर्म' मासिक का प्रकाशन शुरू हुआ। जनवरी 1948 की मकर संक्रांति पर अटलजी के संपादकत्व में 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक निकला। 4 फरवरी, 1948 को संघ पर प्रतिबंध लगने के बाद नानाजी के लखनऊ आने के पहले दोनों पत्रिकाओं पर भी प्रतिबंध लग चुका था। 9 दिसंबर, 1948 में सत्याग्रह शुरू होने के पूर्व 'स्वदेश दैनिक' आरंभ हुआ, किंतु 6-7 दिन बाद ही पुलिस ने छापा मारकर कार्यालय सील कर दिया। प्रेस की तालाबंदी होते ही पहले से ऑर्डर की हुई एक मशीन की बिल्टी आ गई। नानाजी के लिए प्रकाशन का क्षेत्र बिल्कुल नया था, किंतु उनकी योजक बुद्धि किसी भी नई चीज को तुरंत सीख लेती थी। कठिनाइयों का रास्ता खोजने में वे कुशल थे। उन्होंने मशीन की बिल्टी छुड़ाकर तुरंत एक ट्रक के द्वारा उसे इलाहाबाद भेज दिया और वहां 'सेवा प्रेस' स्थापित कर दिया, जिसका उपयोग संघ की भूमिगत सामग्री के मुद्रण के लिए होने लगा। उन्हीं दिनों नानाजी इलाहाबाद गए और वहां 'चांद' प्रेस के मालिक रामरक्खा सहगल से संपर्क किया। उस समय संघ के पक्ष में खड़ा होनेवाला सहगलजी का अंग्रेजी साप्ताहिक 'क्राइसिस' अकेला पत्र था। 12 जुलाई, 1949 को संघ पर से प्रतिबंध उठने पर नानाजी ने 'स्वदेश' पुनः प्रकाशित कराने की तैयारी शुरू कर दी।

1950 में संघ-दृष्टि से पश्चिमी उत्तर प्रदेश भाऊराव के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किए जाने के कारण भाऊराव ने दीनदयालजी को मेरठ भाग का दायित्व संभालने के लिए भेज दिया और लखनऊ में नानाजी अकेले रह गए। कलकत्ता जाकर उन्होंने एक नई मशीन खरीदी। 'स्वदेश' के लिए आर्थिक साधन जुटाने में उनके गोरखपुर के संबंध काम आए। भाई हनुमान प्रसादजी पोद्दार एवं गोरखपुर के अनेक मारवाड़ी स्वयंसेवकों के धनाढ्य संबंधी कलकत्ते में रहते थे, उनकी आर्थिक सहायता से ही 'स्वदेश' का घाटा पूरा हो पाता था। अगस्त 1950 में 'स्वदेश' का प्रकाशन पुनः आरंभ हुआ और वह 2 वर्ष तक चला। उन दिनों नानाजी के साथ अटलजी, गिरीशचंद्र मिश्र, ज्ञानेंद्र सक्सेना, महेंद्र कुलश्रेष्ठ, सुरेंद्र मित्तल आदि पूरा संपादक मंडल सदर

साक्षात् नानाजी

बाजार में ब्रिटिश काल के एक क्लब के जीर्ण-शीर्ण विशाल बंगले में निवास करता था। इस प्रकार 1948 के अंत से 1951 में जनसंघ के गठन तक नानाजी ने 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन के प्रबंध निदेशक का दायित्व सफलतापूर्वक निभाया। प्रकाशन के क्षेत्र में भी नानाजी ने अपनी कलात्मक दृष्टि का परिचय दिया। बंबई के दलाल स्टूडियो में संघ की प्रार्थना के चित्र और ब्लॉक बनवाकर अपने भारत प्रेस से ही अत्यंत आकर्षक बहुरंगी पुस्तिका का प्रकाशन करके दिखाया।

लखनऊ में रहते हुए भी नानाजी का गोरखपुर विभाग के कार्यकर्ताओं से संपर्क निरंतर बना रहा। वे उनके दुःख-सुख में सहभागी रहे। उनकी समस्याओं को हल करते रहे। ऐसे ही एक कार्यकर्ता कृष्णकांत प्रचारक जीवन से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहते थे, किंतु जीविकाार्जन का उपयुक्त साधन उन्हें नहीं दिख रहा था। नानाजी ने उनका विवाह आयोजित किया और पति-पत्नी दोनों की शिक्षा व संस्कारक्षमता का उपयोग करने के लिए एक शिशु मंदिर की कल्पना की। इस प्रकार भारत में पहले सरस्वती शिशु मंदिर का श्रीगणेश 1950 में गोरखपुर में नानाजी के मार्गदर्शन में हुआ। इस शिशु मंदिर के अनुकरण पर देश भर में स्वतंत्र रूप से हजारों सरस्वती शिशु मंदिरों की विशाल शृंखला खड़ी हो गई। विद्या भारती के मार्गदर्शन में भारत का विशालतम गैर-सरकारी शिक्षा आंदोलन बन गया है।

अब एक बिलकुल नया क्षेत्र नानाजी की प्रतीक्षा कर रहा था और वह था वोट तथा दल पर आधारित राजनीति का। अंतर-बाह्य दबावों के कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को एक नए राष्ट्रवादी राजनीतिक दल के निर्माण में सहयोग देना पड़ रहा था। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 'भारतीय जनसंघ' नामक नए दल को अक्टूबर 1951 में अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त हो गया। संघ के जिन कार्यकर्ताओं को डॉ. मुखर्जी का सहयोग करने के लिए चिह्नित किया गया, उनमें दीनदयाल जी के साथ नानाजी देशमुख का नाम भी था। मार्च 1952 में पहला आम चुनाव होना था। उत्तर प्रदेश से उसकी तैयारी के लिए नानाजी पूरे मनोयोग से कई महीने पहले से जनसंघ में सक्रिय हो गए। संगठनशास्त्र में पारंगत नानाजी को उत्तर प्रदेश के संगठन-तंत्र का दायित्व दिया गया। उन्होंने अथक परिश्रम करके प्रत्येक जिले में जनसंघ का संगठन खड़ा किया। उनके कुशल नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में जनसंघ के विधायकों की संख्या 1957 में 14 से बढ़कर 1967 में 100 पहुंच गई। नानाजी ने जनसंघ के बाहर अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं से भी संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। कांग्रेस में डॉ. संपूर्णानंद, चौ. चरण सिंह, लाल बहादुर शास्त्री आदि से सीधे संबंध स्थापित किए। 1956 में पं. नेहरू की सहकारी खेती का खुलकर विरोध करने का साहस दिखाने पर वे चरण सिंह को बधाई देने पहुंचे। समाजवादी नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया से परिचय करने के लिए लखनऊ में उनके कॉफी हाऊस अड्डे पर जा पहुंचे। अपना परिचय देकर कहा कि मैं आपसे संबंध बनाना चाहता हूं। डॉ. लोहिया ने उपहास करते हुए कहा कि 'तुम जनसंघ के हो, यानी संघ के हो, तब तुम्हारी-हमारी दोस्ती कैसे जमेगी?' नानाजी ने कहा कि 'मैं संघ का हूं और अंत तक रहूंगा, फिर भी

विराट् पुरुष

आपसे संबंध चाहता हूँ।' सचमुच, उन्होंने डॉ. लोहिया को अपने निकट खींच लिया। 1962 के चुनाव में पं. नेहरू के विरुद्ध संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी को चुनाव लड़ने के लिए तैयार करने का प्रयास करते समय डॉ. लोहिया ने नानाजी को बुलाया। अगस्त 1962 में उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं के वर्ग में डॉ. लोहिया आए। 1963 के लोकसभा के मध्यावधि चुनावों में डॉ. लोहिया को फर्रुखाबाद से जिताने में जनसंघ कार्यकर्ताओं ने जी-जान से काम किया। नानाजी ने डॉ. लोहिया और दीनदयालजी का भारत-पाक महासंघ पर ऐतिहासिक संयुक्त वक्तव्य जारी होने की स्थिति पैदा की। 1958 में उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री डॉ. संपूर्णानंद के मंत्रिमंडल से चंद्रभानु गुप्त और चौ. चरण सिंह ने त्याग-पत्र देकर संकट पैदा किया तो डॉ. संपूर्णानंद ने नानाजी की सहायता मांगी। तभी चरण सिंह ने नानाजी से कहा कि 'मुझे उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री कब बनाओगे?' नानाजी ने कहा, 'जब हमारे पास अपने 100 विधायक होंगे।' 1967 में यह स्थिति आई तो नानाजी ने चरण सिंह को कांग्रेस से बाहर आकर सरकार बनाने का न्योता दिया और चरण सिंह अपने 16 विधायकों को लेकर कांग्रेस से बाहर आकर जनसंघ के कंधों पर सवार हो मुख्यमंत्री बन गए। 1967 में बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश और राजस्थान आदि अनेक राज्यों में गैर कांग्रेसी संयुक्त विधायक दल सरकारों के गठन में नानाजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

चुनाव राजनीति में व्यक्तिगत सत्ताकांक्षा में से उत्पन्न अवसरवाद, दल-बदल, जातिवाद, विश्वासघात आदि दुर्गुणों को देखकर नानाजी मन-ही-मन बहुत दुःखी रहते थे। डॉ. लोहिया ने गैर-कांग्रेसवाद का नारा देकर राजनीति को नकारात्मक बना दिया। उन्होंने नानाजी को बताया कि वैश्य कुल में जन्म होने के कारण मेरे साथी मेरे लिए सुरक्षित सीट नहीं खोज पा रहे हैं। नानाजी ने पाया कि सभी बड़े-बड़े नेता दल-बदलकर अपने लिए सत्ता पाना चाहते हैं, राष्ट्रहित की उन्हें कोई चिंता नहीं। उनकी राजनीति केवल चुनाव लड़ने तक सीमित है। चुनाव जीतने के लिए वे जातिवाद, अल्पसंख्यकवाद का सहारा लेते हैं। वे जनता के बीच काम नहीं करते, कोई संगठन खड़ा नहीं करते। वे केवल जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं। उस काल में नानाजी ने राजनीति के अखाड़े में चल रहे दांव-पेंचों के प्रयोग में भी अपनी धाक जमा दी थी। सी.बी. गुप्ता जैसे धुरंधर राजनीतिज्ञ उनसे डरने लगे। कोई उन्हें 'चाणक्य' कहता तो कोई 'नाना फणनवीस'। उत्तर प्रदेश में प्रत्येक राजनीतिक उथल-पुथल के पीछे नानाजी का हाथ टटोला जाने लगा, किंतु नानाजी की राजनीति अपने लिए नहीं, राष्ट्र के लिए थी। 14 अगस्त, 1979 को चौ. चरण सिंह के नाम अपने लंबे खुले पत्र में नानाजी ने चरण सिंह की व्यक्तिगत सत्ताकांक्षा और अवसरवादी राजनीति का तिथिवार तथ्यात्मक वर्णन करते हुए लिखा, "मैंने राजनीति में प्रवेश अपने लिए नहीं, राष्ट्र-निर्माण के लक्ष्य को पाने के लिए किया है।"

जनसंघ में 1951 से 1961 तक नानाजी का कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश रहा। 1962 के आम चुनाव में उन्हें अखिल भारतीय दायित्व मिल गया। चुनाव-तंत्र खड़ा करने से लेकर चुनाव-कोष जमा करने तक का भार उन पर आ पड़ा। जिसके लिए उन्होंने देश के उद्योगपतियों से

साक्षात् नानाजी

संबंध स्थापित किए। 1967 के चुनाव में भारतीय जनसंघ कांग्रेस के बाद सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभर आया। तभी दुर्भाग्य से जनसंघ के दर्शनकार और श्रद्धाकेंद्र पं. दीनदयाल उपाध्याय की अध्यक्ष पद संभालने के कुछ ही समय बाद 11 फरवरी, 1968 को काशी के बाद मुगलसराय स्टेशन पर रहस्यमय ढंग से हत्या हो गई। नानाजी पर यह भारी व्यक्तिगत आघात था। कई महीने तक वे दीनदयालजी की हत्या के रहस्य का पता लगाने में जुटे रहे। चंद्रचूड़ आयोग के सामने दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्य पेश करते रहे। साथ ही उन्होंने दीनदयालजी के चिंतन और कर्म को आगे बढ़ाने के लिए अटलजी की अध्यक्षता में दीनदयाल उपाध्याय स्मारक समिति का गठन करके उसका सचिव पद स्वयं संभाला। 1968 में ही दीनदयाल उपाध्याय स्मारक समिति के पहले प्रकाशन के रूप में उन्होंने अंग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गनाइजर' में छपे दीनदयालजी के लेखों का एक संकलन 'पोलिटिकल डायरी' शीर्षक से मुंबई की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था 'जैको' द्वारा प्रकाशित कराया। उस पुस्तक की भूमिका अपने व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर कांग्रेसी नेता और काशी विद्यापीठ के कुलपति डॉ. संपूर्णानंद से लिखवाई। दीनदयाल जी की स्मृति में 'दीनदयाल शोध संस्थान' की स्थापना की। दिल्ली में उसके सात मंजिले भवन की वास्तुकला और सज्जा में नानाजी की कलात्मक प्रतिभा की छाप बहुत स्पष्ट है। शोध संस्थान के प्रवेश कक्ष की दीवारों पर उन्होंने भारत के सांस्कृतिक प्रवाह की चित्रमय झांकी को उत्कीर्ण कराया। दीनदयालजी की प्रतिमा स्थापित की। 1972 में श्रीअरविंद के जन्मदिवस पर सरसंघचालक श्रीगुरुजी के द्वारा उसका औपचारिक उद्घाटन कराया। इस अवसर पर यज्ञवेदी में आहुति देते हुए श्रीगुरुजी का चित्र पूरे भारत में छा गया। इसी प्रकार छठी मंजिल में श्रीगुरुजी का खड़ी मुद्रा में आदमकद तैलचित्र इतना जीवंत है कि वह अनूठा चित्र घर-घर में पहुंच गया। संस्थान के उद्घाटन के अवसर पर नानाजी ने दीनदयालजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालनेवाला एक ग्रंथ अंग्रेजी और हिंदी भाषाओं में प्रकाशित किया। इस शोध संस्थान को बौद्धिक गतिविधियों का केंद्र बनाने के लिए नानाजी ने श्री दत्तोपंत टेंगड़ी, डॉ. सुब्रह्मण्यम स्वामी जैसे बौद्धिक व्यक्तित्वों को संस्थान से जोड़ा। 1977 में आपातकाल के बाद वे केरल के श्री पी. परमेश्वरन को निदेशक पद पर लाए। अंग्रेजी और हिंदी में 'मंथन' नाम से त्रैमासिक शोध पत्रिकाएं आरंभ कीं। विचार-गोष्ठियों, निबंध प्रतियोगिताओं एवं प्रकाशनों का तांता लगा दिया।

1971 के मध्यावधि चुनाव के बाद से भारतीय राजनीति में एक ओर इंदिरा गांधी के निरंकुशवाद, दूसरी ओर विपक्षी दलों में व्याप्त व्यक्तिवाद, अवसरवाद और भ्रष्टाचार को देखकर नानाजी मन-ही-मन बहुत उद्ध्विग्न रहने लगे। सच कहा जाए तो उस समय नानाजी विभाजित मनःस्थिति में जी रहे थे। एक ओर तो वे जनसंघ के महामंत्री के नाते राजनीति में सक्रिय दिख रहे थे, दूसरी ओर वे मन-ही-मन वोट और दल की राजनीति के चरित्र परिवर्तन का उपाय खोजने में लगे थे। उन दिनों उनका इंडियन एक्सप्रेस के स्वामी रामनाथ गोयनका से बहुत घनिष्ठ संबंध था। गोयनकाजी के माध्यम से सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायणजी से

विराट् पुरुष

निकटता बनी। जयप्रकाशजी स्वयं भी भारतीय राजनीति के चरित्र की गिरावट से बहुत दुःखी एवं चिंतित रहते थे। कभी-कभी वे व्यवस्था-परिवर्तन की बात भी करते थे। किंतु उनका अपना व उनकी पत्नी प्रभावतीजी का स्वास्थ्य गिर रहा था। प्रभावतीजी के कैंसर का रोग घातक स्थिति में पहुंच रहा था। उन्हें मुंबई के टाटा कैंसर अस्पताल में कमरा नहीं मिल रहा था। नानाजी और गोयनकाजी ने टाटा के लिए आरक्षित दो कमरों में से एक कमरा प्रभावतीजी को दिलवाया। नवंबर 1972 में नानाजी स्वयं जयप्रकाशजी के साथ मुंबई जाकर उनके साथ ही रहे। तब नानाजी ने जयप्रकाशजी को निकट से देखा। उनकी सरलता, निस्स्वार्थता और लोकमंगल की भावना से वे बहुत अधिक प्रभावित हुए। प्रथम पंक्ति के स्वतंत्रता सेनानी होते हुए भी जयप्रकाशजी ने अपने लिए सत्ता कभी नहीं चाही। पं. नेहरू के कहने पर भी वे मंत्री नहीं बने। 1957 के बाद दल और वोट की राजनीति से उन्होंने अपने को अलग कर लिया। इसलिए नानाजी और गोयनकाजी, दोनों को लगा कि जयप्रकाशजी ही इस राजनीति का विकल्प प्रदान कर सकते हैं। 15 अप्रैल, 1973 को पटना में प्रभावतीजी के निधन के बाद जयप्रकाशजी अंदर से टूट गए थे। उनका स्वयं का स्वास्थ्य भी जर्जर था। इस मनःस्थिति में उन्होंने दिल्ली में इंडियन एक्सप्रेस के गेस्ट हाऊस में गोयनकाजी का आतिथ्य स्वीकार कर लिया। वहां गोयनकाजी, रामधारी सिंह दिनकर एवं गंगाशरण सिंह आदि मित्र जे.पी. को दिलासा देते और उनके संकल्प बल को दृढ़ करने का प्रयास करते। नानाजी के अतिरिक्त बीच-बीच में चंद्रशेखर भी आते रहते थे और देश की परिस्थिति पर विचार-मंथन करते थे। राजनीति के चारित्रिक पतन और इंदिरा गांधी की अधिनायकवादी प्रवृत्तियों से जे.पी. बहुत अधिक उद्धेलित थे। जुलाई और सितंबर 1973 के बीच उन्होंने अंग्रेजी साप्ताहिक 'एवरीमंस' में तीन लेखों की माला में अपनी चिंता उड़ेली। कुछ राज्यों में विधानसभाओं के चुनाव के पूर्व दिसंबर 1973 में जे.पी. ने 'लोकतंत्र के लिए युवा' शीर्षक से युवाओं के नाम एक अपील भी जारी की। लगभग उसी समय गुजरात के कांग्रेसी मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल के विरुद्ध नवनिर्माण समिति के तत्वावधान में छात्र आंदोलन प्रारंभ हो गया।

नानाजी, गोयनकाजी एवं पूरी मित्रमंडली को लगा कि यदि इस समय जे.पी. गुजरात जाकर उस आंदोलन का विराट् रूप देखें तो शायद उनमें नेतृत्व करने का उत्साह जग सकेगा। सबने मिलकर जे.पी. को 14-15 फरवरी, 1974 को अहमदाबाद यात्रा के लिए तैयार कर लिया। नानाजी जे.पी. के स्वागत एवं कार्यक्रमों की तैयारी के लिए सात दिन पहले अहमदाबाद पहुंच गए। गुजरात आंदोलन में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की प्रमुख भूमिका थी। अतः नानाजी की प्रेरणा और योजना से जे.पी. का अहमदाबाद एयरपोर्ट पर इतना विशाल और भव्य स्वागत हुआ कि वहां उमड़े जन-ज्वार को देखकर जे.पी. भाव-विभोर हो गए। वे बार-बार कहते थे कि 'इस दृश्य को देखकर 1942 की याद आती है।' जे.पी. का नैराश्य भाव छंट गया और युवा-शक्ति के बल पर व्यवस्था परिवर्तन का उन्हें विश्वास होने लगा। 13 फरवरी, 1974 को साबरमती आश्रम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए जे.पी. ने कहा, 'यह क्रांतिकारी

साक्षात् नानाजी

परिस्थिति है। उसकी मांग है परिवर्तन। मैं स्वास्थ्य के कारण लाचार हूँ। दिल में हिम्मत है, लेकिन नाजुक स्वास्थ्य के कारण हिचकता हूँ।' किंतु साथ ही जे.पी. ने माना कि जो रास्ता वे खोज रहे थे, गुजरात के छात्रों ने वह दिखा दिया है। नानाजी लिखते हैं कि यहीं से जे.पी. के आंदोलन के साथ मैं जुड़ गया।

लगभग इसी समय 18 मार्च, 1974 में बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति ने बिहार विधानसभा पर कूच का आयोजन किया, जिसे भंग करने लिए पुलिस ने लाठी चार्ज और गोलीवर्षा का सहारा लिया। आंदोलनकारी छात्रों में विद्यार्थी परिषद् के कार्यकर्ताओं की बड़ी संख्या थी। छात्रों के प्रतिनिधिमंडल ने जे.पी. से उनके आंदोलन का नेतृत्व करने का अनुरोध किया। किंतु जे.पी. अपने गिरते स्वास्थ्य के कारण हिचकिचा रहे थे। उन्होंने कहा, 'तुम आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं।' पर छात्र नेता जे.पी. के नेतृत्व के लिए अड़े रहे। 9 अप्रैल की जनसभा में छात्रों ने जे.पी. को 'लोकनायक' घोषित कर दिया। जे.पी. को प्रोस्टेट का रोग बहुत कष्ट दे रहा था। उसका ऑपरेशन कराने के लिए जे.पी. ने वेल्लोर जाने का निर्णय लिया। किंतु उसके पूर्व उन्होंने आंदोलन के नेतृत्व करने की सहमति दो शर्तों के साथ दे दी। पहला कि आंदोलन पूर्णतया शांतिमय रहेगा। दूसरा, आंदोलन निर्दलीय होगा। सब जे.पी. के अनुशासन से चलेंगे। छात्रों से वचन लेकर जे.पी. ने चार व्यक्तियों की संचालन समिति बनाई, जिसमें नारायण भाई, राममूर्ति, मनमोहन चौधरी और त्रिपुरारी शरण को रखा। साथ ही उन्होंने इस समिति को पांच सप्ताह के आंदोलन का कार्यक्रम भी बनाकर दे दिया। उसके बाद वे 23 अप्रैल को पटना के अपने डॉक्टर आर.वी.पी. सिंह को साथ लेकर वेल्लोर रवाना हो गए। वेल्लोर अस्पताल से भी तार और टेलीप्रिंटर द्वारा आंदोलन के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश भेजते रहे।

2 जून, 1974 को वेल्लोर से लौटने के बाद जे.पी. पूरी ताकत से युवा आंदोलन में कूद पड़े। 5 जून, 1974 को गांधी मैदान में जे.पी. कह उठे, 'यह क्रांति है मित्रो, और संपूर्ण क्रांति है। यह कोई विधानसभा के विघटन का आंदोलन नहीं है। यह तो रास्ते की मात्र एक मंजिल है। दूर जाना है, बहुत दूर जाना है।' उन्होंने 3, 4 और 5 अक्टूबर, 1974 को तीन दिन के 'बिहार बंद' का आह्वान किया। इस आह्वान की सफलता के लिए नानाजी ने जीप और मोटरसाइकिल से पूरे बिहार का तूफानी दौरा किया, बंद पूरी तरह सफल रहा। अब जे.पी. ने 4 नवंबर, 1974 को बिहार सचिवालय के घेराव का आह्वान किया। नानाजी पुनः बिहार के दौरे पर जनजागरण के लिए निकल पड़े। 30 अक्टूबर की प्रातः सासाराम में उनकी जनसभा को पुलिस ने घेर लिया, पर सभा चलती रही। सभा के बाद नानाजी एक कार्यकर्ता के घर भोजन के लिए गए। वहां भी पुलिस पहुंच गई। एस.पी. ने नानाजी को बिहार से निष्कासन का आदेश सुनाया, कहा कि मुझे आपको बिहार की सीमा से बाहर छोड़ आने का निर्देश मिला है। परंतु घर की महिलाओं ने भोजन पूरा किए बिना नहीं जाने दिया। वहां भारी भीड़ इकट्ठा हो गई और जुलूस बनाकर उन्हें विदा किया।

नानाजी ने कहा, 'हम 4 नवंबर को मिलेंगे' तो जिलाधीश ने कहा कि आपका फोटो

विराट् पुरुष

प्रत्येक थाने को भेज दिया गया है। आप पटना कदापि नहीं पहुंचेंगे। पुलिस उन्हें वाराणसी में जनसंघ कार्यालय छोड़ आई। वहां से नानाजी दिल्ली चले गए और 4 नवंबर को डाकिए के भेष में आर.एम.एस. के डिब्बे में बैठकर पटना पहुंच गए। जुलूस के आरंभ होने पर उन्हें अपनी बगल में खड़े देखकर जे.पी. विस्मित रह गए। जुलूस में नानाजी जे.पी. के साथ कभी पैदल कभी जीप में छाया की तरह चले। नानाजी ने देखा कि सी.आर.पी.एफ. के एक जवान की लाठी जे.पी. के सिर पर पड़ने ही वाली है तो वे कूद कर जे.पी. के सामने आ गए और लाठी का वार अपनी बाईं कलाई पर ले लिया। उन पर कई लाठियां पड़ीं। यदि उस समय नानाजी तनिक भी चूक जाते तो पता नहीं जे.पी. का क्या होता, केवल उनका पैर ही जखमी हुआ। मूर्च्छित जे.पी. को सड़क पर ही एक पान की दुकान के सामने खाट पर लिटाया गया और उनके चेहरे पर पानी के छींटे देकर उन्हें होश में लाने का प्रयास हुआ। पुलिस जे.पी. और नानाजी को गिरफ्तार करके अलग-अलग ट्रकों में ले गई। नानाजी को रात में एक बजे अस्पताल पहुंचाया गया और उनकी टूटी कलाई पर प्लास्टर चढ़ाया गया। अगली प्रातः उन्हें जेल वापस ले गए।

नानाजी ने अपनी प्रत्युत्पन्नमति, साहस और त्याग भावना से जे.पी. का विश्वास इस सीमा तक अर्जित किया कि 26 नवंबर, 1974 को दिल्ली में बुद्धिजीवियों के एक सम्मेलन में जे.पी. ने संघ और जनसंघ की देशभक्ति की प्रशंसा करके उनके आलोचकों को निरुत्तर कर दिया। अब तक जे.पी. बिहार आंदोलन को छात्र आंदोलन की परिधि से आगे बढ़ाकर व्यवस्था-परिवर्तन की अखिल भारतीय संपूर्ण क्रांति का रूप देने की दिशा में काफी आगे बढ़ गए थे। जे.पी. वोट और दल की राजनीति का विकल्प ढूंढ़ रहे थे, इसीलिए वे अपने आंदोलन को दलीय राजनीति से अलग रखना चाहते थे, किंतु 1 नवंबर, 1974 को इंदिरा गांधी ने जे.पी. को चुनाव के अखाड़े में शक्ति-परीक्षण की चुनौती दे दी, जिसे न जाने क्यों, उन्होंने 18 नवंबर को पटना की विराट् जनसभा में स्वीकार कर लिया। दिल्ली में चार प्रमुख विपक्षी दलों के नेताओं ने जे.पी. आंदोलन को अपना समर्थन घोषित कर दिया। सभी गैर-कम्युनिस्ट विपक्षी दल जे.पी. की लोकप्रियता और उनके द्वारा प्रवर्तित जनांदोलन के ज्वार पर सवार होकर सत्ता में पहुंचने के सपने देखने लगे। यहीं से 'संपूर्ण-क्रांति आंदोलन' का भटकाव आरंभ हुआ।

अभी तक जे.पी. किसी भी राजनीतिक नेता या दल को अपने मंच पर स्वीकार नहीं कर रहे थे, पर अब उन्होंने सभी दलों को अपने संघर्ष से जोड़ने का प्रयास शुरू कर दिया। 26 नवंबर को जे.पी. ने दिल्ली में गैर-कम्युनिस्ट विपक्षी दलों के 50 प्रमुख नेताओं की बैठक बुलाई। घटनाचक्र तेजी से घूम रहा था। इंदिरा गांधी अधिनायकवाद की ओर बढ़ रही थीं, विपक्ष लामबंद हो रहा था। गुजरात की सरकार को बरखास्त करके नए चुनाव कराने के लिए मोरारजी देसाई दिल्ली में आमरण अनशन पर बैठ गए। सरकार बरखास्त हो गई। 12 जून को विपक्षी दलों का जनता मोर्चा गुजरात विधानसभा के चुनाव जीत गया। उसी दिन प्रयाग उच्च न्यायालय ने राजनारायण की चुनाव याचिका पर लोक सभा के लिए इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित

साक्षात् नानाजी

कर दिया। विपक्ष ने इंदिरा गांधी के इस्तीफे की मांग उठाई। उन्होंने मना कर दिया। सीधे टकराव की स्थिति पैदा हो गई। अब तक नानाजी जे.पी. और संघ परिवार व अन्य दलों के बीच विश्वास का पुल बन चुके थे। इंदिरा गांधी की बरखास्तगी की मांग को लेकर 13 जून को नानाजी अन्य नेताओं के साथ राष्ट्रपति भवन के बाहर धरने पर बैठ गए। नानाजी के अनुरोध पर 20 जून, 1975 को दिल्ली में चार दलों (भारतीय लोक दल, संगठन कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी एवं जनसंघ) की कार्यसमितियों की संयुक्त बैठक आयोजित हुई। वह बैठक चार दिन चली, उसमें लोक संघर्ष समिति बनाने का सर्वसम्मत निर्णय हुआ। जयप्रकाशजी के आग्रह पर मोरारजी उसके अध्यक्ष और नानाजी महामंत्री चुने गए। 25 सदस्यों की कार्यसमिति बनाई गई।

25 जून को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विराट् जनसभा हुई, जिसे जे.पी., बीजू पटनायक और नानाजी ने संबोधित किया। इस सभा में इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री पद से हटाने के लिए 29 जून से देशव्यापी आंदोलन आरंभ करने का कार्यक्रम घोषित किया गया। सभा के बाद नानाजी राजमाता सिंधिया को विदा करने नई दिल्ली रेलवे स्टेशन गए। वे प्लेटफार्म पर टहल रहे थे कि गुप्तचर विभाग के किसी अधिकारी ने चुपके से उनके कान में कहा कि आज रात को आपातकाल की घोषणा के साथ आप सब नेता गिरफ्तार होंगे, अतः आप यहां से खिसक जाइए। नानाजी स्टेशन से ही भूमिगत हो गए। वह चेतावनी सही निकली, देर रात जे.पी. आदि सभी नेताओं की बड़े पैमाने पर गिरफ्तारी शुरू हो गई। अब 'लोक संघर्ष समिति' के सचिव के नाते भूमिगत नानाजी पर अधिनायकवाद के विरुद्ध संघर्ष के संचालन का गुरुत्व दायित्व आ पड़ा। इसे निभाने के लिए उन्हें अपनी वेशभूषा और शवल बदलनी पड़ी। धोती-कुर्ते की जगह शर्ट-पैंट पहनी, सफेद बालों को काला किया, गंजेपन को ढकने के लिए विग लगाई। ऐसा हुलिया बनाया कि निकटतम मित्र और संबंधी भी पहली भेंट में उन्हें नहीं पहचान पाते थे। भूमिगत स्थिति में दो महीने बाहर रहकर उन्होंने देशव्यापी संघर्ष का तंत्र खड़ा किया। सूचनाओं के आदान-प्रदान और लोक शिक्षण के लिए अंडरग्राउंड बुलेटिन निकालने की व्यवस्था की। उनको इधर-उधर ले जाने में डॉ. रागिनी जैन ने अपनी सात दिन की कन्या को अपनी मां के पास छोड़कर प्रातः से रात्रि तक नानाजी के ड्राइवर की भूमिका निभाई। डॉ. सुब्रह्मण्यम स्वामी की पत्नी रुखसाना स्वामी को उन्होंने विदेशों में प्रचार के लिए भेजा। इस सब अभियान में संघ-परिवार का पूरा संगठन उनके साथ खड़ा था। देश भर में हजारों की संख्या में संघ के स्वयंसेवक सत्याग्रह करके जेल गए। लंदन के साप्ताहिक 'इकोनॉमिस्ट' ने आपातकाल विरोधी संघर्ष में संघ की मुख्य भूमिका को रेखांकित किया।

लगभग दो महीने बाद गुप्तचर विभाग पंजाब के कुछ भूमिगत नेताओं का पीछा करते हुए दिल्ली के सफदरजंग एन्क्लेव में नानाजी तक पहुंचने में सफल हो गया। कुछ देर तो वह विश्वास ही नहीं कर पाया कि जो नेता उनकी पकड़ में आया है, वह नाना देशमुख है। नानाजी के गिरफ्तार होने पर पहले से तय व्यवस्था के अनुसार संगठन कांग्रेस के रवींद्र वर्मा ने लोक

विराट् पुरुष

संघर्ष समिति का महामंत्री पद संभाला। संघ का भूमिगत नेतृत्व तो संघर्ष की रीढ़ बना हुआ था।

नानाजी तिहाड़ जेल पहुंच गए। वहां चरण सिंह, प्रकाश सिंह बादल आदि अनेक नेता बंद थे, उनमें घोर निराशा छाई हुई थी। नानाजी ने सभी दलों के एक दल में विलीनीकरण का प्रयास आरंभ किया। तब पुनः उनका चरण सिंह की प्रधानमंत्री बनने की आकांक्षा से सामना हुआ। 17 माह लंबे कारावास में नानाजी को अध्ययन और मनन का अलभ्य अवसर प्राप्त हुआ। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचने लगे कि राजशक्ति से नहीं, लोकशक्ति से देश का पुनर्निर्माण होगा। वर्तमान विकृत और पतित राजनीतिक संस्कृति से देश ऊपर नहीं उठ सकेगा। ग्राम आधारित स्वावलंबी समाजरचना के लिए गांव में जाकर प्रत्यक्ष काम करना होगा। समाज के दुर्बलतम व्यक्ति को ऊपर उठाना होगा। नानाजी का मन सत्तालोलुप, सिद्धांतहीन, व्यक्तिवादी राजनीति से उचटने लगा था और वे सत्ता राजनीति से वैराग्य लेकर रचनात्मक कार्य में अपने को समर्पित करने के लिए आतुर होने लगे थे कि इंदिरा गांधी ने अनायास ही 17 जनवरी, 1977 को लोकसभा चुनाव कराने की घोषणा करके सबको चौंका दिया। चुनाव की घोषणा होने के तीन दिन के भीतर 20 जनवरी को जनसंघ, कांग्रेस संगठन, भारतीय लोक दल व सोशललिस्ट पार्टी ने जनता पार्टी का गठन करके उसमें अपना विलय कर लिया और एक ही चुनाव-चिह्न पर चुनाव लड़ने का फैसला किया। प्रारंभ में मोरारजी देसाई को अध्यक्ष एवं लालकृष्ण आडवाणी को उसका मंत्री बनाया गया। किंतु 1 मई, 1977 के अधिवेशन में चंद्रशेखर को नवगठित जनता पार्टी का अध्यक्ष और चार महामंत्रियों में एक नानाजी को चुना गया।

जेलों से राजनीतिक कैदियों की रिहाई का सिलसिला शुरू हो गया। जे.पी. नानाजी को जल्दी-से-जल्दी बाहर लाना चाहते थे। नानाजी ने चुनाव न लड़ने का मन बना लिया था, पर जे.पी. ने संदेश भेजा कि अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिए जेल से बाहर आना जरूरी है और जेल से बाहर आने के लिए आपको लोकसभा चुनाव का नामांकन पत्र भरना चाहिए। जे.पी. के आदेश का पालन करने के लिए नानाजी ने पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोंडा जिले के बलरामपुर क्षेत्र से अपने नामांकन पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए और वे जेल से बाहर आ गए। नानाजी बलरामपुर की रानी राजलक्ष्मी देवी को भारी अंतर से हराकर लोकसभा में पहुंच गए। जनता पार्टी 302 सीटें जीतकर पूर्ण बहुमत में आ गई। इनमें सर्वाधिक 86 सीटें पूर्व जनसंघ घटक को मिलीं। 2 फरवरी, 1977 को रक्षा मंत्री जगजीवन राम इंदिराजी के मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देकर बाहर आ गए। उनके साथ उत्तर प्रदेश और उड़ीसा के पूर्व मुख्यमंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा और नंदिनी सत्पथी जैसे अनेक प्रभावशाली कांग्रेस छोड़कर बाहर आ गए। उन्होंने 'कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' नाम से नया दल बनाया। आपातकाल की निंदा की और जनता पार्टी को समर्थन घोषित कर दिया।

चुनाव में पूर्ण बहुमत मिलते ही जनता पार्टी के भीतर प्रधानमंत्री पद के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया। मोरारजी देसाई, चरणसिंह और जगजीवन राम मैदान में थे। नानाजी सहित जनसंघ

साक्षात् नानाजी

ग्रुप हरिजन नेता जगजीवन राम को प्रधानमंत्री पद देने के पक्ष में थे, पर चरण सिंह के कड़े विरोध के कारण वह संभव नहीं हुआ। यदि उस समय नानाजी की बात मानी गई होती तो भारतीय राजनीति में एक गुणात्मक परिवर्तन आ सकता था। पार्टी एकता उनकी प्राथमिकता थी। इसीलिए वरिष्ठता के आधार पर मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री पद सौंपा गया। मोरारजी भाई ने नानाजी को मंत्रीमंडल में उद्योग मंत्री जैसा महत्वपूर्ण दायित्व देने का विचार किया। मंत्रिमंडल की संभावित सूची में उनका नाम भी प्रचार माध्यमों में प्रसारित हो गया, पर प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) के कहने पर संगठन-कार्य में अपना पूरा ध्यान केंद्रित करने के लिए नानाजी ने मोरारजी भाई को फोन करके मंत्रीपद अस्वीकार कर दिया। नानाजी के अनेक उद्योगपति मित्र एवं शुभचिंतक अकबर होटल में बैठे उनके नाम की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे थे। घोषित सूची में उनका नाम न पाकर वे उद्ध्विग्न हो उठे। जब उन्हें पता लगा कि नानाजी ने स्वयं ही मंत्रीपद ठुकरा दिया तो वे आश्चर्यचकित रह गए और नानाजी के प्रति उनका श्रद्धाभाव दुगुना हो गया।

अब नानाजी एक साथ तीन मोरचों पर सक्रिय थे। एक ओर उन्होंने दीनदयाल शोध संस्थान को पी. परमेश्वरन के निर्देशन में एक प्रभावी बौद्धिक केंद्र बनाने की प्रक्रिया आरंभ की। दूसरे, उन्हें जनता पार्टी के भीतर प्रारंभ हुए सत्ता-संघर्ष का शमन कर जनता पार्टी सरकार को जे.पी. के सपनों की पूर्ति का माध्यम बनाना था। तीसरे, उन्हें अपने लिए गैर राजनीतिक रचनात्मक कार्य की भूमिका खोजनी थी।

राजनीति के गिरते चरित्र के प्रति विवृष्टता उनके मन में पहले ही पैदा हो चुकी थी। आपातकालीन दमन की भट्टी में तपकर निकले जनता पार्टी के नेतृत्व में सत्ता के लिए छीना-छपटी और षड्यंत्रों को देखकर वे राजनीति के प्रति पूरी तरह निराश हो गए। उनका मन जल्दी से जल्दी राजनीति से बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगा। उन्होंने देखा कि प्रधानमंत्री बनने के लिए गृहमंत्री चरण सिंह अपनी ही सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे हैं। 1973 तक चरण सिंह से घृणा करनेवाले राजनारायण अब स्वयं को उनका हनुमान बता रहे थे। केवल 32 सीटें पानेवाली सोशलिस्ट पार्टी के नेता मधु लिमये की एक मात्र चिंता यह थी कि कहीं जनसंघ और संघ अपने विशाल संगठन के बल पर जनता पार्टी और केंद्र सरकार पर कब्जा न कर लें। इसलिए पहले दिन से ही उन्होंने संघ और जनसंघ के विरुद्ध षड्यंत्री राजनीति आरंभ कर दी। कभी वे संघ को विसर्जित करने की बात करते तो कभी संघ के जनता पार्टी में विलय की मांग उठाते। अंत में उन्होंने जनसंघ के विरुद्ध दोहरी सदस्यता का मुद्दा खड़ा कर दिया। नानाजी को गहरा धक्का लगा, जब चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाने के लिए राजनारायण ने संजय गांधी से गुप्त मुलाकातें शुरू कर दीं। जिन चरण सिंह ने गृहमंत्री होते हुए भी इंदिरा गांधी को गिरफ्तार न करा पाने के लिए पूरी मोरारजी मंत्रिमंडल को 'नपुंसकों की टोली' घोषित कर दिया था, उन्हीं चरण सिंह ने प्रधानमंत्री बनने के लिए इंदिराजी का सहारा ले लिया।

जनता पार्टी की एकता एवं सरकार को बचाने की नानाजी ने जीतोड़ कोशिश की, पर सफल

विराट पुरुष

नहीं हुए। सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञों ने जयप्रकाश के कंधों पर चढ़कर सत्ता पाई थी, उन्होंने जे.पी. की भी पूर्ण उपेक्षा आरंभ कर दी। जे.पी. पूरी तरह टूट गए थे। 1978 में ही उन्हें दिखने लगा कि जनता पार्टी और इंदिरा गांधी की सरकारों के चरित्र में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। 1979 में जब जे.पी. रोगशय्या पर मृत्यु से जूझ रहे थे, तब चरण सिंह ने 26 जुलाई, 1979 को इंदिरा गांधी के समर्थन से सरकार बना ली। 15 अगस्त को लालकिले से भाषण में उन्होंने कहा कि वे नए चुनाव के पक्ष में नहीं हैं। पर ठीक 5 दिन बाद उन्होंने राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करके ताजे चुनाव कराने की प्रार्थना भेज दी, उसी दिन 11.15 बजे चंद्रशेखर और जगजीवन राम ने राष्ट्रपति से मिलकर बहुमत का दावा किया और अपने समर्थकों की सूची पेश करने की इच्छा प्रकट की तो राष्ट्रपति ने कहा कि मुझे कोई जल्दी नहीं है। आप अपनी सूची कल भी पेश कर सकते हैं। पर उसके ठीक आधे घंटे बाद उन्होंने लोकसभा को भंग कर दिया। नानाजी बुरी तरह आहत थे कि प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति जैसे उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति इतना सफेद झूठ बोलकर राष्ट्र को धोखा दे सकते हैं।

14 अगस्त, 1979 को उन्होंने चरण सिंह को एक बहुत लंबा पत्र लिखा। इस पत्र में नानाजी ने तिथि अनुसार उनकी सतालिल्प्सा, अवसरवादिता, परस्परविरोधी और असत्य कथनी के तथ्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया। यह पत्र भारत की राजनीतिक संस्कृति के पतन पर प्रकाश डालनेवाला एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। उसी पत्र में नानाजी ने लिखा कि 'मैं राजनीति में अपने लिए नहीं, राष्ट्रहित के लिए हूँ।'

केवल 24 दिन बाद ही इंदिरा गांधी ने चरण सिंह के पांवों के नीचे से प्रधानमंत्री की कुरसी खिसका ली और जनता पार्टी सरकार का प्रयोग धराशायी हो गया। अपनी आंखों के सामने दलविहीन लोकतंत्र के अपने स्वप्न का दल और वोट की राजनीति द्वारा अपहरण तथा हत्या होते देखकर भग्नहृदय जे.पी. 8 अक्टूबर, 1979 को महाप्रयाण कर गए। नानाजी का दम भी राजनीति में घुटने लगा था, वे उससे बाहर निकलने के लिए व्याकुल थे। किंतु चंद्रशेखर और मित्रों के आग्रह और जनता पार्टी व उसकी सरकार के पतन को रोकने के लिए वे प्रयासरत रहे। अक्टूबर 1979 में उन्होंने अंग्रेजी और हिंदी में* 'आर.एस.एस. : विक्टिम ऑफ स्लेंडर' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनसंघ की रचनात्मक भूमिका, संपूर्ण क्रांति आंदोलन और जनता पार्टी की अंतर्कलह पर एक प्रामाणिक समकालीन दस्तावेज है। जनता पार्टी के विघटन और जे.पी. के निधन से व्यथित नानाजी ने दल और वोट की सत्ता-राजनीति से पूरी तरह मुंह मोड़ लिया।

नानाजी का यह विश्वास उत्तरोत्तर दृढ़ होता जा रहा था कि वर्तमान राजनीतिक प्रणाली के भीतर लोकशक्ति का जागरण और सर्वांगीण विकास असंभव है। वे जनसहभाग के द्वारा विकास का रचनात्मक प्रयोग करने को व्याकुल हो उठे। उसके लिए राजनीति से छुटकारा पाना आवश्यक

* (RSS: Victim of Slander)

साक्षात् नानाजी

था। इस दिशा में पहले कदम के रूप में उन्होंने 20 अप्रैल, 1978 को एक वक्तव्य में 60 वर्ष से अधिक आयु के अनुभवी राजनीतिज्ञों को सत्ता से अलग होकर रचनात्मक कार्य का उदाहरण प्रस्तुत करने का आग्रह किया। सत्तारूढ़ दल के महामंत्री की ओर से आनेवाला यह वक्तव्य बहुत अधिक चर्चित रहा। किसी ने उनकी सलाह को नहीं सुना, पर नानाजी अपना पथ निश्चित कर चुके थे। 8 अक्टूबर, 1978 को उन्होंने पटना में लोकनायक जयप्रकाश की उपस्थिति में एक लंबा ऐतिहासिक वक्तव्य देकर सत्ता-राजनीति से अपने संन्यास की घोषणा कर दी। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि अब वे कोई चुनाव नहीं लड़ेंगे और पूरा समय अराजनीतिक रचनात्मक कार्य को समर्पित करेंगे। तब नानाजी अपनी आयु के 62 वर्ष पूरे कर रहे थे। संगठनात्मक और राजनीतिक कार्य का 38 वर्ष का लंबा अनुभव उनके पास था। वे अपनी लोकप्रियता और प्रभाव के शिखर पर थे। देश के सभी शीर्ष राजनेताओं, पत्रकारों, समाजसेवकों एवं उद्योगपतियों से उनका अनौपचारिक निकट संबंध बन गया था। अद्भुत कल्पनाशक्ति, संगठन-कुशलता व योजकता और साधन-संग्रहक की पूंजी लेकर वे रचनात्मक क्षेत्र में कूद पड़े।

इस सार्वजनिक घोषणा के पहले ही वे सर्वांगीण विकास के रचनात्मक प्रयोग की दिशा में कदम उठा चुके थे। गोंडा जिले के जिस चुनाव क्षेत्र का वे लोकसभा में प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उसे ही उन्होंने सर्वांगीण विकास की अपनी पहली प्रयोगशाला बनाने का निश्चय किया। गोंडा जिले से उनका संबंध गोरखपुर के विभाग प्रचारक और बाद में जनसंघ के महामंत्री के नाते बहुत पहले से चला आ रहा था। वहां के चप्पे-चप्पे को उन्होंने छाना था। वहां छाई गरीबी, अशिक्षा और पिछड़ेपन से वे भलीभांति परिचित थे। अतः स्वाभाविक ही उन्होंने इस पिछड़े जिले को अपने रचनात्मक कर्म की प्रयोगशाला बनाया। 25 सितंबर, 1977 को दीनदयालजी की जयंती के अवसर पर उन्होंने अपने निर्णय की घोषणा की। बलरामपुर की महारानी राजलक्ष्मी, जो लोकसभा चुनाव में उनकी मुख्य प्रतिद्वंद्वी थी, से भेंट होने पर जब उन्होंने अपनी योजना बताई तो उन्होंने जमीन का एक टुकड़ा नानाजी को भेंट किया। इसी टुकड़े को केंद्र बनाकर नानाजी ने 54 एकड़ क्षेत्रफल का एक विशाल परिसर बनाया, जिसे जयप्रकाश और उनकी धर्मपत्नी प्रभावती की संयुक्त स्मृति में 'जयप्रभा ग्राम' नाम दिया। नानाजी ने जिले को गरीबी से बाहर निकालने के लिए 'हर खेत में पानी, हर हाथ को काम' का नारा दिया। सर्वांगीण विकास के चार सूत्र निर्धारित किए 1. शिक्षा, 2. स्वास्थ्य, 3. स्वास्थ्य एवं 4. समरसता।

उन्होंने देखा कि खेती के विकास के लिए हैंडपंप के द्वारा भूजल को खेतों तक पहुंचाने की व्यवस्था करनी होगी। उन्होंने एक साल के भीतर 20,000 हैंडपंप के गड्ढे (बोरिंग) खोदकर विस्मयकारी रिकॉर्ड स्थापित कर दिया। महंगे स्टील पाइप की जगह बांस के पाइप का आविष्कार किया। बिजली चालित मोटर की जगह बैल चालित रहट का प्रयोग किया। परंपरागत दस्तकारों के लिए कच्चे माल व विक्रय केंद्रों की व्यवस्था की। युवाओं को रोजगार देने के लिए गोंडा में पॉलिटेक्निक केंद्र की स्थापना की। पशुपालन में मत्स्य-पालन, कुक्कुट-पालन, गोपालन के प्रयोग किए। सामाजिक समरसता का दृश्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से 25 नवंबर,

विराट् पुरुष

1978 का दिन स्वाधीन भारत के इतिहास का एक अविस्मरणीय दिन रहेगा। उस दिन पहली बार भारत के राष्ट्रपति डॉ. नीलम संजीव रेड्डी ने जयप्रभा ग्राम में गरीब किसानों के साथ एक पवित्र में जमीन पर बैठकर पतल और मिट्टी के प्याले में सादा भोजन किया और ग्रामोदय प्रकल्प का औपचारिक (विधिवत्) उद्घाटन किया। यह नानाजी की सर्वमान्यता का ही परिचायक है कि राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक बालासाहेब देवरस की बगल में बैठने में कोई परहेज नहीं किया। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की दृष्टि से अनेक प्रकल्पों का विस्तृत विवरण न देकर, इतना कहना पर्याप्त होगा कि गोंडा प्रकल्प की सफलता की गूंज देश और विदेश में सुनाई दी। हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक बी.जी. वर्गीस ने 17 से 19 अक्टूबर, 1981 में गोंडा जिले का सघन दौरा करके प्रत्यक्ष काम को देखा और लेखों में सराहा। मुंबई के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' ने 15 अगस्त, 1981 के विशेषांक में लिखा—'गोंडा में अक्षरशः चमत्कार हुआ है।' लंदन के प्रतिष्ठित साप्ताहिक 'इकोनॉमिस्ट' ने 22 मई, 1982 के अंक में बांस के पाईप और डीजल की जगह बैलों की जोड़ी के द्वारा हैंडपंप को चलाने के प्रयोग का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया।

दल और सत्ता की राजनीति से पूरा संन्यास लेकर नानाजी अपने रचनात्मक प्रयोगों में लीन थे कि दैवयोग से 23 जून, 1980 को संजय गांधी की एक विमान दुर्घटना में अनायास मृत्यु हो गई। किसी सांसद ने लोकसभा में उस विमान दुर्घटना के पीछे नानाजी का षड्यंत्र बता दिया। फिर क्या था, नानाजी अखबारों में छा गए। साक्षात्कार के लिए उनके यहां पत्रकारों की कतार लग गई। उस समय नानाजी ने अपना माथा ठोंककर कहा, 'कैसी विचित्र स्थिति है। जिस रचनात्मक काम में मैं अपना खून-पसीना बहा रहा हूँ, उसमें इन पत्रकारों की कोई रुचि नहीं और जिस घटना से मेरा दूर का संबंध नहीं, उसके लिए मेरा प्रचार कर रहे हैं।'

1983 अक्टूबर में नानाजी ने दिल्ली में एक अभिनव कार्यशाला आयोजित की, जिसने देश भर में स्वप्रेरणा से विविध प्रकार के रचनात्मक कार्यों में लगे संघ-पृष्ठभूमि के कार्यकर्ताओं का पहली बार एकत्रीकरण किया गया। सरसंघचालक बालासाहेब देवरस से इस कार्यशाला का उद्घाटन कराया। जनप्रेरणा और जनसहभाग पर आधारित सर्वांगीण विकास के अनेक विध-प्रकल्पों की नानाजी की व्यावहारिक बुद्धि ने कल्पना की, उसकी विस्तृत योजना तैयार की, उसे साकार रूप देने के लिए मानवी एवं भौतिक साधन जुटाए और उसके क्रियान्वयन के लिए समर्पित कार्यकर्ताओं की टीम खड़ी की। गोंडा जिले में विकास का नमूना खड़ा करने के साथ-साथ उनका मस्तिष्क देश के विभिन्न भागों में वहां की स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नए-नए प्रकल्पों की रचना करने लगा। नागपुर शहर में निर्धन और पिछड़ी बस्तियों के बच्चों को विकास-प्रक्रिया का अंग बनाने के लिए उन्होंने 'बालजगत' के रूप में एक अद्भुत प्रकल्प खड़ा किया। वनवासियों की दृष्टि से बिहार के सिंहभूम व सुंदरगढ़ जिलों में वनवासी प्रकल्पों का सूत्रपात किया। अहमदाबाद (गुजरात) में सेवानिवृत्त प्रौढ़ नागरिकों को समाज में पिछड़े एवं दुर्बल वर्गों की सेवा में प्रवृत्त करने के लिए 'वानप्रस्थ अभियान' आरंभ किया। पानी के अभाव से जूझते मराठवाड़ा क्षेत्र के बीड जिले में जल संचय, कृषि विकास एवं गुरुकुल आदि के प्रयोग आरंभ किए।

साक्षात् नानाजी

1990 में नानाजी को पवित्र तीर्थ चित्रकूट ने अपनी गोद में खींच लिया। वहां उन्होंने 'ग्रामोदय विश्वविद्यालय' की अभिनव योजना तैयार की, जिसमें शिशु अवस्था से स्नातकोत्तर कक्षाओं तक की शिक्षा से निकले छात्र शहरों की ओर भागने के बजाय ग्राम्य-जीवन अपनाने के लिए प्रवृत्त हों। मध्य प्रदेश सरकार ने नानाजी को उसका कुलाधिपति बनाया, किंतु दलीय राजनीति उसे सहन नहीं कर पाई। चित्रकूट में नानाजी ने आरोग्यधाम, उद्यमिता विद्यापीठ, गोशाला, वनवासी छात्रावास, गुरुकुल, सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय जैसी प्रकल्पों की बड़ी शृंखला खड़ी कर दी। आर्थिक, शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य-रक्षा के इन प्रयोगों के बीच नानाजी की कल्पना का अनूठा चमत्कार है, 'राम दर्शन' नामक स्थायी प्रदर्शनी, जिसमें जाकर प्रत्येक दर्शनार्थी राम के अवतारी रूप के पीछे उनके लोक कल्याणकारी मर्यादा संस्थापक जीवन की प्रेरणा लेकर आता है। मंदाकिनी नदी के तट पर रामनाथ गोयनका घाट का निर्माण किया। आर्थिक स्वावलंबन, शिक्षा स्वास्थ्य की चिंता के साथ-साथ नानाजी ने व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास को भी उतना ही महत्त्व दिया। उन्होंने भक्ति को लोक कल्याण का माध्यम बनाया। चित्रकूट की रामदर्शन प्रदर्शनी और जयप्रभा ग्राम गोंडा में 'भक्तिधाम' की रचना इसके उदाहरण हैं।

चित्रकूट जिले में उन्होंने गांवों को मुकदमेबाजी से मुक्त कराने की एक अभिनव योजना आरंभ की। इस योजना के अंतर्गत पीढ़ी-दर-पीढ़ी मुकदमेबाजी में फंसे परिवारों को समझा-बुझाकर आपस में झड़ते बैठकर अपने विवाद का हल न्यायालय से बाहर निकालने और मुकदमा वापस लेने की प्रेरणा देने का प्रयास किया। अब तक लगभग 80 गांवों को विवादमुक्त क्षेत्रों में लाने में सफलता मिली है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के वकीलों के एक दल ने स्वयं आकर इस अविश्वसनीय चमत्कार का दर्शन और अध्ययन किया। उन्होंने उसकी सफलता की साक्षी को लिखित रूप में प्रसारित किया। नानाजी ने गोंडा, बीड और चित्रकूट में भारत सरकार के चार कृषि विज्ञान केंद्रों के संचालन का बीड़ा उठाया। इनमें से दो कृषि विज्ञान केंद्रों को भारत सरकार ने सर्वोत्तम घोषित किया है। इन सभी प्रकल्पों को चलाने के लिए 'समाज शिल्पी दंपती' की अभिनव योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अंतर्गत समाजसेवा की भावना से अनुप्राणित पति-पत्नी अपने भरण-पोषण का न्यूनतम जीवन स्तर अपनाकर अपना पूरा समय सर्वांगीण विकास कार्यों में लगाते हैं। अकेले चित्रकूट क्षेत्र में 35 समाज शिल्पी दंपती कार्यरत हैं।

चित्रकूट जिले से नानाजी के रचनात्मक कार्य की सुगंध देश-विदेश में फैली, नानाजी के पुराने सहयोगी और मित्र अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री के नाते वहां गए और सार्वजनिक भाषणों में समय न गंवाकर उन विकास कार्यों को अपनी आंखों से देखा। भारत सरकार ने नानाजी को 23 मार्च, 1999 को पद्म विभूषण सम्मान से अलंकृत किया और फिर समाजसेवी के नाते राष्ट्रपति ने 22 नवंबर, 1999 को उन्हें राज्यसभा के लिए नामांकित किया। नानाजी ने अपनी सांसद निधि की एक-एक पाई को चित्रकूट के विकास में लगाया। सांसदों का वेतन-

विराट् पुरुष

भत्ता बढ़ाने का विरोध किया। उसमें असफल रहने पर अपने हिस्से की बड़ी हुई राशि को प्रधानमंत्री सहायता कोष में भेंट कर दिया। 6 अक्टूबर, 2005 को राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने चित्रकूट यात्रा की, जमीन पर ग्रामवासियों के साथ बैठकर पत्तल-दोनों में भोजन करके समरसता का उदाहरण प्रस्तुत किया। चित्रकूट से लौटकर वे वहां के रचनात्मक प्रकल्पों के प्रचारक ही बन गए हैं। अनेक विश्वविद्यालयों ने नानाजी को डी.लिट्. की मानद उपाधियां देकर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में उनके रचनात्मक योगदान को मान्यता दी है, पर नानाजी उन सबसे ऊपर उठ चुके थे। 94 वर्ष लंबे जीवन काल में राष्ट्र-जीवन के अनेक क्षेत्रों में अपने कर्तृत्व का डंका बजाया। दक्षिण में बीड से उत्तर में गोंडा जिले तक विकास के अनेक रचनात्मक प्रकल्पों की शृंखला खड़ी की, किंतु उनमें कहीं पर भी नानाजी का नाम नहीं है, नानाजी का चित्र नहीं है, हर जगह उन्हीं के चित्र और नाम हैं, जिनसे उन्होंने जीवन में कभी भी प्रेरणा पाई। डॉ. हेडगेवार, गोलवलकर 'गुरुजी', दीनदयाल उपाध्याय, जयप्रकाशजी और प्रभावतीजी आदि-आदि।

विश्राम करना तो नानाजी ने सीखा ही नहीं। अपने ध्येयवाक्य 'हम अपने लिए नहीं, अपनों के लिए हैं और अपने वे हैं, जो पिछड़े, उपेक्षित और पीड़ित हैं' को चरितार्थ करने के लिए वे अपने जर्जर शरीर को अंत तक रगड़ते रहे। कई वर्षों तक वे भीष्म पितामह की तरह शय्यासीन रहे। अपने पैरों पर न पूरी तरह खड़े हो सकते थे, न आंखों से स्पष्ट देख सकते थे, न कानों से पूरी तरह सुन सकते थे, किंतु उनका दिल और दिमाग हर क्षण समाज की चिंता करते रहे। वे मुंह से बोलकर 'युवाओं के नाम पाती' लिखाते रहे और अंत में 1997 में स्वप्रेरणा से उन्होंने अपनी देह को शोध-कार्य के लिए समर्पित करने की वसीयत लिख दी। 27 फरवरी 2010 को अपनी कर्मभूमि चित्रकूट में चतुष्पुरुषार्थ का यह जीवंत मॉडल इस संसार से महाप्रयाण कर गया और उनकी वसीयत के मुताबिक उनकी देह दिल्ली के एम्स में समर्पित कर दी गई।



आनंद यात्री

एक खोज यात्रा

सन् 1995 में श्री दत्तप्रसाद दाभोलकर द्वारा नानाजी के साथ किया गया यह साक्षात्कार मराठी प्रकाशन 'कालनिर्णय' के दीपावली अंक से साभार लिया गया है। मराठी से इसका हिंदी अनुवाद वर्षों तक दीनदयाल शोध संस्थान में नानाजी के सहयोगी तथा पाञ्चजन्य के संपादक रहे श्री यादवराव देशमुख* ने किया तथा इसकी प्रस्तावना भी उन्होंने ही श्री दाभोलकर से बातचीत के आधार पर लिखी है। इसके अतिरिक्त श्री दाभोलकर ने नानाजी की मृत्यु के पश्चात् एक मनोगत भी लिखा। वह इस खंड के अंत में दिया गया है। साधारणतया, तकनीकी रूप से ये नानाजी समग्र का हिस्सा नहीं होते लेकिन साक्षात्कार के पीछे की भावना को समझने में ये मदद करते हैं। साक्षात्कार के बीच-बीच में श्री दाभोलकर ने जो टिप्पणियां लिखी हैं, वे काफी लंबी लग सकती हैं, लेकिन प्रश्नों व उत्तरों के संदर्भ समझने में वे भी सहायक होंगी, इसलिए उन्हें भी ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तावना तो साक्षात्कार के आरंभ में दी गई है और मनोगत खंड के अंतिम पृष्ठों में। श्री दाभोलकर की टिप्पणियों को इटैलिक (*Italics*) अक्षरों में दिया गया है। पूरे खंड में प्रश्न समान रूप से बोल्ड (**Bold**) में हैं और नानाजी के उत्तर नॉर्मल फॉण्ट (सामान्य लिपि) में।

मैं संघ परिवार का सदस्य नहीं। नानाजी, मेरी तुलना में उम्र में, ज्ञान में, अनुभव में एवं अधिकार में मुझसे सौ गुना बड़े थे। फिर भी मैं नानाजी का नजदीकी मित्र बन गया। यह कैसे संभव हो पाया—इसका मेरे अनेक मित्रों के साथ ही मुझे भी बहुत आश्चर्य होता है।

इस मित्रता का एकमेव कारण है नानाजी का अलौकिक व्यक्तित्व। अपनी इस महानता को पूरी तरह विस्मृत कर संपर्क में आए व्यक्तियों एवं उनकी समस्याओं को बाल-सुलभ कौतूहल, किंतु सामंजस्य के साथ समझ लेने की उनकी अद्भुत क्षमता।

मैं तो व्यवसाय से एक शोधकर्ता हूँ। दिल्ली स्थित विश्वविख्यात 'श्रीराम इंस्टीट्यूट फॉर

* अनुवादक के दो शब्द 'अनुलग्नक' में।

विराट् पुरुष

इंडस्ट्रियल रिसर्च' नामक संस्था का अनेक वर्षों तक संचालक रहा अर्थात् नए-नए रासायनिक अथवा औद्योगिक पदार्थों पर शोध करना या उन पदार्थों के निर्माण का सरल तरीका ढूँढना—यही था मेरा काम।

फिर भी शोध पत्रकारिता मेरा अति प्रिय विषय रहा है। मेरी तो यह दृढ़ मान्यता है कि प्रत्येक चिंतक सही अर्थों में शोध पत्रकार ही रहता है। साथ ही हर शोध पत्रकार वैज्ञानिक होता है।

कुछ वर्षों पूर्व मैंने विनोबाजी के सौ ग्रामदान के विकास का अवलोकन करने के लिए उ.प्र. के मिर्जापुर जिले में गोविंदपुर नामक केंद्र की यात्रा की। वहां के कार्य का संचालन समाजसेवी प्रेमभाई कर रहे थे। वहां मैं कई दिनों तक रहा। वहां कार्यरत कार्यकर्ताओं के साथ ही वहां के ग्रामीणों से भी संपर्क किया।

ठीक इसी प्रकार मैंने उ.प्र. के गोंडा जिले में नानाजी के मार्गदर्शन में चलनेवाले 'गोंडा प्रकल्प' का भी बारीकी से अध्ययन करने का प्रयास किया। यह यात्रा पूरी करने के बाद मैंने श्री नानाजी एवं गोविंदपुर के श्री प्रेमभाई से विस्तार से चर्चा की। इस शोध-यात्रा के अनुभवों पर आधारित मैंने 'प्रकाश वाटा' नामक एक पुस्तक लिखी। पुणे के राजहंस प्रकाशन ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया। महाराष्ट्र शासन ने 'प्रथम पत्रकारिता पुरस्कार' से इस पुस्तक को सम्मानित किया।

सच पूछिए तो 'प्रकाश वाटा' नामक इस पुस्तक में मैंने इन दोनों प्रकल्पों की आलोचना करने में जरा भी संकोच नहीं किया, पर आश्चर्य यह कि मेरे द्वारा की गई ईमानदारी या उसकी त्रुटियों को देखकर नानाजी ने प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कहा, "मुझे खुले मन से तथा प्रामाणिक रूप से विचार करनेवाले व्यक्ति बहुत अच्छे लगते हैं।"

मैं अनजाने में ही अपनी क्षमता का विचार न करते हुए सहज ही नानाजी के बहुत निकट पहुंच गया। इसमें मेरी अपनी विशेषता कुछ भी नहीं। जैसे कोई चुंबक सहज में ही सैकड़ों लौहकणों को अपनी ओर खींच लेता है—नानाजी का व्यक्तित्व भी उसी चुंबक के समान था।

स्वयं के बारे में बोलते समय नानाजी ने एक बार कहा था, "लोगों को अच्छी तरह समझने की शक्ति मुझे नियति से ही प्राप्त है।" यह बात अनेक बार मेरे अनुभव में भी आई है। सामने बैठे हुए किसी व्यक्ति को देखकर या उसकी बातें सुनकर नानाजी सहज ही उसकी 'कुंडली' मन-ही-मन में संजो लेते थे। आवश्यकता पड़ने पर उसका उल्लेख भी कर देते थे। उसी सहजता के साथ वे सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्याओं की सर्वस्पर्शी तर्कयुक्त व्याख्या भी कर लेते थे, किंतु एक बार राजनीति को हमेशा के लिए 'राम-राम' कहने के पश्चात् बहुत आग्रह करने पर भी वे राजनीतिक प्रश्नों को टाल जाते थे। उनका सहज ही उत्तर होता था, "अरे, दिमाग का वह कंप्यूटर तो मैंने कब का निकाल डाला है।"

अनजाने में मैं न जाने कैसे नानाजी के निकट पहुंच गया। नानाजी और मधु लिमये के बीच अनेक बार पत्राचार का माध्यम बनने का मुझे सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

साक्षात् नानाजी

उससे भी अधिक महत्त्व की बात यह कि राजनीति के अतिरिक्त चतुर्दिक् होनेवाले अत्याचारों से उन्हें अवगत कराने पर द्रवित होकर वे उसका प्रतिकार करने में अपनी पूरी शक्ति-बुद्धि लगा देते। मुझे उसने कहा था, “दाभोलकर! आप अपने लिए कभी भी कुछ मांगते नहीं। मैं स्वयं के लिए भी कभी कुछ करता नहीं। हम यह जो कुछ भी कर रहे हैं, वह समाज के लिए कर रहे हैं। मेरे संघ ने मुझे यह घुट्टी पिलाई है कि ऐसे सभी कामों को करते समय जाति, संप्रदाय, धर्म आदि कहीं भी आड़े नहीं आना चाहिए।”

एक बार मैंने कुछ शरारत भरे स्वर में नानाजी से कहा, “नानाजी, मैं आपसे कुछ टेढ़े-मेढ़े प्रश्न पूछना चाहता हूँ।” नानाजी बोले, “अवश्य। आप अपना टेप रिकॉर्डर भी साथ में रखना और प्रश्नों की बौछार भी आने देना। राजनीति में कार्यरत रहते हुए भी मैंने ‘मनस्यन्यद् वचस्यन्यद्’ (मन में कुछ और बोलने में कुछ और) यह कभी भी नहीं किया।” इस प्रकार हम दोनों के बीच संवाद प्रारंभ हो गया।

विगत 10-12 वर्षों में न जाने क्यों मधु लिमये और नानाजी देशमुख—इन दो महानुभावों के बीच में उलझ गया हूँ। इन दोनों से प्रत्यक्ष भेंट होने पर हर बार इन दोनों का ही एक अद्भुत दर्शन होता और मैं अधिकाधिक भ्रमित हो जाता। इन दोनों का सबकुछ सचमुच ही सारे जग से निराला है। राजधानी दिल्ली तो मात्र सत्ता को पहचानती है। सत्ताच्युत होते ही लोग क्षण भर में विलुप्त हो जाते हैं। इस महानगरी की मानो पश्चिम दिशा है ही नहीं। सिंहासन खिसकते ही अपने पिता को भी ‘आप कौन हैं’—यह बात सहज रूप में पूछनेवाली है यह नगरी।

सत्ता-संपत्ति के रूप में पास में कुछ न होते हुए भी ये दोनों क्या कर रहे हैं, क्या बोल रहे हैं, इसकी जानकारी अच्छे भले लोग रखना चाहते हैं। लिमये से मिलने के लिए चंद्रशेखर, मुलायम सिंह, देवीलाल जैसे लोग आते हैं और लिमये उन्हें खरी-खरी सुनाने में भी नहीं हिचकते, यह बात समझ में आती है, पर बाबरी मसजिद के विवाद से उत्पन्न आतंक, आक्रोश, अशांति को शांत करने के लिए मोरोपंत पिंगले 4 दिसंबर से पूर्व अनेक बार मिलने आए थे—यह बात कितने लोग जानते हैं? मुरली मनोहर जोशी और आडवाणी नानाजी से मिलने आते हैं—यह तो ठीक, पर राजनीति से पूर्ण विराम लेकर उसके संबंध में एक शब्द भी न बोलने की प्रतिज्ञा लिये हुए नानाजी से मिलने हेतु दिल्ली आने के लिए चंद्रशेखर और मुलायम सिंह आतुर क्यों होते हैं—यह बात मेरी समझ के बाहर है।

यह सब देखने-सुनने के बाद इन दोनों के बारे में मेरे मन में कौतूहल जाग्रत् होता है। महाराष्ट्रीय मध्यम वर्गीय परिवार में जन्म लेनेवाले ये दो मराठी बालक। बचपन से ही अंग्रेजी वगैरह सीखने के चक्कर में नहीं पड़े। कोई बड़ी डिग्री, पैसा या परिचय जैसी खोखली पूंजी (जो आजकल बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है) पास में नहीं। ऐसा होते हुए भी ये दोनों राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचकर अपनी धाक जमाने में सफल हुए। इन दोनों के जीवन से युवा वर्ग को क्या सीख लेनी चाहिए, यह जानने की इच्छा होती है।

विराट् पुरुष

कई बार इन बातों पर विचार करते समय मन और भी भ्रमित हो जाता है। दोनों ही लोहिया के निकटस्थ बने। नानाजी ने तो राजनारायण के आग्रह पर लोहियाजी को संयुक्त समाजवादी दल का सदस्य भी बनाया। इन बातों को जाने दें। लोहियाजी से गुणा-भाग की राजनीति सीखकर सन् 1977 में इन दोनों ने मिलकर एक विलक्षण खेल खेला। इनकी चाणक्य बुद्धि ने असंभव को संभव कर दिखाया। बलशाली दिखनेवाली कांग्रेस की चूले हिला डालीं, उसकी किरकिरी कर डाली। इसके बावजूद इन दोनों ने सत्ता से दूर रहना सहज ही स्वीकार कर लिया। इनमें से एक को जनता पार्टी तोड़ने के आरोप का कष्ट सहना पड़ा और दूसरा उसी समय जनता पार्टी और राजनीति को हमेशा के लिए राम-राम कहकर और फिर कभी भी पीछे न देखते हुए एक अलग मार्ग का राही बन गया। राजनीति में ऐसी विलक्षण छलांग मारने के बाद भी इन दोनों ने राजनीति से पूर्णतः संन्यास क्यों ले लिया, यह भी मन में समझने की आतुरता पैदा हुई। क्या सचमुच ही आज की राजनीति इतनी निकृष्ट और खराब हो गई है कि मध्यम वर्गीय मराठी संस्कृति और संस्कारों में पली-बढ़ी युवा पीढ़ी एक बार ऐसे दमघोंटू वातावरण से मुक्त होने की इच्छा करने लगे।

एक बात लेकिन सच है। विगत 10-15 वर्षों की अवधि में लिमये राजनीतिक समस्याओं और समीकरणों पर सतत चिंतन करनेवाले मानो एक शक्तिशाली कंप्यूटर थे तो दूसरी ओर नानाजी सामाजिक समस्याओं का गंभीर चिंतन करते हुए उनके निराकरण का मार्ग ढूंढनेवाली एक प्रयोगशाला बन गए। 10-15 दिन का अंतराल भी लिमये से मिलकर उनके नवीनतम विचारों को जानने में बाधक होता तो मुझे ऐसा लगने लगता, मानो जीवन में एक प्रकार की रिक्तता आ गई हो और नानाजी से भेंट होने पर कितना अच्छा लगता। किसी बड़े विशेषज्ञ से भेंट होने पर जैसे कोई व्यक्ति अभिभूत हो जाता है—वैसी ही मेरी स्थिति थी।

इन दोनों से मिलने का एक और भी लाभ। दिल्ली में थोक के भाव बड़े-बड़े नेता मिलते हैं, पर उनका क्या उपयोग? सब मानो समुद्र का खारा पानी। किसी भी राजनीतिक दल के नेता से मिलिए—वह अपने मन की कोई बात नहीं बोलता। वह बोलेगा वही, जो उसके विचार से बोलना आवश्यक हो। किसी भी छोटे-बड़े पत्रकार से मिलिए। वह जैसे लेखन में वैसे ही बातचीत में इस बात की पूरी सावधानी बरतेगा कि उसकी बात उसके मालिक के अनुकूल है या नहीं। यों तो सभी आपके-हमारे समान ही साधारण संसारी मनुष्य। अपनी कुरसी और नौकरी की विवंचना में ही फंसे हुए। इतना ही नहीं, नींद में भी इस बात की सावधानी बरतने के आदी कि कहीं भूल से भी उन्हें धक्का न लगे, किंतु इन दोनों का तो सबकुछ अलग ही, बहुत अच्छा लगनेवाला। प्रश्नों की निर्बाध चर्चा और विचार भी सटीक। इसी कारण बार-बार मन में यह विचार आता है कि इन दोनों का संपूर्ण जीवन उन्हीं से समझा जाए। बचपन, उभरता यौवन, राजनीति में अग्रगण्यता और उसी के बाद राजनीति से संन्यास भी। जीवन में उतार-चढ़ाव, आसन्न संकट और आज की राजनीतिक समस्याओं पर उन्हें क्या लगता है—यह सब जानने-समझने की तीव्र इच्छा, किंतु प्रत्यक्ष भेंट में गपशप का ऐसा माहौल कि ये सब बातें पूछना ही भूल जाता। लिमयेजी

साक्षात् नानाजी

ने तो आत्मचरित्र लिखना भी प्रारंभ किया, पर नानाजी? उन्होंने श्री दिलीप माजगांवकर से कह दिया था कि यदि दाभोलकर लिखने को तैयार हों तो मुझे अपना आत्मचरित्र भी बताने में कोई परेशानी नहीं होगी।

पर अचानक लिमयेजी ने संसार से विदा ले ली। ऐसा लगा मानो अपने जीवन की कोई अमूल्य वस्तु खो गई। नानाजी अब अस्सी के पार जाएंगे। अभी तो वे सीधे तनकर चलते हैं और इतनी यात्रा करते हैं कि मानो पैरों में पहिया लग गया हो। हम-आप सोच भी नहीं सकते, इतना काम करते हैं। भोजन भी जमकर करते हैं। नित्य नई-नई कल्पनाओं में रंगे रहते हैं, पर एक बार उनसे विस्तृत चर्चा की जाए, ऐसा मन को लगता था। यहां मुझे एकाएक चर्चिल से संबंधित एक घटना का स्मरण हो आया। चर्चिल का 90वां जन्मदिन। एक मध्यम वर्गीय पत्रकार कुछ कहने के लिए खड़ा हो गया और बोला, “यहां ऐसे ही चर्चिल का सौवां जन्मदिन मनाया जाएगा और मैं उसमें भी शामिल होऊंगा, इसका मुझे विश्वास है।” चर्चिल अपना चुरट सुलगाते हुए सहज भाव से बोले, “तुम्हारी शारीरिक अवस्था देखकर तो यह बात जरा कठिन ही लगती है।”

अब शीघ्र से शीघ्र नानाजी से एक विस्तृत वार्ता करनी चाहिए—ऐसा मन-ही-मन मैं निश्चय करता हूं।

नानाजी ने इस बात की खुली छूट दी कि मैं चाहे जो भी प्रश्न करूं। ‘चाहे जो’ का एक सहज अर्थ मैंने निकाला— ‘चाहे जैसे प्रश्न।’ मैं प्रश्नों की एक लंबी सूची तैयार कर उसे नानाजी के पास भेज देता हूं। प्रश्नों की सूची विस्तृत है। कुछ गिने-चुने, कुछ सीधे, कुछ टेढ़े, कुछ ऐसे-वैसे साधारण से, कुछ सुखद, कुछ दुःखद, कुछ कड़वे, तो कुछ परेशान करनेवाले। ऐसे सभी प्रश्न उस सूची में हैं। दीनदयाल उपाध्याय की हत्या आपने करवाई—ऐसा बलराज मधोक का आरोप? उसका क्या? गांधी हत्या और संजय गांधी की दुर्घटना में भी आपका नाम जुड़ा। उसका क्या? जनता पार्टी कैसे बनाई और फिर राजनीति से संन्यास ले लिया। यह सब कैसे? लोहिया से आपने मित्रता स्थापित कर ली और जयप्रकाशजी को तो अच्छी प्रकार से आत्मसात् कर लिया, ऐसा लोग कहते हैं। वह कैसे? आजकल निश्चित रूप से क्या कर रहे हैं? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों की झड़ी।

मेरे ऐसे ऊटपटांग प्रश्नों पर नानाजी कभी भी मेरे ऊपर नाराज नहीं होंगे। इतना ही नहीं तो उत्तर देने में भी कोई कोताही नहीं करेंगे—इस बात के प्रति मैं पूरी तरह आश्वस्त था और हुआ भी ऐसा ही। नानाजी का तुरंत उत्तर आता है—“आपके सभी प्रश्न सीधे सरल हैं। एक बार भरपूर समय निकालकर शांति के साथ हम लोग बैठें। कदाचित् बातों के दौरान और भी कुछ प्रश्न निकलें।”

सच पूछा जाए तो मुझे भी इन प्रश्नों की आड़ में उसके आगे भी बहुत कुछ पूछना है। जीवन के 80 वर्ष पार करने के बाद भी तरुणाई के उत्साह से काम करनेवाले, जीवन में अनेक क्षेत्रों में उच्च स्थिति प्राप्त करने के बाद एक ही क्षण में उसे राम-राम कहनेवाले, सबकुछ भूलकर पुनः नवनिर्माण की नई दिशा खोजते हुए, सृजन की हुंकार से आपूरित, बेचैन होकर घूमनेवाले

विराट् पुरुष

इस व्यक्ति को मैं समझना चाहता हूँ। मेरे जीवन में दो हीरो हैं—एक लिमये और दूसरे नानाजी। अब तो मात्र नानाजी से ही चर्चा संभव है। कदाचित् मैं कुछ समझ पाऊंगा या फिर नानाजी पुनः मुझे झटका देकर आगे निकल जाएंगे? पर प्रयत्न करने में तो कोई हर्ज नहीं।

हम दोनों ही अपने हाथ की प्रश्नावली दूर रख देते हैं। अब तो मात्र दिन और समय को भूलकर स्वच्छंद चर्चा। मैं पूछता हूँ, “नानाजी, सन् 1975 से 1979 तक का कालखंड इस देश में विलक्षण सा रहा है। आप और लिमयेजी इस कालखंड के निरे दर्शक ही नहीं थे, अपितु एक प्रकार से आप दोनों इसके प्रत्यक्ष या परोक्ष, जाने या अनजाने में ही वयों न हों, निर्माता थे। लिमयेजी से तो इस विषय पर मैं अनेक बार बातें कर चुका हूँ, पर आपने तो सभी से क्या, मुझसे भी बात करना सफाई से टाल दिया है।”

नानाजी बोले, “बताता हूँ, एकदम विस्तार के साथ बताता हूँ। मेरे बारे में आप अच्छी प्रकार से जानते हैं कि मन में कुछ और बोलने में कुछ, यह मेरा स्वभाव ही नहीं है, किंतु इस कालखंड पर मैं जो कुछ बोलूंगा उसका कुछ अंश कुछ समय के लिए अपने पास टेप पर ही रखना। उन अंशों का 8-10 वर्षों बाद यथासमय उपयोग करना।”

नानाजी ने बोलना प्रारंभ किया और वे स्वयं ही इसमें खो गए। ठीक उसी प्रकार जैसे लिमयेजी भी खो जाते थे। अत्यंत छोटी-से-छोटी घटना भी उन्हें स्पष्ट रूप से याद है। प्रत्येक घटना दिन, तिथि, महीना सहित ज्यों-की-त्यों उनके मस्तिष्क में अंकित है। मानो वे सभी घटनाएं पुनः उनके सामने घटित हो रही हों। आज टेप सुनते समय भी वह आवाज कितनी अलग सी ही लगती है।

पूर्णतः स्वयं में आत्मसात् नानाजी बोलते जा रहे हैं। घटना 12 जून, 1975 की है। गुजरात में छात्र आंदोलन पूरे जोश में था। मोरारजी भाई अनशन पर बैठे और इतने में ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय प्रसारित हुआ। इंदिरा गांधी की लोकसभा सदस्यता रद्द कर दी गई। उस निर्णय के विरुद्ध तत्काल इंदिराजी अपने पक्ष में प्रदर्शनों का आयोजन करती हैं। उन प्रदर्शनों का निहितार्थ यही कि न्यायालय के निर्णय को रद्दी की टोकरी में फेंक कर आपातकाल लागू किया जाए। उस दिन संगठन कांग्रेस की कार्यसमिति की बैठक पुणे में चल रही थी। जनसंघ का अधिवेशन अजमेर में चल रहा था। दैवी संयोग से मैं उस अधिवेशन में न जाकर दिल्ली में ही था। 13 जून को मैं, रवि रे, संगठन कांग्रेस के सिकंदर बख्त व स्वतंत्र पार्टी के पीलू मोदी एकत्र बैठे। अपने-अपने दल के नेताओं को तार भेजकर तत्काल दिल्ली बुलाने का निर्णय लिया गया और हम चारों राष्ट्रपति भवन के सामने धरने पर बैठ गए। हम चारों ही अपने-अपने दल के सम्माननीय नेता थे। मैं जनसंघ का मंत्री था और सिकंदर बख्त अपने दल के प्रधान सचिव। पीलू मोदी तो अपनी स्वतंत्र पार्टी के सर्वेसर्वा ही थे। उस समय लिमयेजी वहां नहीं थे, पर हमने ‘लोक संघर्ष समिति’ स्थापित करने का निर्णय किया, पर उसमें एक गड़बड़ थी। चौधरी चरण सिंह को उस समिति का अध्यक्ष बनने का प्रस्ताव था। ऐसा कुछ हो गया होता तो मूल में ही गड़बड़ हो जाती। बीजू पटनायक चौधरी साहब के साथ थे।

साक्षात् नानाजी

मैंने बीजू से कहा, “मैं उस समिति के अध्यक्ष पद के लिए मोरारजी भाई का नाम सुझानेवाला हूँ। आप उनका समर्थन करें। मैं बीजू से यह बात क्यों कह रहा हूँ, यह बात बीजू अच्छी तरह समझते थे। हमने ठीक वैसा ही किया। मोरारजी अध्यक्ष बने, अशोक मेहता कोषाध्यक्ष। राजनारायण मेरा नजदीकी मित्र। उसे महासचिव बनाना था, किंतु चौधरी चरण सिंह ने जोर देकर उसके स्थान पर मेरे नाम का सुझाव दिया। 25 जून को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल जनसभा हुई। उस जनसभा में केवल तीन लोगों के ही भाषण हुए—पहले जयप्रकाशजी, दूसरे मोरारजी और तीसरा मैं।”

बातचीत के बीच में ही टोकते हुए मैं बोलता हूँ, “नानाजी, आप जयप्रकाशजी के इस आंदोलन में कूदे और आपने इसकी बागडोर संभाली। वास्तव में इस आंदोलन की सफलता को ही मैं मुख्य कारण मानता हूँ। जयप्रकाशजी को इस आंदोलन में कैसे लाया गया, यह बात मैं समझना चाहता हूँ?”

नानाजी बोले, “यह बात मैंने, रामधारी सिंह दिनकर और रामनाथ गोयनका ने पहले ही समझ ली थी। इस देश में इंदिरा गांधी को हराना है तो जयप्रकाशजी को पुनः राजनीति में सक्रिय करना और आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए तैयार करना होगा। सभी को यह बात जंच तो गई, पर सभी की एक ही आशंका थी कि यह संभव कैसे हो सकता है? “*आप तो ठहरे संघ के। ऐसी स्थिति में यह कैसे संभव हो सकेगा?*” मैंने कहा। “संघ-जनसंघ इसका जरा भी विरोध नहीं करेगा—इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ। मैंने जैसे लोहियाजी का विश्वास हासिल किया, उसी प्रकार जयप्रकाशजी का विश्वास प्राप्त कर उन्हें इस संघर्ष का नेतृत्व करने के लिए मैं तैयार कर लूंगा—इसका भरोसा रखें।”

जयप्रकाशजी ने बिहार में भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। उस आंदोलन के लिए आवश्यक संगठनात्मक शक्ति हमने किसी भी प्रकार की अपेक्षा किए बिना ईमानदारी के साथ उनके पीछे खड़ी कर दी। मेरी जयप्रकाशजी की नजदीकी बढ़ती जा रही थी। एक अत्यंत प्रतिभाशाली, प्रखर बुद्धिमान, किंतु उतना ही भावनाप्रधान एक सहृदय व्यक्तित्व मेरे सामने उभरता जा रहा था। ठीक उसी समय एक और बुरी घटना घटी, किंतु उसने हम दोनों को और भी नजदीक ला दिया। श्रीमती प्रभावती देवी कैंसरग्रस्त हो गईं। उन्हें असह्य वेदना हो रही थी। वे कैंसर रोग की अंतिम अवस्था में थीं। उनके अच्छे होने की संभावना प्रायः नहीं के बराबर थी। फिर भी प्रयत्न करना तो आवश्यक ही था। उन्हें मुंबई के टाटा इंस्टीट्यूट में जगह नहीं मिल रही थी। कारण, एक भी कमरा खाली नहीं था। मुझे एकाएक स्मरण आया कि मेरे मित्र जे.डी. चोवसी टाटा में वाइस-चेयरमैन हैं। सुमंत मुलगांवकर भी मेरे नजदीकी मित्र हैं। उस अस्पताल में दो कक्ष टाटा के नाम पर सुरक्षित रखे जाते थे। मैंने अपने परिचय का लाभ उठाते हुए उसमें से एक कक्ष प्रभावती देवीजी के लिए आरक्षित करवा लिया। प्रभावती देवी के अंतिम दिनों में मैंने व जयप्रकाशजी ने उनकी मनःपूर्वक सेवा की। जयप्रकाशजी ने कहा, “तुम्हारा इतना विस्तृत परिचय और उसी के साथ निरपेक्ष सेवाभाव

विराट् पुरुष

भी।'' पर मैं तो जयप्रकाशजी एवं प्रभावती देवी के विराट् व्यक्तित्व से अभिभूत हो गया था।

उसके बाद जयप्रकाशजी को गुजरात के नव-निर्माण आंदोलन में भाषण देने के लिए ले जाना था। जयप्रकाशजी का व्यक्तित्व विराट्, पर संगठन की शक्ति के बिना बड़ी जनसभा आयोजित नहीं होती। जयप्रकाश बाबू अहमदाबाद के हवाई अड्डे पर जब उतरे, तब उनका भव्य स्वागत करने के लिए भारी जनसमुदाय एकत्रित करने में मैंने अपने संगठन-कौशल का पूरा-पूरा उपयोग किया। मैंने अपने कार्यकर्ताओं को यह अच्छी प्रकार समझा दिया कि बड़ी संख्या में प्रचार साहित्य, पोस्टर आदि के अतिरिक्त कम-से-कम एक हजार मोटरगाड़ियां वहां स्वागत हेतु दिखनी चाहिए। वह विशाल भीड़ और उससे उपजा अत्यंत उत्साहपूर्ण वातावरण देखकर जयप्रकाशजी के भीतर का भावना-प्रधान हृदय गदगद हो गया। वे बोल उठे, 'अरे! इसने तो सन् 1942 की स्मृति ताजी कर दी।' बार-बार वे इसी प्रकार अपनी भावनाएं व्यक्त करते रहे।

ऐसा होते हुए भी एक अड़चन अभी भी थी। जयप्रकाश बाबू इंदिराजी के विरुद्ध एक शब्द भी बोलने के लिए तैयार नहीं थे। बार-बार उनके मुख से ये ही शब्द निकलते, 'अरे, वह तो मेरी बेटी के समान है।' पर देवी विधान देखो। इंदिराजी भुवनेश्वर में भाषण दे रही थीं। सभा में जयप्रकाश जिंदाबाद के गगनभेदी नारे लग रहे थे। उसी क्षण किसी ने एक पत्थर इंदिराजी की ओर फेंका। इंदिराजी का धैर्य टूट गया और उन्होंने जयप्रकाशजी के विरुद्ध अनर्गल आरोप लगाना प्रारंभ कर दिया। 'जयप्रकाश तो पूंजीपतियों का पिटटू है।' इसी प्रकार के अनेक आरोप। दूसरे दिन अखबारों में मोटी-मोटी सुर्खियों में उपर्युक्त घटना प्रकाशित हुई। जयप्रकाशजी का मन उद्विग्न हो उठा। वे अंदर-ही-अंदर हिल गए। उसी समय गोयनकाजी ने उनसे आग्रह किया कि अब तो आप इंदिराजी को समुचित उत्तर देनेवाला और परिस्थिति की भयानकता दिखानेवाला वक्तव्य जारी करें। तब जयप्रकाशजी तैयार हो गए। जयप्रकाशजी का वह वक्तव्य मैंने हिंदी में तैयार किया और इंडियन एक्सप्रेस के श्री मुलगांवकरजी ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया। एक बात याद रखना। जयप्रकाशजी इस संघर्ष में उतरे—इसका श्रेय केवल गोयनकाजी, रामधारी सिंह दिनकर तथा नाना देशमुख को ही जाता है।

मैंने कहा, 'नानाजी जनता पार्टी के यश की अपेक्षा उसका अपयश कहीं अधिक है—ऐसा मैं मानता हूं। मेरी जानकारी के अनुसार शपथ-ग्रहण हेतु राजघाट पर एकत्रित विजयी सांसदों में से अनेक आपके कार्यकर्ताओं का रुख बदला-बदला सा दिखा। यह देखकर आप और लिमयेजी बहुत बेचैन हो उठे थे—ऐसा जानकार लोग बताते हैं। वे लोग आपस में ही कानाफूसी कर रहे थे, 'अरे कौन जयप्रकाश—कहां से आए कृपलानी' इत्यादि।

नानाजी बोले, 'अरे भाई, तुम तो कारण न होते हुए भी आगे बढ़ जाते हो। राजघाट पर जाने से पूर्व ही यह बात ध्यान में आ गई थी। यह शपथ वगैरह लेने की कल्पना आचार्य कृपलानी की थी। मैंने जयप्रकाश बाबू से कहा, 'यह सब क्या हो रहा है। यह नाटक किस लिए? क्या महात्माजी की अवमानना करने के लिए? आप दोनों कल्पना-लोक में विचरण करते हो—मैं व्यावहारिक

साक्षात् नानाजी

धरातल पर रहने का आदी हूं, पर जयप्रकाशजी इतना ही बोले, “न कहना ठीक नहीं होता, इसीलिए मैं वहां गया।”

प्रारंभ से ही तीन बूढ़ों ने वहां आपसी खींचतान मचा रखी थी। तीनों को ही प्रधानमंत्री पद चाहिए था। मोरारजी भाई को प्रधानमंत्री बनाया और गड़बड़ शुरू हो गई। जगजीवन बाबू ने मंत्री पद अस्वीकार कर दिया। प्रथम दिन से ही यह सब नाटक प्रारंभ हो गया था। किसी को राजनीति के दांव-पेंच समझ में आए या न आए, पर राजनीति में पदार्पण करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की बात बखूबी समझता है। अब जरा मजे की बात देखो। जगजीवनराम को समझाने-बुझाने का दायित्व उन लोगों ने मेरे और मधु के ऊपर डाला। जहां तक मुझे स्मरण है वह 22 मार्च की रात थी। मधु व मैं रात को डेढ़ बजे तक उनके घर पर जगजीवन बाबू को मनाने का प्रयास करते रहे। हम बार-बार आग्रह करते रहे कि बाबूजी, आप मंत्री पद स्वीकार कर लें, पर जगजीवन बाबू टस-से-मस नहीं हो रहे थे। बीच में वे भावाविभूत होकर रोने भी लगे।

अंत में मैंने कहा, “बाबूजी, मेरी व मधु की हार्दिक इच्छा है कि आप प्रधानमंत्री बनें। हमें सचमुच ही ऐसा लगता है कि ऐसा होने पर इस देश में सामाजिक-समरसता की सही अनुभूति हो सकेगी, पर दुर्भाग्य से आपके द्वारा की गई एक भूल ही आपके आड़े आ रही है। विगत लोकसभा में आपातकाल का प्रस्ताव आपने ही प्रस्तुत किया था। अब हम लोग आपातकाल का विरोध करके ही चुनकर आए हैं। देश में एक वातावरण तैयार हुआ है। ऐसी स्थिति में आपको प्रधानमंत्री बनाना असंभव है, पर भविष्य में अवसर आने पर अवश्य इस पर विचार किया जा सकेगा।”

परिस्थिति की नजाकत उनकी समझ में तो आई, पर बोले, मुझे रक्षा मंत्री बनाना होगा और बहुगुणा को भी मंत्रिमंडल में लेना होगा। हमने कहा, बाबूजी हमें विश्वास है कि हम आपकी दोनों बातें स्वीकार करा लेंगे। वहां से मधु अपने घर लौट गए। चंपाताई भूखी रहकर भोजन के लिए उनकी बाट जोह रही थीं। मैं वहां से उठकर अकबर होटल में गया, जहां मेरे मित्र मुलगांवकर, राम बत्रा, नुस्ली वाडिया और कुलदीप नैयर भोजन हेतु मेरी बाट जोह रहे थे।

उसी समय एक और मजेदार घटना घटी। बहुगुणा को मंत्रिपद देने की बात आते ही बीजू पटनायक ने भी मंत्री पद की दावेदारी ठोक दी। उसे मंत्री पद देना अपरिहार्य सा हो गया। ऐसी स्थिति में जनसंघ का भी तीसरा मंत्री बनाना आवश्यक हो गया। मैं आग्रहपूर्वक स्वयं के बारे में नकारात्मक रुख अपनाता रहा हूं। यह जानते हुए भी श्री आडवाणी और वाजपेयी ने मोरारजी को मेरा नाम सुझा दिया। उन्होंने मेरे नाम पर उद्योग मंत्रालय आवंटित कर दिया। मेरे मित्र कुलदीप नैयर इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप के सभी समाचार-पत्रों के प्रमुख न्यूज एडिटर थे। उन्होंने तत्काल उसे प्रकाशनार्थ भेज दिया। क्षणभर में ही यह बात देश भर में फैल गई। दूसरे दिन के समाचार-पत्रों में यह शीर्षक और मेरे मित्रों का यह आग्रह कि नानाजी आपको यह पद स्वीकार करना ही चाहिए। मैंने सभी को स्पष्ट रूप से बताया कि राजनीति में प्रवेश करते समय ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि सत्ता का कोई पद कभी स्वीकार नहीं करूंगा। अरे, मंत्री पद तो क्या, प्रधानमंत्री पद या राष्ट्रपति पद भी कभी स्वीकार नहीं करूंगा।

विराट पुरुष

नानाजी जब यह बात बता रहे थे, उस समय मुझे मधुजी द्वारा भी इस घटना का उल्लेख किए जाने का स्मरण हो आया।

नानाजी अब आगे बढ़ रहे थे। अरे भाई, उस समय मंत्री पद स्वीकार न करना बहुत जरूरी भी था। आगे का घटनाचक्र साफ दिखाई पड़ रहा था। मोरारजी के मंत्रिमंडल में मंत्री रहते हुए उन्हें आवश्यकता पड़ने पर चार शब्द कैसे बोल सकूंगा? मैं तुरंत ही मोरारजी के पास गया। मैंने कहा, “मुझसे पूछे बिना मेरा नाम मंत्री परिषद् में डालने का अधिकार आपको किसने दिया? फिर कभी ऐसा प्रसंग आया तो उसी क्षण राजनीति को ही हमेशा के लिए राम-राम कर दूंगा।”

अब मेरा अगला प्रश्न था, “नानाजी एक बात और समझ में नहीं आती। उस समय आप चौधरी साहब को कैसे लाइन पर लाए?”

नानाजी बोले, “अरे! उस समय इसकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ी। वे प्रधानमंत्री तो अवश्य ही बनना चाहते थे, पर ‘स्पर्धा’ उनके और जगजीवनराम के बीच थी। जगजीवनराम नहीं बने—इतनी सी बात उन्हें कुछ काल तक संतोष देने के लिए पर्याप्त थी।”

नानाजी, उसके बाद अनेक अप्रिय घटनाएं हमारे सामने घटित हो रही थीं। संघ, जनसंघेतर लोग ही नहीं, अपितु आपके दल के भी कतिपय लोग यह कहते थे कि आपके और मोरारजी भाई के बीच पहली तकरार तब प्रारंभ हुई थी जब जनसंघ के बृजलाल वर्मा को केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल किया गया था। यह मध्य प्रदेश जनसंघ का कार्यकर्ता, आपने मंत्री पद टुकराते समय उसी का नाम मंत्री पद के लिए आगे किया था। वह अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार में लिप्त था, फिर भी उसे मंत्रिमंडल में शामिल करने का आग्रह लेकर आप और वाजपेयी मोरारजी के पास गए थे।

नानाजी के लिए यह बात असह्य सी थी।

मुझे बीच में ही टोकते हुए नानाजी बोले, “झूट! सौ प्रतिशत झूट! केवल बकवास मात्र! पहली बात तो यह कि मंत्री पद टुकराने के बाद अपनी एवज में किसी अन्य के नाम का सुझाव देने का मुझे क्या अधिकार? पर मुझे यदि किसी ने पूछा भी होता तो मैं कुछ भी न कहता।

अरे भाई! मैं तब तक तो उस व्यक्ति को पहचानता भी नहीं था और उससे भी महत्त्व की बात तो यह है कि मुझसे किसी ने पूछा भी नहीं था कि मेरी एवज में किसे भेजा जाए?

पर अब मैं बताता हूं कि उसके बाद हुआ क्या? मैं मोरारजी भाई को बार-बार यह कहता रहा कि अब एक वर्ष पूरा हो रहा है, आप प्रधानमंत्री पद स्वयं छोड़कर किसी युवा व्यक्ति को यह दायित्व सौंपें*। मोरारजी ने पूछा कि क्या तुम्हारे मन में वाजपेयी का नाम है? मेरा उत्तर था, बिलकुल नहीं। मेरे मन में चंद्रशेखर का नाम है। ठीक उसी समय एक और भी घटना घटित हो

* नानाजी ने 16-7-79 को इस आशय का एक पत्र तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई को लिखा था, जिसे राजनीतिज्ञ खंड में दिया गया है।

साक्षात् नानाजी

रही थी। राजनारायण मेरा नजदीकी मित्र! उसने मुझसे कहा कि 'नानाजी, आप तो पंडित हैं। मुझे मेरे घर में अष्टभुजा देवी की मूर्ति प्रस्थापित करनी है। मैं भले ही समाजवादी हूं, पर यह मेरी भावना का प्रश्न है। राजनारायण और संजय में परस्पर मेलजोल बढ़ रहा है, यह बात समझने में मुझे देर नहीं लगी। दो और दो मिलकर चार होते हैं, यह बात समझने के लिए विशेष बुद्धि की जरूरत नहीं होती। मैंने मोरारजी को एक विस्तृत पत्र भेजा। प्रधानमंत्री पद अब किसी युवा कार्यकर्ता को सौंपकर आप उससे मुक्त हो जाइए अन्यथा आप अधिक काल तक प्रधानमंत्री बने नहीं रह सकेंगे। जनता पार्टी का अस्तित्व भी संकट में आ जाएगा। मैंने स्वयं भेंट कर मोरारजी को बताया कि राजनारायण और संजय निकट आ रहे हैं। मेरी इस बात पर उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। वे बोले— अटलजी, पटनायक, फर्नांडीस आदि में किसी को भी ऐसा लगता नहीं। गुप्तचर विभाग की भी ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं है। मैंने कहा कि ये सब बड़े आदमी हैं। एक बार सत्तारूढ़ होने पर आप सभी इतने व्यस्त हो जाते हैं कि सामान्य जन से बहुत दूर हो जाते हैं। हमने अभी स्वयं को वैसा होने नहीं दिया और रही बात इस देश के गुप्तचर विभाग की, तो सबकुछ आनंद-ही-आनंद है। उन्होंने एक बार इंदिराजी को पटखनी दी और अब आपकी बारी है।

और अब दैवी संयोग देखो। दो दिन बाद ही समाचार-पत्रों में संजय का राजनारायण के घर में प्रवेश करते हुए एक फोटो छपा। ऐसा होने पर भी मोरारजी 'दिल्ली दूरस्थ' मानकर शांत बैठे रहे। मेरी जानकारी अब यथार्थ में परिणत हो रही थी। मैंने 20 अप्रैल* को एक पत्रकार गोष्ठी आयोजित की। मैंने उन्हें बताया कि अभी तक तो मैं सत्ता से ही दूर रहा, पर अब मैं राजनीति से भी अलविदा ले रहा हूं। इसी के साथ मैंने अपने सभी राजनीति में कार्यरत बंधुओं का आह्वान किया कि 60 वर्ष की आयु के बाद केवल सत्ता पद ही नहीं, राजनीति को भी राम-राम कहकर समाज-निर्माण का आह्वान स्वीकार करते हुए ग्रामों की ओर कूच करना चाहिए।

मैं बीच में ही बोल उठा, "नानाजी यह सब तो मुझे समझना ही है, पर अभी तो आप इस बात पर प्रकाश डालें कि जनता पार्टी को तोड़ने में मधु लिमये का कितना हाथ था?

अरे भाई, मधु ने दोहरी सदस्यता का प्रश्न खड़ा कर थोड़ी गड़बड़ जरूर पैदा कर दी, यह बात तो सही है। मधु लिमये को जाननेवालों को इतना तो समझ में आना ही चाहिए कि लिमये बीच में ऐसी गड़बड़ तो पैदा करते ही रहेंगे। इसका अर्थ इतना ही कि जनता पार्टी के टूटने के अनेक कारणों में से यह एक कारण तो जरूर है, पर यही एकमेव कारण नहीं है। मूलतः परस्पर विरोधी एक समीकरण बनाने का प्रयास हमने किया था। अब जनता पार्टी टूटने के पहले ही चौधरी चरण सिंह ने पार्टी छोड़कर इंदिरा-संजय का दामन थाम लिया, इतनी बात तो सही है न? जनता पार्टी टूटने के मुख्य कारणों में सर्वप्रमुख बात थी अनेक नेताओं की सत्ता लिप्सा— तुम्हारा यह

* जनता पार्टी के महामंत्री के तौर पर नानाजी ने 20 अप्रैल, 1978 को एक पत्रकार सम्मेलन बुलाया, जिसमें उन्होंने राजनीति को अलविदा कहते हुए रचनात्मक कार्यों में जीवन लगाने का संकल्प लिया। वक्तव्य अनुलग्नक में दिया गया है। यह उनके जीवन का निर्णायक मोड़ था।

विराट् पुरुष

सोच भी पूर्ण सत्य नहीं है—अर्ध सत्य ही है। अरे भाई, मात्र कुछ नेता ही नहीं, सच्चाई तो यह है कि सभी नेता इसके शिकार थे*।

नानाजी की भाषा अब कुछ तीखी हो चली थी। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो शब्दों से अब बादल फटनेवाले हैं।

नानाजी बोलते चले गए—

अरे! सभी के सभी एक साथ कुरसी पाने के लिए बेताब हो उठे। यह सब देखकर मेरा यह विचार और भी सुदृढ़ हो गया कि इस मार्ग से देश का भविष्य कभी भी बनेगा नहीं। मैं सहज रूप से बाहर निकल आया। एकदम सहज रूप से और उसके बाद भूलकर भी कभी पीछे मुड़कर देखा नहीं। अब अकारण ही उन सब बातों को फिर उछालने से क्या फायदा?

बोलते-बोलते नानाजी एकाएक रुक गए। शायद उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें इतना नहीं बोलना चाहिए था। वे एकदम स्तब्ध। ठीक उसी प्रकार जैसे लिमयेजी स्तब्ध हो जाते थे। कुछ देर तक तो पूर्ण स्तब्धता! और मेरे मन-पटल पर उभरी विंदा की एक कविता—

मूर्ति के पीछे—मुरदों के ढेर दिखे।

इसीलिए तोड़ डाला—पत्थरों को।

दंभिकों के आगे—बढ़ गई मेरी मुट्ठी।

चिल्ला उठा मैं—झूठ—संपूर्ण झूठ।

अंधेरे की सघनता—रुलाने को तत्पर।

फिर भी क्या सबकुछ बोलूँ?

अनेक दिनों से मेरे और मेरे मित्रों के मन में उठनेवाला एक गुदगुदानेवाला प्रश्न मुझे पूछना था। नानाजी को थोड़ा परेशान भी करना था। नानाजी ने सत्ता से ही नहीं, राजनीति से भी मुंह मोड़कर गोंडा का रास्ता पकड़ लिया—संपूर्ण परिवर्तन के लिए। फिर उन्होंने कभी पीछे मुड़कर देखा भी नहीं, पर उसमें एक अपवाद भी है। राजीव के सत्ता-ग्रहण करने पर नानाजी ने उसका स्वागत किया। केवल स्वागत ही नहीं किया, अपितु ऐसी भी कुछ बात कह दी कि भाजपा को उनके साथ सहयोग भी करना चाहिए। तत्कालीन भारतीय जनता पार्टी की राजनीति में यह बात कैसे पच सकती थी। संघ समाजवादी दल या सेवा दल की तरह कोई इकाई नहीं। व्यक्ति स्वातंत्र्य की दुहाई देकर चाहे जो बोल दे और अपने ही सहयोगियों को गच्चा देते हुए हमारे-आपके समान अधिकचरे लोगों के लिए मुफ्त का मनोरंजन करे।

नानाजी के इस वक्तव्य का वाजपेयी और भाजपा ने तत्काल खंडन किया। इतना ही नहीं, नागपुर से तो यह फरमान जारी किया गया कि संघ के एक वरिष्ठ कार्यकर्ता के मुख से ऐसी भाषा शोभा नहीं देती।

विगत 2-3 वर्षों में मैंने अनेक राजनीतिक पार्टियों के वाणक्यों से इस बारे में चर्चा की

* नानाजी ने 16-8-79 को तत्कालीन प्रधानमंत्री चौ. चरणसिंह को राजनीति के गिरते स्तर पर एक विस्तृत पत्र लिखा था, जिसे राजनीतिज्ञ खंड में दिया गया है।

साक्षात् नानाजी

और प्रायः सभी ने कहा कि नानाजी की उस समय की शतरंज की चाल अति विलक्षण थी।

राजीव उस समय अनुभवहीन तथा विचलित था। उसके साथ ही अनेक को यह आभास ही नहीं था कि उसके पक्ष में सहानुभूति की प्रचंड लहर चल रही है, किंतु उस समय मैत्री-भाव से उसके समर्थन में जो भी दल 1984 के चुनावों में आगे आता—निस्संदेह उसे जबरदस्त राजनीतिक लाभ मिलता। उस चुनाव में भाजपा का जैसा 'पानीपत' हुआ—वह तो नहीं ही होता। दूसरी भी एक संभावना थी। राजीव की हत्या कैसे व क्यों हुई—इस संबंध में आज जैन समिति के सामने जो तथ्य आ रहे हैं—वे समझ से परे हैं। उसमें राजीव पर नजर रखने का दायित्व संभालनेवालों के भी नाम हैं, उनमें चंद्रास्वामी भी हैं। 'सुपारी' देने या लेने की संभावना भी है। राजीव के सत्ता में रहते यदि यह हादसा होता तो राजीव का सहभागी होनेवाला दल उस समय निर्माण हुई रिकतता एवं सहानुभूति का भरपूर लाभ उठाने की स्थिति में होता, किंतु नानाजी एवं चंद्रशेखर के मन में क्या कुछ चल रहा था—इसकी मीमांसा करने का हमें क्या अधिकार? और उसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप में कह भी कैसे सकते हैं?

मैं नानाजी से सीधे सवाल पूछता हूँ—नानाजी! राजनीति से संन्यास लेने के बाद आपने उस समय ऐसा वक्तव्य क्यों दिया था? अब उसके बारे में आज आपको क्या लगता है?

नानाजी बोले, "मैंने व मधु लिमये ने राजनीति छोड़ी, पर राजनीति करनेवाले व्यक्तियों को कठघरे में खड़ा करना नहीं छोड़ा। अरे, तुम जो कुछ मेरे बारे में कह रहे हो—वह मुझे जंचता नहीं। इस एक वक्तव्य को छोड़कर मैंने अन्य कोई भी बात कभी भी नहीं कही। मेरे उस समय के वक्तव्य का राजनीति से दूर का भी संबंध नहीं था। मैंने इतना ही कहा था कि 'सहानुभूति के साथ 1 वर्ष सहयोग।' उसके पीछे कुछ भी राजनीतिक बात नहीं थी। इंदिराजी की हत्या एक अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र के अंतर्गत इस देश में अस्थिरता उत्पन्न करने के लिए की गई थी। ऐसी स्थिति में संपूर्ण राष्ट्र एक साथ राजीव के साथ खड़ा हो—यह राष्ट्रीय कर्तव्य था। मेरी बात छोड़ो। उस समय लगभग इसी आशय का एक पत्र मधु लिमये ने राजीव को लिखा था—इसकी जानकारी आपको है ही। एक ओर एक अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र—भयंकर अस्थिरता और अराजकता उत्पन्न होने की आशंका और दूसरी ओर राजनीति में पूर्णतः अनुभवहीन, किंतु अत्यंत संवेदनशील अंतःकरणवाला राजीव। यही वेदना हम लोगों के अंतःकरण में थी। अब संघ या भाजपा ने इस पर नापसंदगी व्यक्त की या मेरा विरोध किया—इससे मुझे क्या लेना-देना? मैंने यह वक्तव्य अकेले भाजपा के लिए तो नहीं दिया था। सभी राजनीतिक दलों के लिए दिया था, अतः किसी दल विशेष के राजनीतिक लाभ-हानि का विचार मेरे मन में हो भी नहीं सकता था। मेरी पद्धति के अनुसार मैंने एक ही बात की। लोग मेरे बारे में क्या कहेंगे या क्या कुछ कहा—इसके बावजूद मैंने अपना वक्तव्य वापस नहीं लिया। उन्हें उत्तर भी देने की आवश्यकता मैंने नहीं समझी। एक और बात तो तुम्हें आज स्वीकार करनी ही होगी। मुझे और मधु को उस समय जो कुछ लगा, वही इस देश के असंख्य अशिक्षित किंतु व्यावहारिक-ज्ञान रखनेवाले जन समुदाय को भी लगा।

विराट् पुरुष

यही कारण था कि इस देश की जनता ने भारी बहुमत से राजीव को विजयी बनाकर स्थिर सरकार चलाने का अवसर दिया।

एक और भी बात का विचार करो। उस समय राजीव को ऐसे समझदार सहयोगियों की भी बहुत जरूरत थी। राजीव संवेदनशील अवश्य था। उसमें नए तरीके से विचार करने की, समस्याओं के बारे में नए तरीके से सोचने की भावना तो अवश्य थी, किंतु तुम्हारे समान ही अन्य मध्यम वर्गीय लोगों की तरह इस देश की गरीब जनता की भयानक समस्याओं की उसे जरा भी जानकारी नहीं थी। राजीव ने कुछ काल पूर्व एक बहुत मर्मभेदी वक्तव्य दिया था, “सरकार द्वारा ग्रामीण गरीब जनता के लिए भेजे जानेवाले धन में से उस जन समूह तक 1 रुपए में से मात्र 15 पैसे ही पहुंचते हैं, शेष 85 पैसे तो नौकरशाहों के पेट में चले जाते हैं।” राजीव की यह सोच उस समय तुम्हारे जैसे अनेक को लगता था कि यह लोहियाजी के चिंतन से मेल खाता है। इसका अर्थ इतना ही कि तुम लोग लोहियाजी को समझ ही नहीं पाए। राजीव की तरह ही तुम्हारे समान बुद्धिजीवियों को भी आज देश की इस भयंकर परिस्थिति की सही जानकारी नहीं है। वास्तविक स्थिति तो यह है कि यह जो 15 पैसे किसी प्रकार ग्रामों तक पहुंचते भी हैं तो वे उन गरीबों तक नहीं पहुंच पाते। यह राशि तो ग्रामों में कार्यरत दलाल और तथाकथित राजनीतिक नेता हड़प कर जाते हैं। कागज पर अंगूठा लगावा लेने के बाद किसी प्रकार 1-2 पैसे मात्र उस गरीब के हाथ लग पाते हैं।

इस देश के सम्मुख आज सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही है। राजनीति में रहकर ऐसे या इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों को सुलझाना संभव ही नहीं है। राजनीति और नेतागण ऐसी समस्याओं को और भी अधिक उलझाकर रख देते हैं तथा और अधिक भयावह एवं विकृत कर देते हैं। राजनीति की नियामक नेतृत्व-शक्ति की इस देश को जरूरत नहीं है। आवश्यकता है ऐसी सामाजिक यथार्थ-शक्ति की, जिसे समाज का विश्वास प्राप्त हो, जो समाज का सही नेतृत्व कर सके। यह काम युवा पीढ़ी को करना होगा, राजनीतिक दलबंदी से ऊपर उठकर। ग्रामों में स्वयं जाकर उस संदर्भ में मेरे आज के विचार और प्रयोग बताता हूं, पर उससे पहले तुम्हारे द्वारा पूछे गए एक प्रश्न की ओर चलें।

संपूर्ण क्रांति के बारे में मेरा विचार क्या था और दत्तोपंत टेंगड़ी के साथ मेरा मतभेद क्या था—आज मुझे व टेंगड़ीजी को उस बारे में क्या लगता है—यह था तुम्हारा प्रश्न।

संपूर्ण क्रांति के संबंध में मेरे विचारों को अधिक स्पष्टता प्राप्त हुई जयप्रकाशजी के द्वारा प्रतिपादित ‘विचार यात्रा’ को पढ़ने एवं मनन करने के बाद। साथ ही अनेक बार स्वयं उन्हीं से चर्चा करने से। संपूर्ण क्रांति का अर्थ है—जनता के सहयोग से, उन्हीं के द्वारा किया जानेवाला संपूर्ण परिवर्तन और उससे उद्भूत विकास। यह विचार व ऐसा परिवर्तन दलगत सीमाओं में रहकर संभव नहीं हो सकता। मैंने राजनीति छोड़ी और उ.प्र. के एक अति पिछड़े गोंडा जिले के संपूर्ण विकास में लग गया। उस समय तुमने भी वहां जाकर, सबकुछ देखकर अपनी पुस्तक ‘प्रकाशवाट’ में उसका जिक्र किया है। उसमें तुमने भी यह लिखा है कि वहां

कार्यरत कार्यकर्ताओं में अनेक का संघ से कोई सीधा संबंध भी नहीं है। वे अलग-अलग विचारधाराओं से संबद्ध हैं।

अब मेरा और दत्तोपंत का इस विषय में मतभेद उस समय किस कारण हुआ, यह मैं कैसे बता सकता हूं? यह तो तुम्हें उन्हीं से जाकर पूछना चाहिए। संपूर्ण क्रांति के बारे में जयप्रकाशजी द्वारा प्रतिपादित विचार मुझे उस समय बहुत ठीक लगे। आज तो उसमें निहित व्यापकता और आशय-संपन्नता मुझे अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक लगती है। अन्य लोगों को इस बारे में क्या लगता है, इसकी चर्चा या चिंता करते बैठना मेरा स्वभाव नहीं। उन्हें उत्तर देने की आवश्यकता भी नहीं समझता।

गोंडा प्रकल्प एवं चित्रकूट विश्वविद्यालय के रास्ते पर चलते हुए आज अब मैं किस नई भूमिका तक पहुंचा हूं, यह तुम्हारा अगला प्रश्न है। एक रुपए में से मात्र एक पैसा ही उस गरीब ग्रामीण व्यक्ति तक पहुंच पाता है—यही वास्तविक समस्या है। हमें इसका समाधान ढूंढना है। शिक्षा की समस्या सचमुच ही इस देश की गंभीर समस्या है।

शिक्षा के क्षेत्र में आपके प्रयोग बिलकुल अलग प्रकार के हैं और बहुत महत्वपूर्ण भी। सच पूछ जाए तो आपके सभी रचनात्मक प्रयोगों को विस्तार के साथ समझना चाहता हूं, पर नानाजी, उसके पहले एक बार पुनः राजनीति की ओर चलें। आप जनसंघ में कब गए? लोहियाजी के इतने निकट कैसे पहुंचे? सन् 1971 में सभी विरोधी दलों को इतनी बड़ी हार का मुंह क्यों देखना पड़ा और उस समय के ग्लानिपूर्ण वातावरण में से आप कैसे बाहर निकले? यह सब समझना चाहता हूं।

नानाजी बोले, “अरे! तुम तो प्रारंभ में ही भूल जाते हो। मैं भारतीय जनसंघ में गया नहीं। हमने तो जनसंघ निर्माण किया। सन् 1951 में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को एक बात का स्पष्ट अहसास हो गया था कि स्वतंत्र भारत में हिंदू महासभा अप्रासंगिक हो चुकी है। इस देश के सभी नागरिकों को समाहित करनेवाले दल की आवश्यकता है। उनके मन में पहले पीपल्स पार्टी जैसी कुछ कल्पना थी। उन्होंने कहा कि आप सब लोग सहभागी बनें। डॉ. मुखर्जी ने बंगाल में, बलराज मधोक ने दिल्ली में और दीनदयाल उपाध्याय ने उ.प्र. में कार्यारंभ किया। 21 सितंबर को हम सभी ने विचार किया कि इसे एक अखिल भारतीय रूप देना चाहिए। फलतः 21 अक्टूबर, 1951 को दिल्ली में अधिवेशन करके भारतीय जनसंघ बनाया।

मैं उस समय संघ का कार्यकर्ता था। उ.प्र. में संघ विचारधारावाले पाञ्चजन्य, राष्ट्रधर्म, स्वदेश आदि प्रकाशनों का प्रमुख प्रबंधक था, पर संगठन अथवा दल में किसी भी प्रकार के सत्ता स्थान से सर्वथा दूर था, किंतु समय की आवश्यकता देखकर मैंने संगठन मंत्री और कोषाध्यक्ष जैसे उत्तरदायित्व स्वीकार किए। देश की राजनीतिक स्थिति कैसे करवट बदल रही थी और लोहियाजी से मेरा संपर्क कैसे हुआ—इसकी सविस्तार जानकारी बताता हूं। एक बात सही है कि मैं मनुष्यों के बीच रमता हूं और संबंधित व्यक्ति मुझमें रम जाते हैं। मनुष्य मात्र मुझे ‘अपना’ लगता है और संबंधित व्यक्ति मुझे मित्र मानकर नजदीक आ जाते हैं। चिंतामणि राव देशमुख, कामराज, निजलिंगप्पा आदि सभी मेरे मित्र बन गए। इस दीनदयाल शोध संस्थान में जिस कुरसी-टेबल पर बैठकर आप भोजन कर रहे हो, वे सब निजलिंगप्पा द्वारा भेंट की गई है। जेड ए. अहमद तो

विराट् पुरुष

साम्यवादी ठहरे। एक बार चुनाव में मैंने उन्हें हरवा दिया, पर जब वे राज्यसभा में आए तो पहला हार मैंने ही उन्हें पहनाया था और वह प्रथम माल्यार्पण मैंने किया होगा, इसका विश्वास भी उन्हें अवश्य ही था। अब लोहिया यानी दूसरा गांधी। देश विभाजन के समय गांधीजी को पत्र द्वारा खरी-खरी बातें सुनानेवाले और इस देश की मूलभूत समस्याओं को गांधीजी की तरह ही सूक्ष्मता से समझनेवाले लोहिया। उनके कुछ विचारों को पढ़कर मैं प्रभावित हुआ। उस समय मेरा निवास लखनऊ में था। डॉ. लोहिया अनेक बार लखनऊ आते रहते थे। वे राजनारायण व अन्य अनेक साथियों के साथ कॉफी हाउस में बैठते थे। उनके मिलने हेतु मैं कॉफी हाउस गया। उन्हें अपना परिचय दिया, “मैं नाना देशमुख जनसंघ का कार्यकर्ता, पर आपसे मिलकर आपके विचारों से अवगत होना चाहता हूँ।” डॉक्टर ने मेरी ओर व्यंग्यात्मक दृष्टि से देखा और बोले, “अरे, आप जनसंघ के! अर्थात् संघ के! फिर भी मेरे विचार जानना चाहते हैं?”

मेरे हावभाव में कोई अंतर नहीं। “मैं जनसंघ का—संघ का हूँ और जन्म भर रहूँगा, पर मैं जनतंत्र में विश्वास करता हूँ, अतः आपके विचारों से अवगत होने की इच्छा है।” डॉक्टर खिलखिलाकर हंसे और बोले, “यार! तुम तो अजीब से आदमी लगते हो।” उसी क्षण से हमारी दोस्ती प्रारंभ हुई। उसके बाद लखनऊ आगमन पर डॉक्टर हमारे यहां भोजन पर आते या फिर मुझे भोजन पर बुला लेते। उसके बाद की एक बात और। सन् 1963 में हमने उ.प्र. के जनसंघ कार्यकर्ताओं का एक पांच दिवसीय शिविर कानपुर में आयोजित किया था। उसमें 750 महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं ने भाग लिया था। मैंने डॉक्टर से कहा, “आप हमारे इस शिविर में पूरे एक दिन आकर अपने दृष्टिकोण से कार्यकर्ताओं को अवगत कराएं। पहले तो डॉक्टर को इस पर विश्वास ही नहीं हुआ। वे बोले, “आजकल मेरे साथ ‘इलमी’ रहता है। इलमी उस समय सियासत नामक उर्दू अखबार का संपादक था। मैंने कहा, “इससे अच्छी और बात क्या हो सकती है, पर इलमी के आने मात्र से काम नहीं चलेगा। उसे भी कम-से-कम एक घंटा भाषण देना होगा।

डॉक्टर लोहिया और इलमी संपूर्ण एक दिन हमारे साथ शिविर में रहे। सबेरे साढ़े आठ से लेकर रात दस बजे तक। वापस जाते समय लोहियाजी बोले, “एक बात मेरी समझ में आई। अंदर से आप सभी सच्चे अर्थों में पूर्ण रूप से समाजवादी हैं। दीनदयाल से लेकर सभी लोग एक साथ एक ही प्रकार का भोजन करते हो। उनके सहित सभी लोग भोजनोपरांत अपनी थाली कटोरी स्वयं ही साफ करते हो। इतना ही नहीं, सोने के लिए सभी के बिस्तर भी एक समान ही हैं, अंततः हम सब मिलकर एक संघर्ष करेंगे। केवल मुझे ही नहीं, इलमी को भी ऐसा ही लगता है।”

राजनीति के क्षेत्र में हम दोनों तेजी से एक-दूसरे के निकट आते जा रहे थे। साथ ही नए-नए प्रयोग भी करते जा रहे थे। सन् 62 के आम चुनावों से पूर्व लोहियाजी और राजनारायण सहित हम दस-पंद्रह लोग बदरीनाथ यात्रा में प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के आश्रम में रहे। ब्रह्मचारीजी पूर्व में क्रांतिकारी रहे। बाद में स्वतंत्रता संग्राम में कूदे। वे और पंडित नेहरू एक समय एक ही कारावास में साथ-साथ रहे। बाद में वे साधु बन गए, पर सन् 52 के प्रथम आम चुनावों में हमने उन्हें नेहरू के विरुद्ध चुनाव मैदान में उतारा था। लोहियाजी ने उनसे पुनः एक बार नेहरू के विरुद्ध चुनाव

लड़ने का आग्रह किया। वे तैयार नहीं हुए। मैंने डॉक्टर से कहा, “डॉक्टर, सन् 52 में हम एक बार यह प्रयोग कर चुके हैं, पर बात कुछ बनी नहीं। नेहरू के विरुद्ध राजनीतिक लड़ाई लड़नी है तो आपको स्वयं ही मैदान में आना चाहिए।” लोहियाजी देर तक मेरी बात पर गंभीरतापूर्वक कुछ सोचते रहे। “अरे भाई, वह चुनाव क्षेत्र तो आप लोगों का है। कुछ न सही, पर उस चुनाव में प्रभुदत्तजी अपनी जमानत बचाने में तो सफल हो ही गए थे। यह भी कोई सामान्य बात नहीं थी।” मैंने उनसे कहा कि अपने दल में किसी से भी विचार-विमर्श किए बिना मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि हमारा पूर्ण समर्थन आपको मिलेगा। यह एक प्रकार से बहुत बड़ी राजनीतिक लड़ाई है।”

सच्चाई तो यह है कि समाजवादी पार्टी ने उन्हें उस समय सलेमपुर क्षेत्र से खड़े करने का सोचा था। उन्हें भी यही लगता था कि सलेमपुर क्षेत्र अधिक उपयुक्त होगा। मैंने उनसे कहा, “मैं गत 40 साल से सलेमपुर क्षेत्र को अच्छी प्रकार से जानता हूँ। उसके एक-एक कोने से मैं परिचित हूँ। हम सभी मिलकर पूरी ताकत के साथ वहां लड़ें तो भी वहां सफलता नहीं मिलेगी।”

लोहियाजी हंसे। बोले, “अरे भाई, मेरे दल के लोग मुझे जीतनेवाला क्षेत्र थोड़े ही देंगे। बनारस में उपचुनाव था, पर वहां उन्होंने मेरे एवज में प्रभुनारायण को खड़ा किया। बोले, वह क्षेत्र तो ठाकुरों का है। वहां प्रभुनारायण को ही लड़ाना ठीक होगा।”

ऐसी बहुत सी बातों के होते अंततः डॉक्टर ने सन् 62 के चुनावों में हम सभी के सहयोग से नेहरू को करारी टक्कर दी। उससे एक वातावरण तैयार हुआ। उसके बाद सन् 63 के उपचुनाव में हमने उन्हें फर्रुखाबाद से विजयी बनाकर लोकसभा में भेजा। डॉक्टर और मैं तब तक कितने नजदीक आ गए थे—इसका एक किस्सा सुनाता हूँ। सन् 55 में केरल में एक गड़बड़ी हो गई। प्रजा समाजवादी दल दो फाड़ हो गया। उसके बाद संयुक्त समाजवादी दल बना। एसएम. जोशी उसके अध्यक्ष बने। लोहियाजी उसमें शामिल होने को कतई तैयार नहीं हो रहे थे।

अब आ गई आफत। राजनारायण कंपनी परेशानी में। वे मेरे पास आए। हम सभी लोग एक ही गाड़ी से दिल्ली गए। स्टेशन से सीधे लोहियाजी के निवास पर पहुंचे। मैंने पार्टी की सदस्यता का फॉर्म मंगवाया। मैंने कहा, “डॉक्टर, अब बहुत हो गया। स्वयं को आप गांधी कब से समझने लग गए? न तो आप गांधीजी हैं, न ही एस.एम.। ऐसे अध्यक्ष जो पार्टी का सदस्य न होते हुए किसी गांधी की बात मान लें।” इतना सब बताने का अर्थ इतना ही है कि मैंने ही डॉक्टर को संयुक्त समाजवादी दल का सदस्य बनाया।

इस देश की राजनीति इस प्रकार करवट ले रही थी। सन् 67 में लोहियाजी ने ‘गैर-कांग्रेसवाद’ का एक कल्पनाशील नारा दिया। नौ प्रदेशों में कांग्रेस पराजित हो गई, पर संयुक्त सरकारें चल नहीं पाईं। वह तो सांप-सीढ़ी जैसा खेल हो गया। अब 1971 साल में विरोधी दलों की फजीहत हो गई, ऐसा तुम्हारा मानना है। इस कारण मैं और मधु लिमये हतोत्साहित हो गए हों—ऐसा समझना भूल है। इस प्रयोग का अंत ऐसा ही होगा, यह समझकर मैं और मधु पहले ही इससे निवृत्त हो गए।

क्या हुआ—उसे सुनो, “आम चुनाव की रणनीति तय करने के लिए एक बैठक आयोजित हुई।

विराट् पुरुष

मैं, मधुलिमये, मोरारजी व बिहार कांग्रेस के श्री राम अवध सिंह मिलकर हम 6-7 लोग एकत्रित हुए। मैं यह तो नहीं कह सकता कि हम उन चुनावों में जीत जाते, पर मेरा व मधु का आग्रह था कि चुनाव के पहले नेता व प्रधानमंत्री पद निर्धारित हो जाना चाहिए। मोरारजी और राम अवध सिंह में आपसी तू-तू, मैं-मैं हुई। निजलिंगप्पा ने कहा कि निर्वाचन के पहले ही यह विवाद खड़ा करने का कारण क्या है? मधु ने झल्लाकर कहा, “आप लोग विवेकहीन से लगते हो।”

इसका अर्थ इतना ही है कि राजनीति में जिस समय जैसी चाल चलनी चाहिए, वह हम चल नहीं सके। और ये दांव-पेंच जो समझते नहीं या जो खेल नहीं सकते, ऐसे लोगों को तो राजनीति करनी भी नहीं चाहिए। राजनीति में उनका यही हथ्र होता है, पर एक बात ध्यान में रखो। राजनीति में रहते हुए भी यह नहीं भूलना चाहिए कि राजनीति से परे लुभावना, आकर्षक एक भावना प्रधान विश्व भी है, परस्पर आत्मीयता के भूखे एक-दूसरे को समझने को तत्पर। मानव मात्र में व्याप्त इस भाव का मुझे कभी भी विस्मरण नहीं हुआ। कॉफी हाउस की प्रथम भेंट में मैंने लोहियाजी को जो कहा था—उसका यहां पुनः स्मरण दिलाता हूं। हम जनतंत्र के उपासक हों तो भी, भारतीय सभ्यता, संस्कृति और परंपरा को माननेवाले हैं तो भी, सामने बैठे व्यक्ति का—उसके काम का, उसके विचारों का आदर करते हुए उसी की बात को समझने का प्रयास करना चाहिए—उसे अपना बनाने का प्रयास करना चाहिए। उसी में हमें मानसिक समाधान प्राप्त होता है। व्यावहारिक लाभ भी मिलता है। डॉ. लोहिया के साथ मेरी मित्रता उनके अंतिम क्षण तक केवल बनी ही नहीं रही, बल्कि वह निरंतर बढ़ती ही गई। डॉक्टर ने मुझसे कहा था कि हमीद दलवाई को प्रतिमाह पांच सौ रूपए मिलें, इसकी व्यवस्था करो। यह काम लिमये या फर्नांडीस को नहीं सौंपा।

संघ, संघ, संघ।

नानाजी के जीवन का यह महत्वपूर्ण हिस्सा है। वैसे तो संघ परिवार के हर स्वयंसेवक का भी है। एक ऐसा अजीबो-गरीब संगठन, जो जल्दी समझ में नहीं आता, कुछ-कुछ मन को भानेवाला, कुछ खटकनेवाला। संपूर्ण भारत में इतने कम समय में विस्तारित ही नहीं, अपितु स्थिर भी। कुछ-कुछ, खुला-खुला सा, कुछ गूढ़ लोगों को दिग्भ्रमित करनेवाला यह संघ, पर आज यह संघ शक्ति संपूर्ण भारत में व्याप्त है। भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिंदू परिषद्, विद्यार्थी परिषद् इत्यादि संस्थाओं की सफलता के पीछे संघ का बड़ा योगदान है। संघ के बिना इन संस्थाओं की बढ़ती लोकप्रियता की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। संघ बढ़ा और सेवादल अस्ताचल की ओर चला गया। सेवादल प्रभावी बन पाता तो प्रजा समाजवादी दल, समाजवादी दल अथवा संयुक्त समाजवादी दल—इन सबकी ऐसी दुर्गति नहीं होती। आचार्य अत्रे के शब्दों में उन दलों का श्राद्ध नहीं हो गया होता।

संघ के समान ही सेवादल यदि समर्थ संगठन बन पाता तो इस देश की राजनीति में बदलाव होता और यह बदलाव स्वागतयोग्य होता। सेवादल क्यों नहीं बढ़ पाया, इस संबंध में मेरे अपने विचार ठीक लगते हैं, पर संघ ने इतना विराट् रूप कैसे ले लिया, यह बात ठीक समझ में नहीं आई। यह बात आज

साक्षात् नानाजी

नानाजी से समझ लेना चाहता हूं। कारण, नानाजी का प्रारंभिक संघजीवन—यह उन्हीं के जीवन की आधारशिला नहीं है, वह काल तो संघ संगठन का भी एक तरह से नींव भरने का समय रहा है।

नानाजी बोले, “इन दोनों बातों का खुलासा करता हूं। सन् 25 में डॉ. हेडगेवारजी ने संघ की स्थापना की। सन् 40 में मात्र 51 वर्ष की आयु में वे स्वर्गवासी हो गए, पर इन्हीं 15 वर्षों में उन्होंने संघ को भारत-व्यापी बना डाला था। डॉक्टरजी कम ही बोलते थे, पर उनके मुख से निकले थोड़े से किंतु प्रभावशाली शब्द अंतःकरण को छू लेते थे। सन् 40 में डॉक्टरजी गए, उस समय की एक स्मरणीय घटना बताता हूं। डॉक्टर थक गए थे। नागपुर में संघ शिविर चल रहा था। पंद्रह वर्षों में डॉक्टरजी द्वारा किए गए प्रयास—उनके द्वारा खड़े किए गए संगठन का प्रतिबिंब वहां दिखाई दे रहा था। कारण, उस शिविर में भारत के हर प्रांत से स्वयंसेवक उपस्थित थे। अंतिम दिन अपने भाषण में डॉक्टरजी ने हमसे कहा, ‘विगत एक माह से हम सभी बंधु यहां एकत्र हैं। मुझे अब आपसे केवल एक ही याचना करनी है।’ मैं कभी संघ का स्वयंसेवक था, ऐसा कहने का दुर्भाग्यपूर्ण अवसर जीवन में कभी न आने देना।” छोटे से समारोह का यह भाषण, पर अंतःकरण को छू जानेवाला। हम सभी को आजन्म संघकार्य से जोड़नेवाला।

मैं एक गांव का रहनेवाला। महाराष्ट्र राज्य के परभणी जिले में कड़ोली एक छोटा सा मेरा गांव। मेरे मां-पिता अनपढ़ थे। घर में थोड़ी-बहुत खेती थी। पढ़ना-लिखना आवश्यक है, ऐसा वातावरण घर में नहीं था। मैं अपने आयु के 9 वर्ष तक क,ख,ग अक्षर तक नहीं जानता था। मेरी बड़ी बहन के पति देशपांडे अकोला जिले में रिसोड गांव में शिक्षक थे। पढ़ने के लिए उनके यहां गया। 71 वर्ष पहले भी 9 वर्ष का बच्चा पहली कक्षा में—यह सबके लिए चर्चा का विषय था, लेकिन चार महीने में घर में पढ़ाई कर तीसरी कक्षा में प्रवेश लिया। आठवीं कक्षा तक पहले क्रमांक पर कायम रहा। रिसोड के पास ही लोणी तीर्थक्षेत्र है, वहां हर वर्ष मेला लगता था। वहां पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कैंप भी लगता था। मैं वहां पर ही सन् 1929 में अर्थात् अपने आयु के 13वें वर्ष में संघ में जाने लगा। 8वीं पास होने के बाद पढ़ने के लिए वाशिम गया। वाशिम में पाठक परिवार में रहने लगा। वहां पर गाय का दूध निकालना और घर का अन्य काम भी करता था। 1931 में मैं जब 9वीं कक्षा में था तो डॉक्टर हेडगेवार जेल से रिहा होने के बाद वाशिम दौरे पर आए थे। उस समय उनसे पहली भेंट हुई थी। डॉक्टर साहब के साथ हुई पहली भेंट में ही मैंने अपने मन में निश्चय किया था कि डॉक्टर साहब जहां कहेंगे वहां रहकर स्वयं कमाई कर पढ़ना और संघ कार्य करना है।

डॉक्टर साहब में एक विशेषता थी। वे सामने बैठे व्यक्ति को पहले स्वयं समझकर उसे अपनी बात कैसे समझाते थे, इसकी एक घटना बताता हूं। 1934 की घटना है। डॉक्टर साहब वाशिम आए थे। वाशिम तहसील के 40-50 प्रमुख लोगों की बैठक आयोजित की गई थी। डॉ. साहब ने संघ कार्य व उसकी आवश्यकता को समझाया। उस बैठक में 14 मील दूर से डॉ. कुलकर्णी आए थे। उन्होंने डॉ. साहब को कहा कि आपने जो कहा उचित है, आपके विचार बहुत अच्छे हैं, लेकिन हमारे जैसे सामान्य व स्वार्थी व्यक्तियों के लिए किस काम के? बहुत आग्रह था, इसलिए

विराट् पुरुष

आज मैं यहां आया हूं, लेकिन मन में कुछ चुभन है कि एक दिन की कमाई का नुकसान हो गया। अस्पताल खोलता तो 10-15 रुपए मिल ही जाते। एक भाषण सुनने के लिए इतना नुकसान सहना बहुत ज्यादा था। डॉक्टर हंस पड़े और कहा कि आपका कहना मुझे मान्य है, लेकिन आपने स्वयं को स्वार्थी कहा, यह स्वीकार नहीं है। आप पैसा किसलिए कमाते हैं? सब पैसा क्या स्वयं पर ही खर्च करते हो? आपकी पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार उनके लिए भी तो खर्च करते हो न। बच्चा बीमार होता है तो आप खाना, पीना, सोना सबकुछ भूल जाते हैं अर्थात् आप स्वार्थी नहीं हैं। आप परिवार के लिए इतना सारा करते हो। अगर आप इस परिवार का विस्तार 5 प्रतिशत बढ़ाकर संघ कार्य के साथ जोड़ देंगे तो आप अपने देश का आज का चित्र बदल सकते हैं। इस बैठक में मेरे पास सिर्फ मेहमानों को चाय-पानी पिलाने का काम था, लेकिन जाने-अनजाने प्रत्येक क्षण ऐसे संस्कार हमें मिलते रहते थे।

मैं कॉलेज की पढ़ाई के लिए पिलानी गया था। मुझे 18 रुपए की जापानी साइकिल दी गई थी। उस साइकिल पर गांव के परिवारों में सामान पहुंचाता था। उससे होनेवाली आमदनी से रहना, खाना, कॉलेज की पढ़ाई और दिन भर संघ कार्य करता था। उस समय मेरे जीवन में एक घटना घटी। पिलानी में मेरा रहना और कार्य करने के लिए घूमना, कॉलेज में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करना, मेरी इन बातों से जी.डी. बिरला प्रभावित हुए। हमारे कॉलेज के प्राचार्य श्री सुखदेव पांडे को उन्होंने कहा कि मैं इस लड़के को अपना व्यक्तिगत सचिव बनाना चाहता हूं। इसका रहना, खाना सब मेरे साथ और 80 रुपए तनखा भी दूंगा। सन् 1939 में यह बहुत बड़ी रकम थी। डॉ. साहब के विचारों से हम पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे। उन्होंने स्वयं विवाह न कर अपने आपको देश कार्य के लिए समर्पित कर दिया था। हमारे सामने उनका आदर्श था। देश गुलामी में था, इसलिए इसी मार्ग को स्वीकार करना आवश्यक था। कभी भी किसी की नौकरी नहीं करूंगा, कोई पद ग्रहण नहीं करूंगा और संघ कार्य में लीन हो जाऊंगा, मैंने इसका निश्चय पहले ही कर लिया था।

मैंने नौकरी ठुकराई। पढ़ाई बीच में छोड़कर 1940 में डॉ. साहब की मृत्यु के बाद बाबासाहेब आपटेजी के समक्ष प्रतिज्ञा लेकर गोरखपुर में संघ कार्य करने के लिए गया। उस समय संघ प्रचारक के रूप में बाहर जाकर हम स्वयंसेवकों को किस परिस्थिति का सामना करना पड़ता था, यह बताता हूं। किसी परिचित व्यक्ति के घर पर रहना तो जरूरी था, पर चाँसठ पैसेवाले उस समय के एक रुपए के मात्र एक पैसे का चना या अमरुद खाकर दिन भर कार्य करना—यह दिनचर्या होती थी। एक वर्ष के भीतर ही मेरा वजन 158 पौंड से घटकर मात्र 96 पौंड रह गया था, पर इसका कोई दुःख नहीं था। दुःख था तो मात्र इस बात का कि शाखा में लड़के नहीं आ रहे थे। संघ शाखा में बालकों को कैसे लाया जाए—इसी चिंता में दिन बीत जाता। वहां डी.ए.वी. कॉलेज के प्रांगण में विद्यार्थी वर्ग को खेलते देखकर मुझे एक बात सूझी। मैं फुटबॉल का एक अच्छा खिलाड़ी था। उन विद्यार्थियों के साथ मिलकर खेलने लग गया। कुछ ही दिनों में मेरी उन सभी से अच्छी मित्रता हो गई। घनश्यामदास बिरला द्वारा भारी-भरकम पैसेवाली नौकरी का प्रस्ताव ठुकराकर,

साक्षात् नानाजी

शिक्षा भी बीच में ही समाप्त कर, मैं जिस संघ कार्य में प्रवृत्त हुआ—वह संघ है क्या? कैसा है? यह सब देखते-सोचते उनमें से सभी विद्यार्थी शाखा में आने लग गए। बाद में मुझे विभाग प्रचारक का दायित्व सौंपा गया। उस समय तक भी संघ का अपना कोई कार्यालय नहीं था। प्रारंभ में वहां पर घनश्याम नारायण सिंह नाम के कुर्मी जाति के एक वकील साहब से परिचय हो गया। उनके यहां भोजन बनाने का काम मैंने स्वीकारा। इससे मेरे भोजन की व्यवस्था हो पाई।

संस्कार कैसे होते हैं—यह बताता हूं। बात है सन् 80 के जुलाई माह की। मैं उस समय आगरा में था। दीनदयालजी भी उस समय वहीं थे। गणित विषय से एम.ए. कर रहे थे। दीनदयालजी के माता-पिता का निधन बाल्यकाल में ही हो गया था। उनका पालन-पोषण मामा के ही परिवार में हुआ। आगरा में उनकी पढ़ाई के समय उनकी मामी वहीं उनके पास रह रही थीं। कुछ पढ़ाई-कुछ पढ़ाना और शेष समय संघ कार्य में व्यतीत करना। यही थी दिनचर्या। हम दोनों सवरे सब्जी लेने मंडी में गए। दीनदयालजी की जेब में 2-4 पैसे थे। दो पैसे की सब्जी लेकर घर लौटते समय दीनदयालजी ने जेब में हाथ डाला। बचे हुए दो पैसे बाहर निकालते ही वे बहुत दुःखी हो गए। अरे नाना, एक बहुत बड़ी गड़बड़ हो गई है। किसी के द्वारा दिया गया एक खोटा पैसा जेब में था, वही उस वृद्धा को गलती से दे बैठा। हम दोनों वापस उसी वृद्धा के पास गए। उसे खोटा पैसा देने को कहा। दीनदयालजी क्या कह रहे हैं—यह उस वृद्धा को पहले तो समझ में ही नहीं आया। वह बोली, “बेटा, वह पैसा अब मैं कैसे खोजूँ?” पर आग्रह करने पर उसने सारे पैसे बाहर निकाले और वह खोटा पैसा ढूंढ़ निकाला। लौटते समय दीनदयालजी ने मुझसे कहा—अनजाने में भूल से भी यदि हम समाज को धोखा देते हैं तो वह सबसे बड़ा पाप होता है। यदि ऐसा न हुआ तो डॉक्टर जिस प्रकार का संगठन खड़ा करना चाहते हैं, वह संभव कैसे हो सकेगा? सच तो यह है कि समाज के साथ धोखाधड़ी करनेवाले हर काम को हमें समाप्त करना चाहिए। दीनदयालजी ने वह खोटा पैसा तालाब में फेंक दिया। मेरे जीवन में इस प्रकार के अनेक संस्कार दीनदयालजी द्वारा डाले गए।

गुरुजी डॉक्टर से भिन्न प्रकृति के थे। उनकी आध्यात्मिक ऊंचाई अदभुत थी। वे प्रकृति से ही तत्त्ववेत्ता और चिंतक थे, पर संघकार्य के बारे में वे हमें केवल भाषण के द्वारा ही नहीं, अपितु स्वयं के आचरण से अनुभव कराते थे। संघ पर से प्रतिबंध हटने के बाद उनके द्वारा कहे गए ये शब्द तो सर्वज्ञात हैं कि “दांतों के बीच कभी जीभ दब जाती है, कट जाती है तो हम दांतों को उखाड़कर फेंक नहीं देते।” उस समय गुरुजी हमें उससे भी आगे बहुत कुछ सिखा गए। गांधी हत्या के बाद, उससे क्रोधित उग्र भीड़ संघ कार्यालय के सामने जमा हो रही थी। गुरुजी उस समय संघ-कार्यालय में ही थे। सायंकाल तक यह उग्र प्रदर्शनकारी संघ कार्यालय पर आक्रमण करेंगे—यह बात स्पष्ट थी। एकनाथ रानडे ने गुरुजी से कहा, “इस समय आपका यहां रहना घातक होगा।” हम अपको यहां से गुप्त रूप में अन्यत्र ले चलते हैं। बाहर किसी को पता भी नहीं चलेगा।” वे बोले, “मैं बिलकुल भी नहीं जाऊंगा। यदि अपने समाज में बंधुओं को लगता है कि मुझे जिंदा नहीं रहना चाहिए तो मैं तनिक भी प्रतिकार नहीं करूंगा। मैं उन्हें केवल समझाने का

विराट् पुरुष

प्रयास करूंगा।'' संघ इस प्रकार गढ़ा गया और हम भी उन्हीं संस्कारों में पले-बढ़े।

संघ ने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों नहीं किया—इस प्रकार के तुम्हारे प्रश्नों की जानकारी मुझे है। वही प्रश्न 'कालनिर्णय' नामक पत्रिका के दीपावली विशेषांक में मा. रज्जू भैया से भी पूछा गया था। सन् 47 में देश विभाजन के विरोध में सत्याग्रह नहीं किया, पर सन् 48 में संघ पर से प्रतिबंध हटाने के लिए संघ ने देशव्यापी सत्याग्रह किया अर्थात् स्वयं का अस्तित्व बचाना यह बात देश-विभाजन से भी अधिक महत्वपूर्ण थी क्या? ऐसा था वह प्रश्न। मुझे इस संबंध में इतना ही कहना है कि आज के कलहपूर्ण वातावरण में अतीत के प्रश्नों को सुलझाना संभव नहीं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विभाजन के प्रखर विरोधी और विभाजन के प्रस्ताव को सख्ती से ठुकरा सकने की क्षमतावाले महात्मा गांधी किसी प्रकार का आंदोलन न छेड़ते हुए चुप बैठ गए। नेहरू- पटेल की उपेक्षा करते हुए गांधीजी उस समय आगे नहीं आ सके। उस समय नेहरू, गांधी, लोहिया, जयप्रकाश आदि के बीच हुए पत्र-व्यवहार से बहुत कुछ बातें सामने आ जाती हैं। सभी नेता और दल किस प्रकार हतबल होकर संभ्रमित हो गए थे, यह स्पष्ट हो जाता है। हमें एक बात अच्छी प्रकार समझ लेनी चाहिए। सन् 1904 में बंगाल विभाजन के अंग्रेजों के षडयंत्र को विफल करनेवाला यह देश सन् 47 में देश विभाजन के कगार तक कैसे पहुंच गया? आज तो हम इतना ही कह सकते हैं कि ब्रिटिशों की कूटनीति अच्छी प्रकार समझने में हम विफल रहे। इस देश के विभाजन के लिए मुसलमानों के साथ-साथ हिंदू भी कम जिम्मेदार नहीं हैं।

देश विभाजन के प्रश्न के बाद तुम्हारा दूसरा प्रश्न बाबरी मसजिद ध्वंस के संबंध में होगा, इसकी मुझे जानकारी है। वह स्थान राम का है—इसमें कहीं दो मत नहीं। वहां मंदिर बनना चाहिए—यह भी ठीक है, पर उसके लिए मसजिद के ढांचे को इस प्रकार गिराया जाना मुझे मान्य नहीं। कोई भी किसी के श्रद्धास्थान का ध्वंस करे—यह समझदारी की बात नहीं, पर उसी के साथ एक दूसरी भी बात है। वहां मंदिर था—राम का मंदिर था—ऐसा अनेक लोग मानते हैं। वहां पर मसजिद का ढांचा देखकर श्रद्धालुओं को दुःख और आक्रोश होता था। ऐसे ही प्रसंग पर डॉक्टर लोहिया ने ब्रिटिशर्स के पुतले हटाने का अभियान प्रारंभ किया था। इंडिया गेट के सामने जार्ज पंचम के पुतले का क्या हश्र हुआ—यह हम सभी को ज्ञात है, पर सभी बातें संघर्ष के द्वारा ही हल करने की ढान लें तो यह समाज संगठित कैसे रह पाएगा? अरे बैठो, विचार विनिमय करो। सरकार ने सभी को साथ बैठाकर सामंजस्य के साथ समस्या सुलझाने का प्रयास किया होता तो बहुत कुछ सहजता से हो सकता था। वह मसजिद वहां से हटनी चाहिए थी—हट भी जाती, पर हिंदुओं ने वहां जाकर उसका ध्वंस किया, यह बात ठीक नहीं। यह गलत है। यदि हम ऐसा ही सबकुछ करते रहे तो अभीष्ट अखंड भारत कैसे बनेगा? हमारी इच्छा एवं आकांक्षा है कि भारत सुखी व समृद्ध बने। भारत अखंड तो तभी बनेगा जब पाकिस्तान और बंगलादेश हमारे साथ मिलेंगे। ऐसी स्थिति में मुसलिम जनसंख्या बढ़ेगी ही। फिर हम एक साथ सुख से कैसे रह सकेंगे, हर रोज लड़ाई और दंगा-फसाद करते हुए? अंग्रेजों ने हमारे अंदर जो फूट के बीज बोए थे, इसलिए हम एक-दूसरे का खून करते रहे। हम सभी को इस देश की मूल सांस्कृतिक धरोहर का सहारा लेना होगा और

उसी का विकास भी करना होगा। उसी के साथ हमें यह बात भी समझ लेनी होगी कि इस देश में बहुत कम समय के लिए उनका एकछत्र राज्य रहा है। इस देश में ऊपर से लादी हुई एकता नहीं थी, आंतरिक एकात्मता थी। यदि अब हम संघर्ष का मार्ग छोड़कर समन्वय के मार्ग पर चलें तो तेजी से नजदीकी बढ़ सकेगी। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि विगत 5 हजार वर्षों के सांस्कृतिक प्रवाह में आया यह कृत्रिम विभाजन, कुछ काल तक भले ही बना रहे, पर अंततः पानी के बुलबुले की तरह समाप्त हो जाएगा। मुझे अपने भीतर से ऐसा विश्वास होता है। मेरा यह विश्वास 'जिए सिंध' एवं कौमी मोहाजीर नेताओं से मिलने के बाद और भी दृढ़ हो चला है।

तुम्हें मालूम है, यह मेरे चिंतन का हृदयस्पर्शी प्रश्न है। हर 15 अगस्त के दिन हमारे दिल्ली कार्यालय में ध्वजवंदन के बाद इसी एक विषय पर विचार-विमर्श होता है। भिन्न-भिन्न विचारधारावाले चिंतक हमारे कार्यकर्ताओं के सामने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। इस बार 15 अगस्त पर आरिफ मोहम्मद खान और राजमोहन गांधी ने अपने विचार रखे। अगले वर्ष बंगलादेश और पाकिस्तान के पत्रकार और नेता इसी विषय पर बोलने के लिए आमंत्रित हैं।

अनेक बार नानाजी का एक अलग प्रकार का व्यक्तित्व सामने उभरता है। नानाजी बोले, 'अरे, संस्कार अनेक प्रकार से पड़ते हैं।' मेरे ऊपर मराठी नाटकों ने बहुत संस्कार डाले हैं।

''मैं ठहरा मराठी माणुस। बचपन से ही नाटक देखने का शौक। 'गडकरी' मेरे प्रिय और राज्योपयोग अर्थात् राजसंन्यास, ये शब्द उसी समय अंतःकरण में बस गए। फुले, अंबेडकर, सावरकर भी रक्त में घुलमिल से गए हैं। मैंने अपनी कुंडली कभी नहीं दिखाई और न ही किसी को हस्तरखा दिखाई। स्नान के बाद के खाली समय में पूजा-पाठ करने में व्यस्त होने हेतु भगवान् ने समय दिया है, ऐसा भी मुझे कभी नहीं लगा। 'पुंडलीक' समझ में आ गया तो अपना देवता स्वतः ही समझ में आ जाता है।''

अभी भी संघ की गुत्थी मेरी समझ में नहीं आ रही है। राजनीति में विद्रोह का झंडा उठानेवाले बाल दाणी, वसंतराव ओक जैसे मोहरे ही नहीं, मौलिचंद्र शर्मा और बलराज मधोक जैसे हीरे मोती भी क्षण भर में संघ ने राजनीति में बेअसर कर डाले, किंतु आजन्म संघ के प्रति पूरी निष्ठा रखते हुए कुछ लोग संघ प्रवाह से अलग होकर भी खूब आगे बढ़ गए। म्हासाल के देवल, आप्पा पेंडसे, एकनाथ रानडे-नानाजी देशमुख। इन महानुभावों ने नए-नए बीजारोपण किए और वे खूब पल्लवित भी हुए। गुनगुनानेवाले ये वृक्ष संघ से बिलकुल अलग प्रकार के तथा उसमें पले बढ़े व्यक्ति भी संघ से अलग ही प्रकार के हैं। विवेकानंद केंद्र में जाओ तो संघ स्वयंसेवक किंचित् ही दिखाई देंगे। धारपुरे जैसे व्यक्ति एकनाथजी के मार्ग पर चल रहे हैं। ज्ञान प्रबोधिनी का अविनाश धर्माधिकारी, शिवापुर की संस्था का संचालक राजेश दाते अथवा गंगोत्री के नीलेश कुलकर्णी से मिलिए तो स्पष्ट रूप से दिखाई देगा कि इन पर संघ की नहीं, आप्पा पेंडसे की स्पष्ट छाप है। दीनदयाल शोध केंद्र में नानाजी ने स्वयं अपनी छाप उभारने की कोशिश नहीं की, पर भिन्न-भिन्न विचारधारावाले लोग मस्ती से कार्य करते दिखाई देंगे। शर्त केवल इतनी ही है कि वे सामाजिक दायित्व-बोध से परिपूर्ण हों।

विराट पुरुष

देवल, एकनाथजी रानडे, आप्पा पेंडसे, नानाजी ये सभी आजन्म अविवाहित रहे। डॉक्टर हेडगेवार भी अविवाहित ही रहे। उन्होंने इन तरुणों को अविवाहित रहकर देश-सेवा करने हेतु बाहर भेजा। यह उस समय की तात्कालिक आवश्यकता थी, ऐसा बताते हुए भी नानाजी ने दीनदयाल शोध संस्थान में कार्य हेतु आए तरुण एवं तरुणियों के लिए विवाह एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य है, ऐसा समझाते हुए विवाहबद्ध होकर कार्य करने की प्रेरणा दी। अविवाहित रहने की स्थिति में सारी शक्ति अपने शरीर व मन को संयमित रखने में ही खर्च होगी तथा तुम लोग कुछ अन्य गड़बड़ कर बैठोगे, यह बात अपने कार्यकर्ताओं को हंसते-खेलते समझाने में वे सफल रहे। विवाह समाज को निरंतर रखने के लिए ही नहीं, मानवी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने और संवर्धित करने हेतु आवश्यक है, अंततः परिवार तो समाज की नींव है। संस्कार पाने की आयु में ही मानव का चरित्र-निर्माण होकर वह सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ आगे बढ़ता है, यह बात नानाजी अपने कार्यकर्ताओं को आग्रहपूर्वक समझाते थे।

मुझे आश्चर्य लगता है कि विवाह और परिवार ये विषय नानाजी एवं मधु लिमये दोनों के ही अति प्रिय विषय। इन दोनों की एक और भी विशेषता! हिंदी, मराठी, अंग्रेजी, इन तीनों विषयों पर गजब का प्रभुत्व और प्रसंगानुसार उन तीनों ही भाषाओं में सहज रूप से गतिमान। विवाह की बात करते-करते तो लगता था कि उनका कविहृदय प्रस्फुटित हो रहा है। वे जो कुछ भी बोले, वह मेरे टैप में अंकित है। उसको ज्यों-का-त्यों बताने का मोह मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूं।

“आजादी के संघर्ष काल में पारिवारिक जीवन की उपेक्षा होती है। कारण, स्वातंत्र्य संग्राम में लक्ष्यसिद्धि के लिए व्यक्तिगत और पारिवारिक बलिदान ही सर्वाधिक असरदार होते हैं, किंतु आजादी पाते ही सामाजिक जीवन की आधारशिला परिवार संस्था को पुनः सुसंगठित और सक्षम बनाने के काम को प्राथमिकता देना अति आवश्यक होता है। आज दुर्भाग्य से उसी की उपेक्षा हो रही है। देश का भविष्य निर्भर करता है नूतन पीढ़ी पर। वे जन्म पाते हैं परिवारों में और शिक्षित होते हैं विद्यालयों में। उनके व्यक्तित्व विकास के ये दो ही केंद्र हैं, अतः इन दोनों केंद्रों को संस्कारक्षम, प्रेरणास्पद एवं सामाजिक प्रतिबद्धतापूर्ण बनाना देश के नेतृत्व का प्राथमिक कर्तव्य था, किंतु इन दोनों विकास केंद्रों की पूर्ण उपेक्षा की गई है।”

विवाह केवल युवक-युवतियों का मिलन मात्र नहीं है। यह व्यक्तिगत जीवन का सहजीवन में विलीनीकरण है। भारतीय जीवन में परिवार अर्थात् गृहस्थाश्रम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, अतः आजन्म अविवाहित रहकर इस अप्राकृतिक मार्ग में आनेवाली कठिनाइयां, धोखे, अपूर्णता और इसका अवधड़पन ध्यान में रखते हुए तरुण-तरुणियों को आग्रहपूर्वक विवाहबद्ध होने की प्रेरणा देनेवाले नानाजी सचमुच ही बहुत नजदीकी और मोहक प्रतीत होते हैं। “अरे, हमें तो आवश्यकतानुसार ग्राम-ग्राम की छोटी-मोटी बस्तियों में जाकर काम करना होगा। इसमें परिवारों को संस्कारित करने का कार्य अकेले पुरुष कार्यकर्ता कैसे कर पाएगा?” नानाजी को छोड़ भी दें तो मेरी मन की एक गुत्थी अभी भी अनसुलझी ही है। ये सब ‘चौखट’ के बाहर निकलकर काम करनेवाली संस्थाएं और कार्यकर्ता। इसको संघ ने सहन कैसे किया?

साक्षात् नानाजी

कहीं ऐसा तो नहीं कि संघ को चौखट में बंद समझने में ही हम भूल कर रहे हैं? वास्तव में मैं अब विभ्रमित सा हो गया हूं। सचाई तो यह है कि मैं अब कुछ घबरा सा गया हूं। अब मुझे नानाजी से कुछ ऐसे कठिन प्रश्न पूछने हैं जो पीड़ादायक हैं, अप्रिय भी।

मैं कुछ दम साधकर पूछ बैठा, “गांधी हत्या के सिलसिले में आप बंदी बनाए गए थे क्या? और यदि ऐसा था तो क्यों? यह बात मैं जानना चाहता हूं।

नानाजी ने अत्यंत सहजता के साथ उत्तर दिया। इतनी सहजता के साथ, मानो जैसे कोई यह पूछे कि कल आपकी विमान यात्रा कैसी रही।

“अरे ऐसा कुछ भी नहीं था। मुझे दफा 302 के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया था। लगभग 6 महीने कारावास में बिताने पड़े, पर यदि तुम विस्तार से जानना चाहते हो तो मैं बताता हूं। मेरे ऊपर यह आरोप था कि महंत दिग्विजयनाथ के साथ नाथूराम की भेंट मैंने ही करवाई थी और उसे पिस्तौल भी दिलवाई थी। पहले 15 दिन तक तो मुझे ऐसी छोटी कोठरी में रखा, जिसे ‘कंडेम्ड सेल’ कहा जाता है और जिसके इर्द-गिर्द खूनी, डाकू आदि गंभीर अपराधी रखे जाते हैं। उसके बाद एक ‘सालिटरी सेल’ में रखा गया। यह स्थान एकांत में था और अन्य सभी अपराधियों से बिलकुल अलग लेकिन देखो, ऐसे कारावास का भी एक लाभ ही होता है। अपने कहे जानेवाले लोगों का व्यवहार क्षण भर में बदल जाता है। गोरखपुर के जिलाधीश डी.पी. सिंह मेरे नजदीकी मित्र थे। जेल में मिलने आए तो बिलकुल ही बदले-बदले से। बोले, “मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आप इतने निकृष्ट खूनी व्यक्ति हो। यह मेरी मूर्खता थी।” मैं शांतचित्त से उनकी ये बातें सुनकर हंसता रहा। इस कारण वे और भी अधिक चिढ़ गए।

अब तुम्हीं बताओ जिसका ऐसे किसी भी काम से दूर-दूर तक का संबंध न हो, उसे डर कैसा? मैंने तो नाथूराम को कभी दूर से देखा भी नहीं था। ऐसे व्यक्ति से मेरा क्या संबंध?

जब जिलाधीश महोदय को बाद में विश्वास हो गया कि नाथूराम से मेरा कभी संबंध नहीं था, तब वे पुनः मिलने आए और बोले कि आपसे ऐसी बातें करके मैंने भारी गलती की। फिर भी देखो, इस कारावास में एक बहुत बड़ा फायदा भी हुआ। शांत चित्त से अब तक के अपने जीवन पर दृष्टिपात करते हुए किए गए काम का मूल्यांकन करने का मौका मिला। भरपूर अध्ययन करने का भी अवसर मिला। मुझे जब ‘सालिटरी सेल’ में रखा गया था, तब नेशनल गार्ड का एक नेता मोइनुद्दीन को भी वहीं रखा गया था। दिन भर केवल हम दोनों ही साथ-साथ रहते, दोनों ही अच्छे खिलाड़ी और दोनों पुस्तकें पढ़ते। वह मोइनुद्दीन रफी अहमद किदवई का बाल-मित्र था। वे सरकारी तामझाम के साथ उससे मिलने जेल में आए। उससे बोले, “कल से तुम्हारे लिए घर से खाने का टिफिन भेजने की मैंने व्यवस्था कर दी है।” वह बोला, ‘टिफिन जरा बड़ा सा भेजिएगा। मैं नाना के बिना खाना नहीं खाऊंगा।’ उसके जेल से रिहा हो जाने के बाद भी जब तक मैं जेल में था—किदवई मेरे लिए टिफिन भेजते रहे। जेल से छूटने के बाद मैं सर्वप्रथम किदवई साहब के घर भोजन पर गया। बस उसी के बाद से उनसे मेरी घनिष्टता बढ़ती चली गई।

विराट पुरुष

आपातकाल के समय भी जेल जीवन में जमायते इस्लामी के नेतागण मेरे मित्र बन गए थे। उस अवधि में हमारी नजदीकी बढ़ी मेरे 'पाक कौशल्य' के कारण। आज यद्यपि मैं पूर्णतः शाकाहारी हूँ, पर उस समय मांसाहारी भी था। मेरे द्वारा बनाया गया मसालेदार मुर्गा-मुसल्लम जैसे तुम्हें बहुत अच्छा लगा था, वैसे ही उन्हें भी बहुत पसंद आया।

नानाजी से इस प्रसंग पर चर्चा करते समय पुनः मेरे मनश्चक्षु के सामने आ गई लिमये की छवि। खिचड़ी से लेकर विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन स्वयं बनाकर आग्रहपूर्वक खिलानेवाले लिमये।

“अब संजय गांधी की दुर्घटना की बात बताता हूँ। गुप्तचर विभाग के लोग तीन बार मेरे पास आए। अपनी ओर से उन्होंने मेरे साथ जमकर पूछताछ की। प्रथम भेंट में मैंने उन्हें बताया कि यह विमान की दुर्घटना है और मेरा विमान से दूर-दूर का भी संबंध नहीं। न तो मेरी जानकारी का कोई व्यक्ति उस विभाग में कार्यरत है और न ही ऐसे किसी विमान तंत्र के जानकार से मेरी कोई जान-पहचान है।”

फिर दूसरी बार पुनः आने पर उनका प्रश्न था, “इस दुर्घटना के बारे में आप क्या जानते हैं?” मैंने कहा, “दुर्घटना तो दुर्घटना ही होती है। उसकी किसी को जानकारी कैसे हो सकती है। समाचार-पत्रों में आपने जो कुछ पढ़ा, मैंने भी वही पढ़ा। अब यदि आपने वे सब समाचार न पढ़े हों तो आइए, एक बार बैठकर पुनः उसका अवलोकन कर लें।” पर तीसरी बार की भेंट में वे यह कहते हुए वापस चले गए कि हमें बहुत गलतफहमी थी। मैंने उनसे कहा कि “गांधी हत्या के समय भी आप लोगों से यही भूल हुई। अब दूसरी बार फिर उसे दुहरा रहे हैं, पर यह सब स्वाभाविक है। मेरी बात छोड़िए। गलत जानकारी देकर आप लोगों ने इंदिराजी और मोरारजी भाई को भी गफलत में डाल दिया था।”

“अब तुमने जो बिंदु उठाया है वह भी सच है। उसी अवधि में एक और अप्रिय घटना घटी। हमारे दीनदयाल शोध संस्थान के बाहर मेरे मोटर चालक की बड़ी ही सफाई के साथ हत्या कर दी गई। कुछ ही क्षणों के बाद चालक के स्थान पर मैं ही बैठनेवाला था। कुछ पत्रकारों ने अपनी आदत के अनुसार यह समाचार प्रसारित कर डाला कि यह मेरी हत्या करने का षड्यंत्र था।”

“मेरे सभी लोग मेरे लिए मित्रवत् ही होते हैं। वह चालक भी मेरा मित्र ही था। उसका पुत्र हमारे यहां भोजन बनाने का काम करता था। यहां खून की एक बूंद भी बाहर नहीं पड़ी थी। अब मजा देखो। संजय की दुर्घटना के बारे में मुझसे पूछताछ करनेवाले ये गुप्तचर मुझसे कहने आए कि अब “आप संरक्षण लीजिए।” मैंने उनसे कहा कि “मेरा कोई शत्रु है ही नहीं और सुरक्षा लेकर जीवन जीना मुझे बिलकुल ही स्वीकार्य नहीं।”

टैप गति से चलता जा रहा है। तल्लीन होकर नानाजी भी बोलते जा रहे हैं। स्थिर आंखें, चेहरा भी स्थिर। उनके मन में क्या कुछ चल रहा है—इसकी थाह पाना भी कठिन। मुझे बलराज मधोक का स्मरण हो आया। नाना और वाजपेयी—इन्हीं दोनों ने दीनदयाल को ठिकाने लगा दिया—यही बात बार-बार तर्कों के साथ समझाने का प्रयास करनेवाले मधोक कहते हैं कि इनके चेहरे और स्थिर आंखों से यह किंचित् भी पता नहीं चलेगा। बड़ी सफाई के साथ वह अपना काम

साक्षात् नानाजी

पूरा कर लेंगे। यह तो क्रांतिकारी है—माफिया गुट का सदस्य। सहजता से यह हत्या करवा सकता है—यह बात तुम्हारी समझ में भी आ जाएगी। अरे, चेहरे के हावभाव को छोड़ो, पर इसकी तहकीकात में तुम ढूँढ़ते रहोगे, पर एक भी निशान दिखाई नहीं देगा।”

“अब मुझे बताओ। गोडसे मुझसे भी मिलकर गया था। तो क्या वह इससे (नाना से) मिला नहीं होगा? गुप्तचर विभाग का मानना था कि गोडसे को महंत दिग्विजयनाथ से पिस्तौल इसी ने दिलाई थी, पर गुप्तचर विभाग यह सिद्ध ही नहीं कर पाया कि पिस्तौल इसी ने दिलाई थी। यह गुप्तचर विभाग आज का नहीं—ब्रिटिश शासन में स्कॉटलैंड यार्ड में प्रशिक्षित गुप्तचर विभाग। अरे, गुप्तचर विभाग की तो बात छोड़ो। स्वयं गोडसे को भी इसका आभास नहीं हुआ होगा कि पिस्तौल दिलानेवाला व्यक्ति नाना देशमुख है।

मैं अपने मन-ही-मन बहुत सावधान था। मेरे द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्नों की लंबी सूची का अंतिम प्रश्न मानो तो स्पष्ट या मानो तो असंभव भी, पर वास्तविकता जानने के लिए यह आवश्यक भी तो था।

मैंने कहा “नानाजी, बलराज मधोक ने एक पुस्तक लिखी। उनसे मिलनेवाले हर व्यक्ति को वे दो रूपए की मूल्यवाली यह पुस्तक भेंट देते हैं। उस पुस्तक में विस्तार के साथ अनेक प्रमाण सहित यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दीनदयाल की हत्या आपने और वाजपेयी ने ही करवाई है। आप इस बारे में क्या कहेंगे?

नानाजी के चेहरे का भाव बदल जाता है। कोई छोटा बच्चा बहुत दुःखी होकर विह्वल सा हो जाए—ठीक उसी प्रकार। चेहरा गंभीर हो उठा है—आवाज भी बदल गई है। साने गुरुजी के बारे में किसी के द्वारा परोक्ष रूप में भी कुछ खराब बातें कहने पर मधु लिमये का चेहरा जैसे लाल हो उठता था—ठीक उसी प्रकार।

नानाजी मात्र एक शब्द बोले, विद्वेष, दाभोलकर केवल विद्वेष मात्र।

इसके साथ ही नानाजी की वाणी स्तब्ध। मैं कुछ अस्वस्थ हो गया। शायद मैंने मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखा, मानो किसी दुखती रंग पर मैंने उंगली रख दी हो। कुछ काल तक हम दोनों स्तब्ध। केवल टेप के चलने की क्षीण आवाज कान में पड़ रही थी। इतनी स्तब्धता। बातचीत का स्वर अब बदलना चाहिए। गांधी हत्या, संजय दुर्घटना, दीनदयालजी की हत्या का गूढ़ रहस्य—हर बार नानाजी की ओर उंगली उठी। उस समय इस व्यक्ति को कितनी गहन मानसिक व्यथा हुई होगी। स्वतः अपने ऊपर, अपने चरित्र व आचरण पर पूरा-पूरा विश्वास रखनेवाले व्यक्ति न टूटते हैं, न समाज के बारे में किंचित भी कडुवाहट आने देते हैं। ऐसी अवस्था से वे बाहर कैसे निकलते हैं? एक बार अपने मन को संभालकर ऐसी वेदना से बाहर निकल पाना कितना कठिन होता है, लेकिन केवल जयप्रकाशजी को ही नहीं, हर बात को ठोक-बजाकर देखनेवाले डॉ. लोहिया को भी यह व्यक्ति आत्मीय कैसे लगता है? लिमये ने कई बार मुझसे कहा है, “अरे, बलराज तो केवल बकवास करता है। वह जो

विराट् पुरुष

कुछ भी कहता है, उसमें थोड़ा भी सत्यांश होता तो सरकार ने जनसंघ को कभी का नेस्तनाबूद कर डाला होता।''

लिमये का नानाजी पर विश्वास था। उनके निधन के आठ-दस दिन पहले की बात है। मैं, विजय तेंडुलकर एवं लोकसत्ता के प्रशांत दीक्षित उनसे मिलने गए थे। हमेशा की तरह बाहर से तो वे ठीक ही लग रहे थे, पर अंदर-ही-अंदर बहुत ही बेचैन। मन के अंदर मानो टूट से गए हों। उनकी पत्नी चंपाताई ने कहा कि 10-15 दिनों से वे ठीक से सोए भी नहीं हैं। लिमये के हाथों में 'हवाला प्रकरण' के कुछ कागजात थे। पूरा प्रकरण ही भयानक था। हवाला रैकेट के जरिए अनेक ने धन प्राप्त किया था। प्रायः सभी उसमें शामिल थे। सभी चंद्रशेखर और वी. पी. सिंह के मित्र थे। भाजपा और कांग्रेस के नेता भी थे। गृहसचिव आदि के भी नाम उसमें थे। मुफ्ती मोहमद सईद, आरिफ मोहम्मद खान, आडवाणी आदि के नाम भी ली गई रकम के साथ उनमें मौजूद थे। सच पूछा जाए तो समाजवादी पार्टी के मधु दंडवते, जार्ज फर्नांडीज और कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ नेताओं को छोड़ दें तो यह कहना कठिन है कि उसमें किसके नाम नहीं थे।

यों देखा जाए तो राजनीति करनेवालों में पैसे खाना तो एक प्रकार का सामान्य व्यवहार ही बन गया है, पर इस प्रकरण में एक और भी भयानक बात यह थी कि जिस मंडली ने इन लोगों को धन दिया था, वे ही लोग जम्मू-कश्मीर के आतंकवादियों को भी आर्थिक मदद कर रहे थे, अर्थात् नौकरशाही, राजनेता और आतंकवादी सभी के धनदाता ये ही लोग थे। और वही हाथ इस देश की सामान्य जनता को कठपुतली की तरह नचा रहे थे। देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी यह बात बहुत गंभीर थी। आतंकवाद केवल पड़ोसी देश की मदद से ही नहीं बढ़ रहा है, अपितु उसका भरण-पोषण भी अपने ही देश के नेताओं की नादानी से वह और अधिक पैर फैला रहा है। लिमये ने बेचैन होकर चंद्रशेखर, वी.पी. सिंह और रज्जू भैया को सविस्तार पत्र लिखा। चंद्रशेखर मधु के अभिन्न मित्र। फोन पर अनेक बार बातें करनेवाले। वी.पी. सिंह एवं रज्जू भैया देश में स्वच्छ चरित्र के हिमायती, पर उनमें से एक ने भी लिमये के पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। इससे मधु अत्यधिक खिन्न हुए! बदलती हुई दुनिया और करवट लेती हुई राजनीति को मधु ने बहुत नजदीक से देखा था, पर यह सदमा उनके लिए असह्य था। लिमये ने मुझसे कहा, ''अब मैं नानाजी को एक विस्तृत पत्र लिखूंगा। अरे, वह एकमेव सच्चा व्यक्ति है। राजनीति छोड़ देने के बाद भूलकर भी कभी उन्होंने मुड़कर पीछे देखा नहीं। तुम ऐसा करो—कल या परसों यहां आकर मेरा पत्र नानाजी के पास पहुंचा दो।''

तेंडुलकर के मन में उस दिन अलग प्रकार का बवंडर चल रहा था। लिमये के यहां से निकलकर हम तीनों वी.पी. सिंह, राम विलास पासवान आदि से भेंट करते हुए नानाजी के पास पहुंचे। तेंडुलकर से बातें हो जाने के बाद वापस जाते समय मैंने कहा, ''नानाजी दो-तीन दिनों में ही मैं मधु लिमये का एक पत्र आपके लिए लाऊंगा।'' पर दुर्भाग्य से एकाएक लिमये चले गए। वे सब बातें वहीं खत्म हो गईं।

अब अपनी वार्ता को आगे बढ़ाते हुए मैंने नानाजी को बताया कि उस पत्र में क्या कुछ रहने की संभावना थी।

नानाजी स्मित हास्य के साथ बोले, जो बात मेरी समझ में सन् 1978 में आ गई थी, उसे समझने में मधु को 15-20 वर्ष लग गए, पर लिये का वह पत्र और आजकल की राजनीति के बारे में तुम्हारे मन में जो प्रश्न हैं—उसकी विस्तृत क्रमानुसार मैं चर्चा करूंगा।

- अच्छे लोगों के राजनीति में जाने मात्र से राजनीति में सुधार होने की कोई संभावना नहीं है। अनुभव तो यह है कि अच्छे-अच्छे लोग भी राजनीति में जाकर बिगड़ जाते हैं। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पूर्व ये ही लोग अच्छे-भले थे। देश के लिए कष्ट भोगनेवाले और जेल में भी जानेवाले। तात्पर्य यही है कि हमें पहले राजनीति को ही ठीक प्रकार से समझना होगा।
- इस राजनीति के बिगड़ने के दो प्रमुख कारण हैं। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद जनता में यह भावना फैली कि हमारी सभी समस्याएं सरकार के द्वारा सुलझ जाएंगी। फलतः समाज ने इन राजनीतिज्ञों को बेकार ही बहुत महत्व दिया। समाज नाम की कोई चीज है और स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर स्व-प्रयासों से हम अपनी समस्याएं सुलझा सकते हैं, यह भावना ही नष्ट हो गई। हमारा काम मात्र वोट देने भर का है। शेष सब सरकार करेगी। यह भावना जनता और जन प्रतिनिधि दोनों में घर कर गई।

यही कारण है कि गत 50 वर्षों में हम जनता के सामने कोई बड़ा लक्ष्य रख ही नहीं पाए। तुम, तुम्हारा परिवार इससे आगे समाज के प्रति भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य है, यह प्रेरणा तो दूर रही, कल्पना में भी यह बात नहीं ला सके। आप पूरी तरह से राजनीति से अलग रहकर अपने पैरों पर खड़े होकर सरकारी मदद के बिना भी अपनी समस्याएं हल कर सकते हो, यह विश्वास पैदा करना होगा। जब समाज स्वयं कटिबद्ध होकर अपने पैरों पर खड़ा होगा, तब ही राजनीति के सुधरने की प्रक्रिया भी प्रारंभ होगी।

- और भी एक गड़बड़ है। हम इस बात का पूरी तरह विस्मरण कर बैठे कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करना और उसकी प्राप्ति के बाद समाज-निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ करना—ये दोनों बातें बिल्कुल भिन्न हैं। यह तो उसी प्रकार है कि हम नदी पार करने के लिए नाव का उपयोग करें और उसके बाद आगे जाने के लिए भी नाव का ही सहारा लें। अंग्रेजों के विरुद्ध भी हमने जो कुछ किया, अपनी सरकार के विरुद्ध भी हम उन्हीं उपायों का अवलंबन करेंगे, यह बात ही मूलतः गलत है। स्वराज्य का अर्थ है नव-युग के निर्माण का श्रीगणेश। आज तो सरकार और विपक्ष दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू बने हैं। सरकार अच्छी प्रकार कैसे चले, दोनों मिलकर यह विचार तक नहीं करते? अब तो विपक्ष का एक ही काम है कि सरकार को विफल कैसे किया जाए?
- आज की वास्तविक स्थिति यह है कि किसी भी पार्टी के पास कोई नेता नहीं है और हर नेता के पास अपनी पार्टी है। उसका कोई अपवाद तक नहीं है। पहले हर पार्टी का नेता होता था। आज हर नेता की पार्टी है। हर स्तर पर व्यक्तिवाद पैर पसार रहा है। व्यक्तिवाद हावी हुआ

विराट् पुरुष

तो उसे टिकाए रखने के लिए चाहिए पैसा और बाहुबल। हर नेता उसी की व्यवस्था में लगा हुआ है। यह सब करते समय विरोधी से संघर्ष न हो तो अपने ही दल और लोगों से झगड़ने में लगा रहता है।

- इस देश की राज्यसत्ता और केंद्रीय सत्ता का समीकरण बिगड़ गया है। तुम्हारे इस चिंतन से मैं सहमत नहीं हूँ कि केंद्र में एक बार सत्तासीन हो जाने के बाद लोग अन्य राज्यों की जनता की भावनाओं को न समझते हुए अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उन पर चाहे जैसे कानून लादने की कोशिश करते हैं और इसके चलते भारत की एकात्मता के लिए ही खतरा पैदा हो गया है।

भारत की एकात्मता ऐसी अधिकचरी ऊपर-ही-ऊपर दीखनेवाली कमजोर नहीं है। न वह केंद्र और राज्य-सरकारों के बीच की खाई है, पर इससे भी भयावह बात है जनता और जनता के बीच की भावात्मक दूरी पैदा हो जाना। सत्ता प्राप्त कर लेनेवाला हर व्यक्ति चाहता है कि अधिकाधिक सत्ता उसी के पास रहे। यह बात सीधे पं. नेहरूजी के समय से चली आ रही है। वे जब संयुक्त राष्ट्र परिषद् में भाग लेने गए थे, तब यहां कांग्रेसजनों ने पुरुषोत्तम दास टंडन को अपनी संस्था का अध्यक्ष चुना था। विदेश से वापस लौटते ही नेहरूजी ने सबसे पहला काम यह किया कि उन्हें अध्यक्ष पद से हटाकर स्वयं ही अध्यक्ष बन बैठे। इतना ही नहीं तो जहां भी संभव था, वहां अपने जी-हुजूरों को सत्तासीन किया। यही सिलसिला नेहरूजी के समय से केंद्र में आज भी जारी है और आप लोग (बुद्धिजीवी) केवल केंद्र-राज्य के संबंधों को लेकर ही चर्चा करते हैं।

- मैंने बहुत बार यह चर्चा सुनी है कि इस देश में प्रधानमंत्री पद की व्यवस्था रहे या राष्ट्राध्यक्ष पद की व्यवस्था। फिर बात घूम-फिरकर यहीं अटक जाती है। समस्या की सही जानकारी न होने का ही यह परिणाम है। यह एक ऐसी चर्चा है कि मातृसत्ता प्रधान कुटुंब अच्छा है या पितृसत्ता प्रधान। अरे, इस देश में तो दोनों ही प्रकार की व्यवस्थाएं सुचारु रूप से चलती आ रही हैं। व्यवस्था क्या हो, यह महत्वपूर्ण नहीं है। असली समस्या तो यह है कि माता-पिता गैर-जिम्मेदार हों तो काम कैसे चलेगा? वास्तव में उन्हीं पर परिवार को स्वस्थ बनाए रखने की आकांक्षा होनी चाहिए।

- अब आज की राजनीति के सुधार हेतु मुझे तीन मार्ग सुझाई देते हैं।

(क) पहली आवश्यकता यह है कि सरकार जो कुछ भी करे—सर्व सामान्य जनता के हित के लिए करे, पर आज हो क्या रहा है? हर जगह 'पब्लिक स्कूल' धड़ाधड़ खुल रहे हैं। उनमें फीस होती है दो सौ रुपयों से लेकर पांच हजार रुपए प्रतिमाह की। सभी सांसद और पूंजीपतियों के बच्चे उन्हीं स्कूलों में भेजे जाते हैं और सामान्य जनता के बच्चे? उनके लिए तो वही सरकारी विद्यालय, जहां न अध्यापक रहते हैं, न पढ़ाई होती है। बाल्यकाल से ही बच्चों के अंदर यह भेदभाव और अस्वस्थता पैदा कर रहे हैं। या तो सभी बच्चों के लिए एक तरह के विद्यालय हों या फिर अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों से निकालकर सरकारी स्कूलों में पढ़ने भेजो। यदि ऐसी कोई शुरुआत हो तो सरकारी स्कूलों में अपने आप बदलाव आने लगेगा।

(ख) आज व्यक्ति नेता या मंत्री बनते ही स्वयं की सुरक्षा के लिए सरकारी व्यवस्था चाहता है। उस पर गरीब जनता के करोड़ों रुपए व्यय किए जाते हैं और समीकरण यह बन गया है कि जिस नेता के लिए जितनी बड़ी सुरक्षा-व्यवस्था, वह नेता उतना ही बड़ा। अरे, इस देश की राजधानी में तंदूर कांड जैसे जघन्य अपराध हो रहे हैं। देश भर में 8-10 वर्ष की किशोरियों पर बलात्कार हो रहे हैं। झुग्गी-झोंपड़ियां जलाई जा रही हैं और नन्हें बच्चों को मारे जाने के दुष्कर्म भी हो रहे हैं। वास्तव में सुरक्षा-व्यवस्था उन्हें देनी चाहिए। यह सुरक्षा देने का दायित्व तुम पर है। उन्हें संरक्षण देने के बजाय आप अपने लिए ही सारी सुरक्षा व्यवस्था कर ले रहे हो।

बड़े लोगों को मुहैया की जानेवाली सुरक्षा व्यवस्था तत्काल समाप्त कर देनी चाहिए। आप यदि आज मारे जा रहे हो तो स्वतः के पाप-कर्मों के कारण! अपने लिए सुरक्षा-व्यवस्था इस कारण चाहते हो कि शासन चलाने की ईमानदारी व क्षमता तुम्हारे अंदर है ही नहीं, जिसके कारण तुम मारे जाने की आशंका से भयभीत हो। इस देश में आतंकवाद का विस्तार इसी कारण हो रहा है, क्योंकि नेताओं में शासन चलाने की क्षमता नहीं, ईमानदारी भी नहीं। यह स्थिति पैदा हुई है आपके द्वारा अपने निजी स्वार्थ के लिए 'वोट बैंक' बनाने और सर्वाधिकार अपने ही हाथों में सुरक्षित रखने की आकांक्षा से। ऐसे लोगों की सरकारी सुरक्षा व्यवस्था तत्काल खत्म करना—यही इस समस्या का सही समाधान हो सकता है। अपनी सुरक्षा व्यवस्था खत्म होते ही इस मंडली को यह समझ आएगी कि जन समस्याओं की ओर ध्यान दिया जाए। यदि उनमें जन समस्याओं के निराकरण की क्षमता नहीं है तो उन्हें सत्तापद छोड़ना पड़ेगा। उसी के बाद शासन चलाने की क्षमता रखनेवाले तरुण सत्ता में आएंगे और जनता में व्याप्त निराशा तथा तनाव को समाप्त कर सकेंगे। अहर्निश जन-सेवा की भावना से परिपूर्ण ये ही युवा वर्ग जन-साधारण को सुरक्षा प्रदान कर शांति और सुव्यवस्था निर्माण कर सकेंगे।

तुम्हें मालूम ही है कि लिमये पंजाब व कश्मीर पर बहुत कुछ सोचते-लिखते रहे हैं, पर उन्होंने स्वयं के लिए कभी सुरक्षा नहीं चाही। पंजाब व कश्मीर के तरुण उनके पास आते थे-बंदूक लेकर नहीं, चर्चा करते हुए, समस्या का हल खोजने के लिए। लिमये की स्मृति में आयोजित सभा में मनीराम बागड़ी द्वारा सुनाया गया संस्मरण तुम्हें याद होगा। लोहिया और लिमये ने स्वयं सांसद होते हुए भी संसद में अपने दल का नेता उन्हें बनाया था—सामाजिक न्याय का तकाजा समझकर। एक बार किसी ने मजाक बनाने की कोशिश की। तुम्हारे पास तो मात्र चार-पांच सांसद ही हैं। वे उस पर गरजकर बोले अरे, भले ही हमारे चार-पांच ही सांसद हों, पर मैं उन्हीं सिंहों का नेता हूँ। उसके दो वर्षों के बाद केंद्रीय मंत्री रहते हुए जब मनीराम लिमये से मिलने गए तब उनके साथ भारी-भरकम सुरक्षा व्यवस्था देखकर लिमये बोले, "मनीराम, बाघ-सिंहों का नेता होने का दावा करनेवाला यदि ऐसी सुरक्षा व्यवस्था चाहे तो सामान्य जनता की क्या स्थिति होगी?" मनीराम ने उसी समय अपनी संपूर्ण सुरक्षा व्यवस्था फोन करके वापस कर दी और फिर कभी ऐसी व्यवस्था स्वीकार भी नहीं की। वे आज भी सुरक्षित हैं। राजकीय नेतागण जब

विराट पुरुष

स्वयं की सुरक्षा की चिंता छोड़कर जन कल्याण के लिए आगे बढ़ेंगे तो उसी समय से राजनीति में परिवर्तन दिखाई देने लगेगा।

- मैं जब 60 वर्ष का हुआ तब राजनीति से बाहर आ गया। आज मैं सोचता हूँ कि 50 वर्ष की आयु के बाद यदि राजनेता राजनीति छोड़कर जनसेवा में जुटें तो देखते-ही-देखते राजनीति सुधरने लगेगी। राजनीति भले ही न छोड़ सको, पर सत्ता पाने की इच्छा का त्याग तो करो। 25 से 50 वर्ष के युवाओं के हाथों में सत्ता की बागडोर सौंप दो। आप अपने व्यक्तित्व, प्रतिभा, अनुभव आदि का लाभ युवाओं और जनता को दो। नव-युग का निर्माण तो युवा वर्ग ही कर सकेगा।

पर आज कैसी भयानक परिस्थिति है। प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, राष्ट्रपति आदि बहुत बड़े पद हैं। उनके प्रति हम सभी के मन में आदर का भाव तो होना ही चाहिए, पर कोई तो बोलनेवाला भी हो। यह राष्ट्र के साथ क्या मजाक चल रहा है। राष्ट्रपति पद पर आसीन व्यक्ति ठीक प्रकार से चलने में भी असमर्थ। उनका कितना बड़ा दायित्व है और उन्हें कितने महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में कोई शरीर से जर्जर व्यक्ति राष्ट्रपति बनने की इच्छा भी कैसे रखता है? मैं जो कुछ बोल रहा हूँ, उसे जरूर लिखो। किसी-न-किसी को तो इन बेकार बड़े व्यक्तियों को यह बात तो बतानी ही चाहिए।

मानव एक अति विलक्षण और अनाकलनीय प्राणी है। कभी भी, किसी भी समय उसमें परिवर्तन हो सकता है। नवजात नन्हा पक्षी जब आसमान में उड़ान भरने लगता है, तब प्रकृति की इस लीला से हम चकित हो जाते हैं, पर मनुष्य तो इससे भी अधिक विलक्षण प्राणी है। उसमें किसी भी तरह का परिवर्तन हो सकता है। देखते-ही-देखते छोटे से बीज से महावृक्ष बन जाता है और वही महावृक्ष पुनः बीज रूप में परिवर्तित होता है। अरविंद जैसा क्रांतिकारी योगी बन जाता है और राव साहेब पटवर्धन जैसा व्यक्ति राजनीति से दूर होकर गुलाब की खेती में रम जाता है। यह सब परिवर्तन कैसे हो जाता है—इसका मूल कारण खोजने पर भी हाथ नहीं लगता। इतना ही समझ में आता है कि मानव मानव को समझ सकने की क्षमता से भी कहीं आगे है।

लिमये उच्च कोटि के लेखक हैं। हर दो तीन माह में एकाध ग्रंथ लिख डालते हैं, पर साथ ही महाभारत का सूक्ष्म अध्ययन करने की इच्छा से सामग्री का संकलन करते हुए दीखते हैं। मेरे सामने आज हैं नानाजी! इसके पूर्व संघ, शाखा, राजनीति इत्यादि विषयों पर उन्होंने जो कुछ प्रकाश डाला, वह प्रारंभिक जीवन से संबंधित था। सच पूछो तो आज के उनके जीवन से प्रारंभिक जीवन का कोई मेल ही नहीं बैठता। इन विषयों पर इसके पूर्व उन्होंने कुछ भी बोलना टाल दिया था। विगत 15-16 वर्षों से नानाजी एक नए मार्ग पर चल पड़े हैं, नए-नए प्रयोग करते हुए। सर्वप्रथम उन्होंने गोंडा जिले के विकास का प्रयोग प्रारंभ किया। सरकारी मदद के बिना—बिलकुल ही अभिनव पद्धति से। तदनुसार उसी प्रकार का प्रयोग बिहार के सिंहभूम में प्रारंभ किया। ये प्रयोग स्वावलंबी होते ही नानाजी सब काम युवाओं के हाथों में सौंपकर आगे बढ़ गए। मध्य प्रदेश में देश का पहला ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किया। मंदाकिनी के तट पर एक बिलकुल ही अलग तरह का चित्रकूट विश्वविद्यालय! प्राथमिक शिक्षण से लेकर डॉक्टरेट तक की उपाधि

साक्षात् नानाजी

देनेवाला यह विश्वविद्यालय एक ही साथ गुरुकुल पद्धति से चलाया गया। आयुर्वेद, योगासन से लेकर कंप्यूटर तक के शिक्षण की यहां व्यवस्था है। यहां आनेवाले 5 वर्ष से 25 वर्ष की आयु तक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी ग्रामीण समस्याओं को अच्छी प्रकार समझते हुए सीमित संपत्ति और मानव संसाधनों का उपयोग करते हुए वहां की समस्याएं सुलझा सकें, ऐसा प्रशिक्षण देने की यहां व्यवस्था है। जब विश्वविद्यालय अस्तित्व में आ गया, तभी नानाजी ने आजन्म कुलाधिपति के पद को स्वेच्छा से त्यागकर और भी आगे बढ़ गए। अब नानाजी आयुर्वेद, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की भारतीय पद्धति पर शोध करने हेतु जे.आर.डी. टाटा आयुर्वेद एवं योग विज्ञान शोध प्रतिष्ठान के माध्यम से एक अति विराट् प्रयोग में जुट गए। उतने से उन्हें समाधान नहीं। उन्होंने उसके साथ ही 'लोक शिक्षण अभियान' का श्रीगणेश किया। वहां उन्हें स्नातक युवा-दंपती के सौ जोड़े भेजने हैं। इनमें मूलतः सामाजिक दायित्वबोध का गुण तो होना ही चाहिए। ये दंपती कम-से-कम पांच वर्ष तक उन्हीं ग्रामीण केंद्रों में रहते हुए वहां की समस्याओं का गंभीर अध्ययन करेंगे और वहां की साधन संपत्ति एवं मानव संसाधन का उपयोग करते हुए उन्हीं ग्रामीणों को स्वावलंबी बनाने की प्रेरणा देंगे तथा वहां के प्राथमिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देंगे। ऐसे दंपती कार्यकर्ताओं की खोज और चयन करने हेतु वे पुणे की ज्ञानप्रबोधिनी से लेकर अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय तक का दौरा करेंगे। इसके लिए पत्राचार करेंगे। नानाजी इस अभिनव प्रयोग में मानो रम गए हैं।

अस्सी वर्ष की उम्रवाले नानाजी कहते हैं, "और 8-10 वर्ष कार्य करने का अवसर मिला तो यह प्रयोग बहुत कुछ नई-नई बातों को उजागर करेगा।" वे पूरे आत्मविश्वास से कहते हैं, "कुछ भी हो, इस प्रयोग के सफल होने से पूर्व मैं मरूंगा नहीं। एक तो मेरे देहत्याग से यह काम होगा नहीं और यदि नियति ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी तो तुम्हारे जैसे लोगों पर भूत बनकर मैं यह काम पूरा करवा लूंगा।"

अब मुझे समझना है कि आपके इस नए प्रयोग के पीछे मूलभूत चिंतन क्या है?

नानाजी आग्रहपूर्वक कहते हैं कि मैं कोई विचारक या चिंतक नहीं हूँ, पर मैंने इस देश के ग्रामीण इलाकों का भ्रमण किया है, वहां के लोगों से उन्हीं की भाषा में चर्चा करते हुए उनकी वास्तविक समस्याओं को समझने की कोशिश की है। हर रात किसी नई झोंपड़ी या घर में रहता हूँ और उन्हीं के साथ अन्न भी ग्रहण करता हूँ। उन लोगों ने मुझे समझा है और मैं भी उनकी समस्याओं से अच्छी प्रकार अवगत हूँ।

नानाजी ने विश्वासपूर्वक जो बातें बताईं, अब उन्हें विस्तार से समझने के लिए मैं उनसे अनेक प्रश्न करता हूँ।

अमरीका व जर्मनी जैसे देशों ने यहां बाल-मजदूरों द्वारा निर्मित गलीचों को खरीदने से इनकार कर दिया है। अपनी जगह वे ठीक भी लगते हैं, पर यह मजदूरी खत्म हो जाए तो ये बाल-कारीगर जिएंगे कैसे? बढ़े

विराट् पुरुष

बूढ़ों के साथ-साथ काम करते हुए वे बालक गलीचा बनाने की कला सीख लेते हैं। कुशल कारीगर बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में उन गलीचे बनवानेवाले कारखानों की पुनर्रचना आवश्यक है। वे बच्चे वहीं काम करें, पर मात्र चार घंटे। दो घंटे खेल, दो घंटे पढ़ाई—इस प्रकार 8 घंटे का समायोजन। इस प्रकार की व्यवस्था में उनका बचपन खोएगा नहीं और वे कारीगर भी बन जाएंगे। इस विधि से बने बाल-कारिगरों के गलीचे खरीदने में अमरीका जर्मनी की मानवतावादी संस्थाओं को कोई आपत्ति भी नहीं होगी।

अमरीका व जर्मनी के मानवतावादी संगठन इस देश की समस्याओं के बारे में क्या सोचते हैं, इससे मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं है। आपकी बात से मुझे इस बात का दुःख अवश्य होता है कि आप जैसे पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी भी इस देश की मूल समस्याओं को समझ नहीं पा रहे हैं।

बाल मजदूरों की समस्या उत्पन्न कैसे हुई, इसे अच्छी प्रकार समझने की कोशिश करें। वे बच्चे हमारे अपने हैं और उनके प्रति मेरा भी कोई कर्तव्य है, यह बात मन में होनी चाहिए। तब जाकर आप इस संबंध में मेरे चिंतन को समझ पाएंगे। ब्रिटिशों के आने से पूर्व इस देश का प्रत्येक ग्राम स्वयं पूर्ण था, स्वावलंबी था। लोहार, मिस्त्री, बढ़ई दैनिक जीवन में लगनेवाली वस्तुओं के निर्माता, सभी ग्रामीण ही होते थे और उन्हीं के सामूहिक प्रयासों से ग्राम स्वावलंबी था, समुन्नत था, पर आज स्थिति क्या है। सरकारी आंकड़ों पर विश्वास करें तो 78 प्रतिशत ग्रामीणों के पास खेती के लिए पर्याप्त जमीन ही नहीं है और ये सरकारी आंकड़ें भी कैसी चालाकी से तैयार किए जाते हैं, जरा उसे भी समझो। 76 प्रतिशत से अधिक। बस इतना ही कहा है? अरे, इससे कितना अधिक? ऐसी स्थिति में बहुसंख्य लोग खेतिहर मजदूर बन गए हैं। स्वयं का खेत नहीं, रहने के लिए जगह भी नहीं। यह वस्तुस्थिति है। अब इन सब लोगों की आजीविका का एकमेव साधन हैं उनके बच्चे। ये बच्चे 7-8 वर्ष के होते ही किसी काम पर लग जाते हैं। प्रतिदिन की मजदूरी मुश्किल से डेढ़ या दो रुपए ही मिल पाती है। इस स्थिति में जब तक परिवर्तन नहीं होगा, तब तक आप चाहे जितने कानून बनाएं, चाहे जितनी चर्चाएं, परिसंवाद आयोजित करें, ये बच्चे गलीचे बनाएंगे, शिवकाशी में आतिशबाजी के विस्फोटक पदार्थ हाथ में लेकर काम करने को मजबूर होंगे और मुरादाबाद में पीतल का काम करते हुए तेजाब से अपने हाथ झूलसवाते रहेंगे।

एक और भी बात ध्यान में रखिए। शिक्षा तो मानव मात्र के लिए अत्यावश्यक है। मानव और पशु जगत् में जो भेद दिखाई देता है, वह शिक्षा के कारण ही है। शिक्षा परिवार और स्कूलों में मिलती है।

इन बच्चों को 'घर' नाम की कोई बात होती ही नहीं। फिर शिक्षा भी नहीं चाहिए। आपका सुझाव है—चार घंटे कालीन बुनाई और दो घंटे पढ़ाई। कारण, आप उन बच्चों के तो कुछ हो नहीं। पढ़ाई और जीवन ये दोनों एक रूप हैं। यह बात अच्छी प्रकार समझ लेनी चाहिए। इन बच्चों को पढ़ते समय स्कूल में भोजन की व्यवस्था करना ही पर्याप्त नहीं है। उनकी शिक्षा के साथ-साथ कमाई का साधन भी होना चाहिए। इस देश में महात्मा गांधी ने यह विचार किया था। हमें वही रचना अब युगानुकूल करनी होगी। उससे एक और लाभ होगा। इस पद्धति से पढ़-लिखकर आगे आनेवाला बालक या युवक स्वतः के पैरों पर खड़े होकर अपनी आजीविका अर्जित कर सकेगा। यह अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि कोई भी सरकार सभी नागरिकों को नौकरी

नहीं दे सकती, पर दुर्भाग्य यह है कि हम सबने मान लिया है कि सभी को नौकरी देना सरकार का दायित्व है।

यह कैसे संभव हो सकता है, यह बात स्वयं के एक उदाहरण से स्पष्ट करता हूं। एक अंगूठाछाप व्यक्ति है, पर है एक गलीचा बनानेवाले कारखाने का मालिक। न्यूयॉर्क में उसका एक शो-रूम भी। हमने उससे आग्रह किया कि एक कारखाना आप हमारे विद्यालय परिसर में खोलिए और स्कूल के बच्चों को भी सिखाइए। वे ही बच्चे कारीगर बनकर काम करेंगे, पर इस विद्यालय के बच्चों द्वारा निर्मित गालीचों का 90 प्रतिशत लाभ विद्यालय को मिलना चाहिए। सब हिसाब-किताब हम ही ठीक प्रकार से रखेंगे। आप जो कुछ काला-सफेद धंधा करते हो, वह करो। उससे हमारा कुछ लेना-देना नहीं। हमने पूरे समाज को एक पल में ठीक करने का ठेका नहीं लिया है। हमारी प्राथमिकता तो इन बच्चों का विकास करना है। वह कार्यक्रम आज भी ठीक प्रकार से चल रहा है। उस विद्यालय के विद्यार्थियों का ड्रॉप आउट भी बहुत कम हो गया है। स्कूल के बाद जो बच्चे घर में बैठ जाते हैं, वे बेवकूफ नहीं होते। उनके परिवार के लिए एक डेढ़ रुपए की सहायता बहुत महत्व रखती है। ऐसे कार्यक्रम संपूर्ण देश में चलाए जा सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है।

बच्चे अगर कमाई के साधन माने जाएंगे तो इस देश में परिवार नियमन कार्य कैसे चल सकेगा?

प्रश्न यदि आपकी समझ में आ गया हो तो हम और भी मूलभूत बातों की ओर चलें। तीन-चार वर्ष पूर्व की घटना है। एक गांव में जहां हमारा कोई परिचय नहीं था, हम लोग एक दिन रहने के लिए गए। घर की महिला जीवित परंतु अस्थिपंजर की हालत में। उसके आगे-पीछे 6-7 बच्चे। उसके बाद वह पुनः गर्भवती। परिवार का मालिक भी उसी प्रकार एक अस्थि-पंजर की स्थिति में। हमने उससे बातचीत की। वह बोला, “मैं अब 35 वर्ष का हूं और मेरी पत्नी है केवल 30 साल की।” हमने कहा, “अरे, अब तो बस करो, पर उसने अपनी पत्नी को अपने बच्चों के सामने जो कुछ कहा वह बताता हूं।” वह बोला, “साहब, अभी कम-से-कम दो-तीन बच्चे तो चाहिए ही। कुछ मर भी गए तो 4-5 तो हाथ लगेंगे ही। हर दिन एक-दो रुपए कमाएंगे। यदि पत्नी मर भी जाए तो सौ, डेढ़ सौ रुपए खर्च कर नई पत्नी मिल जाएगी।” उत्तर प्रदेश के ऐसे पिछड़े ग्राम। बिहार भी इसमें पीछे नहीं, पर आप सब बुद्धिजीवी भारत की दशा बताते समय माडूलकर की ‘दरवेशी’ कथा का ही बखान करते हैं।

बेचैन होकर हम कार्यकर्ताओं ने विचार किया कि क्या कुछ किया जा सकता है। बैंक से ऋण लेकर उनके परिवार को विदेशी नस्ल के सूअर उपलब्ध कराए। उनका उचित मार्गदर्शन भी किया। जल्दी पिल्ले देनेवाले सूअरों ने उनकी स्थिति ही बदल डाली। कुछ वर्षों बाद ये ही किसान हमारे पास आकर पूछने लगे, “बाबू, हमें परिवार नियोजन की बात समझाइए।”

मैं जो कुछ भी कह रहा हूं, वह कोई किस्सा, कहानी नहीं है—यथार्थ है। बच्चे जब तक इस देश में कमाई और उपजीविका के एकमेव साधन होंगे, तब तक आप हजारों उपाय और कानून बनाएं—इस देश की जनसंख्या वृद्धि कम नहीं होगी, पर यदि इसी व्यक्ति को एहसास दिलाकर

विराट् पुरुष

परिवार नियोजन में सहभागी बनाया जाए तो बात बन जाएगी। यह ध्यान रखें कि इस देश का सर्वसाधारण व्यक्ति हम सबसे अधिक बुद्धिमान और व्यावहारिक है।

इस देश के सभी महानगरों को हमने झुग्गी-झोंपड़ी की बस्ती में परिवर्तित कर दिया है। सड़कों पर गंदगी का ढेर और घर न होने पर उसी के बीच में परिवार सहित जीवन बितानेवाले ये लोग। वाहनों के चलने की बात तो दूर, उन्हें खड़े रहने की जगह भी नहीं। इन्हीं वाहनों तथा कल-कारखानों से आई हुई जहरीली वायु और उन कारखानों से निकलनेवाला प्रदूषित जल सड़ांध को फैला रहा है। इस कारण वे लोग नरक की जिंदगी जीने को मजबूर हैं।

(टी.एन.) शेषन सरीखा एकाध व्यक्ति इस देश की चुनाव प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकता है। सभी राजनीतिक दल चुनाव के पूर्व यह निश्चय करें कि हम हर एक नगर के चुनावों में ऐसे ही तेजतर्रार नेता और उनके ऊपर नियंत्रण रखनेवाले लोकायुक्त का निर्माण करेंगे। यहां तक कि न्यायालय भी उनके काम में दखल नहीं देंगे और न ही कोई राजनीतिक दल ऐसे कामों में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न करेंगे। ऐसी प्रक्रिया में से यदि हम एक नगर भी विकसित कर सकें तो उसकी देखा-देखी ऐसे अनेक नगरों की शृंखला भी तैयार हो सकेगी। राजनीति से बाहर रहते हुए समाज-निर्माण की एक स्वच्छ छवि भी निर्माण हो सकेगी।

आप लोगों को यथार्थ जानकारी न होने के कारण आप स्वप्न-जगत् में विचरण करते हैं। झुग्गी-झोंपड़ी हटाई, सड़कों पर पड़े कूड़े को हटा दिया, बहुत ईमानदार प्रशासक नियुक्त कर दिया तो इतना ही होगा कि कुछ समय के लिए नहीं, मात्र कुछ घंटों के लिए यह समस्या सुलझी हुई दिखाई देगी, पर यह स्थायी कभी नहीं होगी। इस समस्या के विकट-स्वरूप और भयानकता का सही अंदाज आप लोगों को है ही नहीं। खाने को अन्न नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं, रहने को स्थान नहीं और कोई काम भी नहीं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण युवकों की टोलियां अविरल गति से शहरों की ओर भाग रही हैं। जनतंत्र की बात छोड़िए, कोई निरंकुश शासक भी गोलियां भांजकर ऐसे लोगों की भीड़ को शहरों में आने से रोकने में असमर्थ होगा और यह भीड़ जब तक शहरों की ओर कूच करती रहेगी—तब तक आप चाहे जैसा कर्तृत्ववान प्रशासक जाएं और शहरों की दशा सुधारने के लिए अरबों रुपए लगाएं, इनकी दशा में स्थायी सुधार कभी हो ही नहीं सकेगा। नई-नई झुग्गी-झोंपड़ियां बसती चली जाएंगी। सच तो यह है कि शहरी विकास के लिए आप जितना अधिक धन लगाएंगे, उतनी ही तेजी से ग्राम दुर्दशाग्रस्त होते जाएंगे। और भी अधिक ग्रामीण शहरों की ओर आने के लिए मजबूर होते जाएंगे। शहर की स्थिति तो और भी खराब होगी।

ग्रामीण युवाओं को उनके ग्राम में आजीविका प्राप्त कराना—यही एकमेव उपाय है। जब ग्राम स्वयं पूर्ण होंगे तो राजनीति से अलग रहकर काम करनेवाली 'यती शक्ति' का भी निर्माण हो सकेगा।

अब मेरा यह आखिरी प्रश्न! स्वदेशी के बारे में आपका क्या मत है?

कई बार शब्दों का अर्थ और आशय बदलता रहता है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पूर्व 'स्वदेशी' शब्द

का आशय और आज स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद उस शब्द का आशय बिलकुल ही भिन्न होगा। आज संपूर्ण विश्व तेजी से नजदीक आ रहा है। संचार और संपर्क माध्यमों द्वारा नव-विकसित तकनीकी ने जो योगदान दिया है, उसके परिणामस्वरूप हम 'ग्लोबल विश्व' में रह रहे हैं, यह परिस्थिति पैदा कर दी है। यह कमाल तकनीकी के द्वारा हुआ है। ऐसी स्थिति में यह तकनीकी विदेशी है, ऐसा कहकर क्या हम उसका बहिष्कार कर सकेंगे?

मैं कोई ऐसा कट्टरपंथी हिंदू नहीं, जो समुद्र यात्रा को धर्मविरुद्ध समझूँ या पाव रोटी खा ली तो अपने को भ्रष्ट मानूँ। हमें यह तो ज्ञात ही है कि अपने ढाका की मलमल पूरे विश्व में प्रसिद्ध थी। वह भारतीय है, इस कारण किसी भी देश ने उसका बहिष्कार तो नहीं किया। अमरीका की बात छोड़ो। जर्मन-जापान तक के लोग भारतीय मसालों को पसंद करते हैं। हम एक बात और भी समझें। विज्ञान सर्वव्यापी है। पानी और अग्नि के गुण सभी देशों में समान ही हैं। वे बदलते नहीं। वैज्ञानिक नियमों का अनुसरण कर या प्राकृतिक रहस्यों की जानकारी करते हुए आधुनिक तकनीकी का मानव मात्र के लिए प्राकृतिक संपत्ति का अच्छे ढंग से उपयोग करना सिखाता है। कोई माने या न माने, पर इस तकनीकी में मानवीय जीवन एवं संस्कृति में भी परिवर्तन करने की क्षमता है। अब मेरे देश की प्राकृतिक संपदा को मानव-हित के लिए किसी ने भी विकसित किया हो—पर क्या हम उसे स्वदेशी नहीं, विदेशी मानेंगे? हमारी प्राकृतिक संपदा उन देशों में जाकर (जहां तकनीकी विकसित हुई) वापस हमारे लिए ग्राह्य बनकर हमारे देश में आती है तो क्या हम उसका निषेध करेंगे? आज जापान और कोरिया में भारतीय लौह-खनिज पर्याप्त मात्रा में जाता है और वहां के तकनीकी के सहारे उसे लौहधातु के रूप में रूपांतरित करते हुए पुनः भारत भेजा जाता है—यह बात मेरी 'स्वदेशी' की अवधारणा में बैठती नहीं।

जापान या महाराष्ट्र तकनीकी के द्वारा प्रगति करे और खनिज पदार्थों से भरपूर उड़ीसा, बिहार आदि प्रदेश औद्योगीकरण से वंचित हों—यह मेरी स्वदेशी की मान्यता स्वीकार नहीं करती। भारत में जिन प्रदेशों में यह प्राकृतिक संपदा उपलब्ध है, वहां ऐसी तकनीकी विश्व भर में जहां कहीं भी उपलब्ध हो, अपने यहां लाकर हम उद्योगों का विकास करें। यह बात अवश्य है कि यह तकनीकी अपने यहां लाते समय उसे अपने देश की आवश्यकता के अनुरूप ढालना होगा। जहां यह कच्चा माल है, वहीं पर कारखाने विकसित कर अधिकाधिक श्रम-शक्ति का उपयोग कर पर्यावरण न बिगाड़ते हुए उसका उपयोग करना होगा। जापान ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया है कि बाहर से आई तकनीकी को अपनी परिस्थिति के अनुसार अधिक विकसित करना संभव है। मैं इस विषय का कोई पंडित नहीं, पर मुझे जो एक मार्ग सुझाई देता है, वह बताता हूँ। तकनीकी का चयन करने, उसे परखने का दायित्व हमें अपनी राष्ट्रीय प्रयोगशाला, आई.आई.टी. अथवा आपके श्रीराम रिसर्च इंस्टीट्यूट जैसे संस्थानों को सौंपना चाहिए। शासकीय अथवा निजी औद्योगिक घरानों से मदद न लेनेवाले स्वावलंबी संशोधन केंद्र उत्तम तकनीकी का चयन कर उसे अपने देश के अनुकूल रूपांतरित कर शासकीय अथवा निजी औद्योगिक संस्थानों को दें। उस तकनीकी पर सतत शोध-कार्य जारी रखते हुए उसे और भी अधिक विकसित करने का काम उपर्युक्त केंद्रों को ही करना होगा। हमें

विराट पुरुष

आज ऐसे या इसी प्रकार के प्रयोगों पर मंथन करने की आवश्यकता है।''

बाकी सबकुछ तो ठीक, पर भोजन में देर होने पर मेरे अंदर का पत्रकार चिड़चिड़ा बन जाता है। पहले ही पर्याप्त विलंब हो चुका है और नानाजी लगातार एक के बाद एक मुद्दे उठाते जा रहे हैं। कहते हैं कि कई नए प्रयोग करने की कल्पना मेरे मन में है। गरीब बस्ती के आपके ही भाई और प्रयोगवादी दाभोलकर परिवार द्वारा सिद्ध करना कि कैसे दस बिस्वा ऊसर जमीन पर एक कुटुंब सीमित जल का प्रयोग करते हुए पचास हजार का अन्नोत्पादन कर सकता है, ऐसा ताल ठोककर बतानेवाला प्रयोग मुझे कई जगह करके दिखाना है। इससे भी महत्वपूर्ण एक बात यह भी है कि शहरों में अपने मकान की छत पर या दीवाल पर गमले टांगकर उससे भरपूर सब्जी, फल-फूल आदि उगाया जा सकता है। गमले या मिट्टी का अभाव हो तो प्लास्टिक या सन की बेकार फेंकी जानेवाली थैलियों का और मिट्टी न हो तो उसमें गन्ने की खोई अथवा बेकार चाय का उपयोग किया जा सकता है। और पानी? वह तो आपके स्नानघर से पूरा किया जा सकता है।

मैं अंदर-ही-अंदर हंसता हूं। चिड़चिड़ा हो जाने के कारण कुछ कड़वाहट के साथ बोलता हूं, ''नानाजी, ये सब प्रयोग देखने या पढ़ने तक तो ठीक हैं, पर उसका प्रयोग करना बहुत कठिन। मुंबई के बांद्रा क्षेत्र में डॉक्टर दोषी ने अपनी छत पर ऐसी ही एक विलक्षण बगिया तैयार की है। उस पर उन्होंने एक सुंदर पुस्तक भी प्रकाशित की है। कोल्हापुर में मेरे भाई ने भी ऐसा ही एक प्रयोग किया है, पर हम जैसों के लिए उसका क्या उपयोग? खाद, पानी आदि आवश्यक सामग्री एकत्र करने के बाद भी अपने घर के छोटे से मनीप्लांट को भी मैं ठीक नहीं रख पाता। मेरी बात छोड़िए। अरुण शौरी ने कोल्हापुर जाकर वहां के प्रयोग को अच्छी प्रकार देखा-समझा। वापस आने पर उन्होंने मुझे फोन करते हुए कहा, ''अरे, बहुत महत्व का प्रयोग है। यह तो सारे भारत का चित्र ही बदल देगा। मैंने अपने बंगले की छत पर बहुत सारे गमले लाकर यह प्रयोग प्रारंभ किया है। मैं ही नहीं, मेरी पत्नी भी इस प्रयोग में रम गई है। एक बार सुविधानुसार देखने के लिए आओ।'' दो-तीन महीने बाद मुझे उस क्षेत्र में जाने का अवसर मिला। तब मैं अरुण के घर पर गया। उनके साथ ही छत पर देखा कि सभी गमले सूखे पड़े हैं, उनमें लगाए गए पौधे शुष्क काष्ठवत् अपनी व्यथा पर आंसू बहा रहे हैं। वैसे ही, जैसे मेरी छत पर।

नानाजी नन्हे बच्चे की तरह खिलखिलाकर हंसे। बच्चों की तरह मेरी बात पर तालियां नहीं बजाई—इतना ही। 80 वर्ष का यह सीधा चलनेवाला तरुण बूढ़ा बच्चों जैसे उत्साह के साथ मेरा हाथ पकड़कर सीढ़ियां चढ़ते हुए छत पर जा पहुंचा और मैं अवाक् होकर छत पर उगाई गई फल-फूलों से सज्जित बगिया को देखकर मंत्रमुग्ध हो गया। नानाजी के अंदर का प्रयोगधर्मी, कर्मवीर और हम लोगों जैसे बुद्धिजीवी—इनमें कितना अंतर है, यह अनुभव हुआ। दिल्ली तो संपूर्ण विश्व के बड़े शहरों में सर्वाधिक प्रदूषित शहर माना जाता है। इस शहर के सर्वाधिक प्रदूषित नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से एक दो किलोमीटर मात्र की दूरी पर स्थित यह भवन! पर यहां सब देखकर मैं कोल्हापुर का मेरे भाई का घर या मुंबई के डॉ. दोषी की छतवाली बगिया को बिलकुल ही भूल सा

साक्षात् नानाजी

गया—अपने सामने फल-फूलों से आच्छादित नानाजी की इस हरी-भरी बगिया को देखकर।

नानाजी ने कहा, “सबरे नाश्ते पर तुम्हें जो पपीता खाने के लिए दिया था वह इसी पौधे का था। भोजन में तुम्हें पसंद भरूआ बैंगन की सब्जी सब यहीं की उपज। पालक की पकोड़ी तुम्हें बहुत पसंद है न। वह भी इसी गमले की देन है। और हां, भोजन में फूलगोभी की सब्जी जरूर बनी होगी, वह भी उधर के कोने में उगाई हुई। अरे भाई, कई सप्ताह तक यहीं की सब्जियां हमारे यहां उपयोग में आती हैं इसी छोटी सी बगिया से।”

छत की बगिया से प्रफुल्लित हम सब नीचे उतरकर भोजन पर बैठे। मेरे दिमाग से बगिया का वह दृश्य हट ही नहीं रहा था, पर नानाजी तो बागवाली घटना को कब के भूल चुके हैं। नानाजी और मधु लिमये इन दोनों के भीतर का एक समान गुणधर्म मुझे अवगत है। दोनों ही एक क्षण भी बरबाद नहीं करते। उनके भी मन में सतत चलनेवाली नई-नई बातों के विषय में वे दूसरों से अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने को उत्सुक रहते हैं। फिर भी उनमें एक अंतर तो है ही। बातचीत के दौरान मधु लिमये के भीतर का संगणक (कंप्यूटर) एकाएक जाग्रत हो उठता है। उसके बारे में पहले कहीं भी जो कुछ जानकारी पाई, उसे सहज भाव से आपके सामने रखने लगते हैं और किसी छोटे से शैतान बच्चे की तरह मुसकराते हुए उस विषय पर हमारे विचारों की विसंगति का हमें आभास भी करा देते हैं। आज तक मुझे यह कभी नहीं लगा कि किसी भी गंभीरतम विषय पर उन्होंने अध्ययन-मनन और चिंतन न किया हो। पहली बार शेषराव मोरे के साथ मैं उनसे मिलने गया था। लौटते समय मोरे ने कहा, “अरे भाई, मधु ने तो सावरकर के बारे में मुझसे भी कहीं अधिक पढ़ा है।”

‘माते नर्मदे’ इस पुस्तक के लेखन के समय इस विषय के दोनों पहलुओं के जानकार लोगों से मिलकर उनके विचारों को समझने का मैं प्रयास करता था, पर जब इसी विषय पर मैं लिमये से मिलने गया तो उन्होंने कहा, “भाई, इस विषय का अध्ययन मैंने नहीं किया है। मुझे आपसे ही इसकी जानकारी करनी है।” और जब मैंने बोलना प्रारंभ किया तो इस विषय के दोनों पहलुओं में क्या-क्या विसंगतियां हैं, यह बात मुझे सिलसिलेवार आंकड़ों सहित ऐसी सहजता से बता रहे थे मानो रटे-रटाए पहाड़े बता रहे हों।

पर नानाजी की बात ऐसी बिलकुल ही नहीं। आप जो कुछ भी बोल रहे हों, उसे आदर के साथ, कौतूहल के साथ शांतचित्त से सुनते हैं। शायद यह सब सुनते समय वे मन-ही-मन यह विचार कर रहे हों कि “यह घड़ा पक्का है या कच्चा?”

हम भोजन पर बैठे और नानाजी ने बातचीत का स्वर ही बदल डाला। अरे, इतना बड़ा बाग कैसे बढ़ता है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। वह फलता-फूलता है सूर्य-शक्ति से। यह सौर ऊर्जा भारत को वरदान के रूप में प्राप्त है। इस प्राकृतिक ऊर्जा का हमें अच्छी तरह उपयोग करना होगा। इस पर खूब शोध करते हुए, उसके हर पहलू को समझते हुए हमें उसका भरपूर उपयोग करना चाहिए। तुम्हें क्या लगता है?

विराट् पुरुष

अब नानाजी ने मेरा प्रिय विषय छेड़ दिया। मैंने कहा, नानाजी, ईंधन और पानी—इन्हीं दो विषयों को लेकर सारे विश्व में शोध चल रहा है। संसार में इसी पर राजनीति हो रही है और संघर्ष का कारण भी ये ही बने हुए हैं। पंजाब की समस्या तो नहीं, पर 'गोलन-हाइट' का संघर्ष तो पानी के कारण ही पैदा हुआ। इराक युद्ध का मुख्य कारण वहां का तेल बना है। नर्मदा प्रकरण एवं एन्नान, इन दोनों समस्याओं के मूल में भी ये ही दो तत्व हैं। जब कभी सौरशक्ति मानव के हाथ लग सकेगी—उस समय सारे विश्व का चेहरा-मोहरा इतना बदल जाएगा कि हम पहचान भी नहीं पाएंगे। ईंधन और पानी इनका स्थायी समाधान अवश्य होगा। संपूर्ण जगत् के हर व्यक्ति का जीवन स्तर चाहे जितना ऊपर उठ सकेगा। किसी एक छोटे से रासायनिक अथवा जैव रासायनिक टुकड़े में सौर ऊर्जा को हम संचित कर सकेंगे। उस समय परी-कथाएं जन्म लेने लगेंगी। घर में रात के समय यदि आपको प्रकाश की आवश्यकता होगी तो आप इसी छोटे से टुकड़े को दीये में डालकर काम कर लेंगे। बाहर यात्रा करते समय आपकी गाड़ी के इंजन में भी इसी टुकड़े का उपयोग किया जाएगा। इसी टुकड़े का उपयोग करके समुद्र के खारे पानी को वाष्पीकृत कर पीने योग्य मीठा पानी बनाया जा सकेगा। इन्हीं टुकड़ों की मदद से छोटे-बड़े कारखाने चलाते हुए नलकूप खोदकर खेती या पीने के लिए चाहे जितना मीठा पानी प्राप्त हो सकेगा। वर्ष के बारहों महीने भरपूर सौरशक्ति का वरदान प्राप्त भारत खनिज तेलवाले खाड़ी देशों की तरह संपूर्ण विश्व के लिए ईर्ष्या का विषय बनेगा और सौरशक्ति संचित करने के लिए अमरीका, जापान, जर्मनी जैसे देशों की कंपनियां भारत में आवश्यक जमीन एक वर्ष के लिए ही वयों न हो, ठेके पर मांगने के लिए हाथ पसारेंगी, किंतु नानाजी इसमें एक बहुत बड़ी कठिनाई है। सौरशक्ति कम लागत में कैसे संचित की जाए—इस पर विश्व भर में बहुत थोड़े शोध चल रहे हैं। इसके लिए बहुत बड़े शोध की आवश्यकता है।

नानाजी अकस्मात् उत्साह के साथ बोलने लगे, "अर्थात् भारत में इस विषय पर सबसे पहले बड़े प्रमाण पर शोध करना होगा। समझो, ऐसा कोई शोध केंद्र बनाने का विचार किया जाए तो उस पर कितना खर्च आएगा।" मैं तो अभी तक भी असावधान! मैंने ऐसे ही कह दिया, "आएगा बीस-तीस करोड़ रुपयों का खर्च।"

बाजार में कभी जाने पर अगर मटर सस्ती कीमत पर मिल रही हो तो जितनी सहजता से हम एक किलो की जगह दो किलो देने की बात कहते हैं, उतनी ही सहजता से नानाजी कहते हैं—अगर तुम्हें पचास करोड़ की व्यवस्था कर दी जाए तो, मैं अब अचानक कुछ सावधान हो जाता हूं। अपना टेप रिकॉर्डर बंद कर देता हूं। नानाजी कोई भी बात यों ही नहीं बोलते। जो बात मुंह से निकले, उसे कर दिखाने की धमक उनके कार्य में ही नहीं उनके शब्दों में भी दिखाई देती है। यह पेड़ अब तेजी से सूखने की ओर बढ़ रहा है, यह बात मुझे स्पष्ट रूप से अनुभव होती है। मुझे अपनी शुष्क छोटी सी नौकरी का ध्यान आता है। मघई पान की तरह मुंह में मस्ती लानेवाली। मैं सहजता के साथ किंतु प्रामाणिकतापूर्वक कहता हूं, "अरे नानाजी, अब इतना बड़ा काम और इस उमर में? इतनी बड़ी संस्था इस उम्र में खड़ी की, उसका दायित्व छोड़कर किसी नई जगह जाने की बात?"

बोलते-बोलते मानो मुझे क्षण भर के लिए कुछ लज्जा आने लगी। मैं एकाएक रुक जाता हूं।

साक्षात् नानाजी

नानाजी को मेरे बारे में क्या लगा होगा, यह जानने की उत्सुकता से उनके चेहरे की ओर निहारता हूँ। उनका चेहरा वैसा ही निर्विकार, पूर्ण शांत! शायद उन्हें इसकी पहले से ही कल्पना होगी कि मेरा ऐसा ही उत्तर आएगा।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के इन 50 वर्षों में अनेक लोग 'बड़े' हुए। उन्हें नानाजी ने बहुत नजदीक से देखा है। अपने मन में हुंकार करते हुए "अरे चलो, पुनः प्रज्वलित करें अपने जीवन की मशाल" का नारा अपनी ही मस्ती में गुनगुनानेवाले ये लोग! हमारी इस भीड़ में नए सिरे से जीवन की मशाल जलाने की बात तो छोड़ो, किसी ने छोटा सा दीप या मोमबत्ती तक भी जलाने का साहस नहीं दिखाया। हमें तो सिगरेट छोड़कर और भी कोई चीज जीवन में जलाने योग्य है, इसका विचार तक नहीं आता।

किंतु नानाजी को इस पर कोई गुस्सा नहीं, दुःख जरूर है। शायद उनके मन में इस बात का भी कष्ट है कि अधिक समय तक राजनीति में व्यस्त रहने के कारण सही समय पर राजनीति छोड़कर नई पीढ़ी के सम्मुख कोई चुनौती प्रस्तुत नहीं कर सके। कोई साथ दे या न दे, अपने मन में एक बार यह निश्चय करने पर कि "काम रुकेगा नहीं," ये आगे बढ़ते ही जाएंगे।

नानाजी अब शांत बैठे हैं, पर उनका विचार-चक्र अभी भी तेजी से घूम रहा होगा। इस काम में किन-किन लोगों को समायोजित किया जा सकता है, यह सोचते हुए वे बेचैन मन से देश भर में घूमते फिरते रहेंगे। दीपावली पर मेरा लेख आने के पूर्व ही चित्रकूट में ग्रामीण विश्वविद्यालय जैसी संस्था स्थापित कर नानाजी स्वस्थ हो जाएंगे। आचार्य अत्रे के शब्दों में कहना हो तो "यह सह्याद्री की काली चादर के ऊपर की स्वर्ण-रेखा है।"

"प्रकाश के ये गीत हैं, वे भी अमावस्या के घने अंधकार में"—'आनंद यात्री' मैं 'आनंद यात्री' के रूप में, मस्ती में, झूमते हुए किंतु तृप्ति का अनुभव करनेवाले ये दोनों महानुभाव—एक लिमये, एक नानाजी।

अब मैं सामने देख रहा हूँ, स्वयं: में खोए-खोए से नानाजी। मेरी आज की 'खोज यात्रा' में भी क्या मैं नानाजी को समझ पा सका हूँ, लेकिन नानाजी एवं मधुजी जैसे लोग समझने या न समझने जैसे व्यक्ति थोड़े ही हैं। टी.एस. इलियट के शब्दों में—

"We shall not cease from exploration
and the end of all our exploration
will be to arrive where we started
and know the place, for the first time."



बुजुर्गों ! सिंहासन खाली करो

आपके वक्तव्य* के बाद लोगों के मन में इस विचार ने घर कर लिया है कि सर्वश्री मोराजी देसाई, चौ. चरणसिंह और बाबू जगजीवन राम को अपने पदों का त्याग कर देना चाहिए और युवा पीढ़ी को आगे आने का मौका देना चाहिए, तभी जनता पार्टी का गिरता हुआ मनोबल रुक सकता है।

जिस समय मैंने यह वक्तव्य दिया था, मेरे मन में किसी खास नेता का खयाल नहीं था, लेकिन मैं यह बता देना चाहता हूँ कि संसद् और विधानमंडलों में बैठनेवाले कुछ हजार लोग ही देश नहीं हैं। देश सहस्रों नौजवानों का है, उनकी आशाएं और आकांक्षाएं आज अपूर्ण हैं। हमने जवाहरलाल नेहरू के समय से नौजवानों के साथ खिलवाड़ किया है। हमने उनकी शक्ति का दुरुपयोग किया है और राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के नाम पर उनका शोषण किया है।

आज देश के अधिकांश विश्वविद्यालय बंद हैं, वह भी परीक्षाओं के वक्त। छात्र कुंठा से ग्रस्त हैं। किसी को उनकी परवाह नहीं, नेता उनके बारे में कभी चिंता नहीं करते। अगर उन्होंने अपने खाली हाथों से तानाशाही का मुकाबला न किया होता, तो जनता क्रांति कभी कामयाब नहीं हो सकती थी।

जयप्रकाश नारायण ने युवा शक्ति को संगठित करके संसदीय प्रणाली और जनतंत्रीय शासन व्यवस्था को शक्तिमत्ता प्रदान की, लेकिन आज वे दुःखी और हताश हैं, हमने उन्हें भुला दिया है, जनता नेताओं ने उन्हें उपेक्षित कर दिया है।

हम आपसे सहमत हैं कि तरुण भारत की आकांक्षाओं को कुचल दिया गया है। हमें खुशी है कि किसी नेता ने तो उनकी आकांक्षाओं को समझा और आवाज उठाई।

जी हां, किसी-न-किसी को यह काम करना था, मेरा संकल्प है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ संभव प्रयास करूंगा।

आपके इस चुंधिया देनेवाले प्रस्ताव के बारे में जयप्रकाश नारायण के क्या विचार हैं?

जयप्रकाश नारायण मुझसे पूरी तरह सहमत हैं और उनका आशीर्वाद मुझे प्राप्त है। उन्होंने

हिंदी साप्ताहिक करंट, अप्रैल 1978। अयूब सैयद द्वारा दूरभाष साक्षात्कार

** मा. नानाजी देशमुख ने 20-04-78 को पत्रकार सम्मेलन में एक वक्तव्य जारी किया था जो अनुलग्नक में दिया गया है। उस समय नानाजी जनता पार्टी के महामंत्री और लोकसभा सदस्य थे।*

तार भेजकर मुझे प्रोत्साहित किया है और आगे बढ़ने के लिए आमंत्रित किया है। मैं अपने रास्ते से एक इंच भी इधर-उधर होनेवाला नहीं हूँ, मेरा रास्ता बिलकुल साफ है।

क्या जनता पार्टी इस नेतृत्व में आपके साथ है? लोगों का विचार है कि आप अकेले पड़ जाएंगे यहां तक कि जनसंघ के सदस्य भी उस संकल्प में सहायक बनने में हिचकिचाएंगे।

मुझे इसकी चिंता नहीं है, मुझे यह आशंका भी नहीं है कि मैं अकेला रह जाऊंगा, मैंने सही प्रयोजन का सही वक्त पर चुनाव किया है। जनता पार्टी एक गहन संकट से गुजर रही है। संकट का मुकाबला यहां-वहां चिपियां लगाकर या मीठी-मीठी बातें करके नहीं किया जा सकता, कुछ युगांतरकारी कदम उठाने ही पड़ेंगे। गंभीर शल्य क्रिया की सख्त जरूरत है, लेकिन मैं आपको इतना बता देना चाहता हूँ कि जब मैंने ये सुझाव प्रस्तुत किए थे, तो ये मेरे निजी और व्यक्तिगत सुझाव ही थे, इन्हें प्रस्तुत करने से कोई राय-मशविरा नहीं किया था, क्योंकि मुझे पूरा यकीन था कि आज नहीं, तो कल, मेरी पार्टी के सदस्य मेरे विचारों को मानने को बाध्य हो जाएंगे।

आप जल्दी ही देखेंगे कि मेरे विचार प्रभावशाली सिद्ध हो रहे हैं और जनता पार्टी के सामान्य सदस्य उन्हें अपने सर्वोच्च ध्येय के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। प्रस्तावों और लफ्फाजी में मेरा विश्वास नहीं है, संपूर्ण विकास के साथ संपूर्ण क्रांति में मेरा विश्वास अडिग है। मैं अपनी पार्टी और देश को टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरते नहीं देख सकता। पार्टी के बीच बढ़ते अंतर्विरोधों, आपसी दुश्मनी और कलह से मुझे गहरा दुःख पहुंचा है। इस दर्दनाक स्थिति से उबरने के लिए मस्तिष्क में केवल एक ही बात आती है—युवक वर्ग को बागडोर संभालने दो। यह युवकों का राष्ट्र है, यही उनकी धरती है, यह उनकी ही राजनीति और उनका दौर है। उन्हीं लोगों ने कुर्बानी की है, ये वही लोग हैं, जिन्होंने लाटियां खायी थीं और हजारों की संख्या में जेल गए थे। हम उनके बढ़ते कदमों को रोक नहीं सकते। यदि हम उन्हें राकेंगे जैसा कि हम कर रहे हैं, तो हमारा सफाया निश्चित है।

जैसे ही आपका प्रस्ताव सार्वजनिक रूप से घोषित हुआ, हमने तुरंत संवाददाताओं को लोगों के विचार जानने के लिए फैक्टरियों, बस्तियों, युवा लोगों और मजदूरों के बीच भेजा। सभी लोगों ने सर्वसम्मति से यही भाव प्रकट किया कि आपका प्रस्ताव राजनैतिक दूरदर्शिता का एक साहसिक प्रमाण है और यह आवश्यकता जाहिर की कि राष्ट्र और जनता पार्टी को बचाने तथा सारे देश में व्याप्त राजनीतिक असंतोष की लहर को लाने के लिए इस प्रस्ताव को भारी जनमत समर्थन मिलना चाहिए।

हां, युवा समुदाय को इस मौके पर आगे आना ही होगा, उन्हें दावे के साथ लाखों की संख्या में अपने नेताओं को सूचित करते हुए अधिक देरी नहीं करनी चाहिए। मैं इस राष्ट्र के युवा समुदाय के साथ हूँ, मेरी कोई राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं है। मेरी सबसे बड़ी इच्छा आर्थिक पक्ष विकसित करते हुए प्रजातंत्र को बचाने और सुदृढ़ करने की है। साठ वर्ष से अधिक आयुवाले

विराट् पुरुष

केवल पीछे ही देख सकते हैं, आगे नहीं। राष्ट्र अब पीछे नहीं देख सकता, विश्व में किसी भी युवा ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा, उनकी इच्छाएं और आकांक्षाएं मेरी हैं। मैं यह प्रण लेता हूं कि मेरे जीवन का एक मात्र ध्येय युवा समुदाय और युवा भारत के लिए है।

आपने राष्ट्र में एक राजनीतिक बवंडर मचा दिया है।

वास्तव में यही राष्ट्र की अपेक्षा है। जे.पी. भी यही चाहते हैं।

आपके जनसंघी दोस्तों की क्या प्रतिक्रिया रही?

मैंने आपको बताया है कि मैं दूसरों की प्रतिक्रिया की परवाह नहीं करता। मेरा प्रस्ताव जे.पी. के आशीर्वाद के तहत केवल मेरा है।

लेकिन आपकी पार्टी के बहुत से लोगों ने विरोधी प्रतिक्रिया प्रकट की है, उनके अनुसार आपका प्रस्ताव किन्हीं विशेष लोगों को अपना शिकार बनाता है

वे जैसी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं, उन्हें करने दें। मैं फिर दोहराता हूं कि मैं बुजुर्गों की इज्जत करता हूं, लेकिन युवा समुदाय को उपेक्षित नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि मेरी पार्टी के बहुत से वरिष्ठ नेता परेशान और दुःखी हैं, लेकिन मैं उनकी कुछ मदद नहीं कर सकता। लेकिन मैं आपको बता देना चाहूंगा कि बहुत जल्दी वे लोग समझ जाएंगे कि मैं ठीक था, बहुत जल्दी वे लोग मेरे इस प्रस्ताव की सराहना करेंगे।

मैं राष्ट्र की मनोदशा पहचान रहा हूं। कुछ ही दिनों में आप देखेंगे कि सारे राष्ट्र में मेरे इस प्रस्ताव का समर्थन करती हुई एक लहर दौड़ जाएगी।

□

राष्ट्रीय एकता

सत्ताभिमुखी राजनीति त्यागनी होगी

भू.पू. जनसंघ के अभूतपूर्व कार्यकर्ता नानाजी देशमुख आरंभ से ही चर्चा के विषय रहे हैं। जे.पी. का आंदोलन शुरू होने से पहले उन्हें जनसंघ के शीर्षस्थ संगठनकर्ता के रूप में जाना-पहचाना गया—खासकर उत्तर प्रदेश में। जहां उनके कुछ विरोधी कांग्रेसियों ने उन्हें नाना फड़नवीस की संज्ञा दे डाली थी। फिर जे.पी. आंदोलन में और उसके बाद आपातकाल-विरोधी भूमिगत आंदोलन में उनकी भूमिका प्रमुख रही। सन् 1977 के आम चुनाव के बाद नई सरकार बनने पर, उन्हें वरिष्ठ मंत्री पद दिया गया, लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस अस्वीकृति से वह फिर चर्चा के विषय बने और कुछ लोगों ने यह कहना शुरू किया कि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को सारे देश में और जनसंघ को जनता पार्टी के भीतर बढ़ाने-जमाने का काम करने के लिए ही मंत्रिमंडल से बाहर रहे हैं। जनता पार्टी के एक महासचिव के रूप में उनके कार्यकाल के विषय में भी कुछ अटकलें लगाई जाती रहीं। कुछ लोगों ने यह सिद्ध करना चाहा कि वे जनसंघ के एक विशिष्ट गुट के नेता हैं और यह गुट पहले श्री जगजीवन राम के निकट रह चुकने के बाद शीघ्र ही पूरी तरह श्री चरणसिंह के साथ हो लिया है। इस सिलसिले में श्री अटल बिहारी वाजपेयी को जनसंघ के दूसरे प्रगतिशील गुट का नेता ठहराते हुए कुछ प्रेक्षकों ने दोनों में मनमुटाव की बात भी कही और सहसा अब नानाजी देशमुख इसलिए चर्चा के विषय बन गए हैं कि उन्होंने एक प्रकार से दलगत राजनीति से संन्यास की घोषणा कर दी है। इस संबंध में उनके संक्षिप्त और स्पष्ट वक्तव्य को लेकर तरह-तरह की चर्चाएं सुनने को मिलती रही हैं।

हमने इस संबंध में बातचीत करने के लिए नानाजी से समय मांगा। हमें तब बहुत ही आश्चर्य हुआ जब हरियाणा-संकट की पराकाष्ठा के दौर में हमें शाम 6.30 बजे बातचीत के लिए दीनदयाल शोध संस्थान में आमंत्रित किया गया। नानाजी संसद् सदस्य हो जाने के बावजूद यहीं एक कमरे में पहले की तरह रह रहे हैं। बातचीत आरंभ करने से पहले हमने यह जानना चाहा कि आज जबकि हरियाणा के मामले पर और चौधरी साहब के इस्तीफे पर मंत्रणाएं चल रही हैं, तब आपको फुरसत कैसे मिल गई। उन्होंने कहा कि मैं सवेरे चौधरी साहब से मिल आया था और मोरारजी भाई से मैंने रात 8 बजे का समय तय कर रखा है, इसलिए घंटा भर मैं निश्चित होकर आपसे बात कर सकता

विराट् पुरुष

हूँ, लेकिन तभी फोन बजा और प्रधानमंत्री के यहां से उन्हें बुलावा आ गया। नानाजी भले ही राजनीति से अलग होना चाहें, राजनीति इतनी आसानी से उनसे अलग होनेवाली नहीं।

दो दिन बाद नानाजी इस भेंटवार्ता के लिए स्वयं ही हमारे कार्यालय में आ गए। उनकी यह सादगी उतनी ही प्रभावशाली थी, जितनी कि उनका सीधी और साफ बात करने का तरीका। नानाजी हिंदी किंचित मराठी लहजे से बोलते हैं और कहीं-कहीं उनकी भाषा में भी मराठी का मुहावरा झलक जाता है। लगभग सवा घंटे तक उनसे जो बातचीत हुई, यहां उसका सार प्रस्तुत है—

नानाजी, आपने जो वक्तव्य दिया है, उसकी प्रतिक्रिया में कई तरह की बातें सुनने में आ रही हैं। कुछ लोगों का, जिनमें पत्रकार भी शामिल हैं, यह कहना है कि इसमें जनता पार्टी की 'कामराज योजना' निहित है। गोया इसका उद्देश्य संगठनात्मक और रचनात्मक कार्यों की दुहाई देकर कुछ लोगों को सत्ता से हटाना और कुछ को सत्ता में आगे बढ़ाना है। उधर श्री राजनारायण जैसे कुछ लोगों को 60 साल से अधिक उम्र के नेताओं को राजनीति से संन्यास लेने के लिए बाध्य करने की बात ही बेतुकी मालूम हो रही है। इस सारी प्रतिक्रिया पर आपकी प्रतिक्रिया क्या है?

हरेक आदमी का जो सोचने का ढंग होता है, उसी ढंग से वह हर बात को परखता है और उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। कामराज योजना से जिसकी तुलना की जाए—ऐसा मैंने कोई प्रस्ताव किया हो, मुझे तो नहीं लगता। क्या मैंने किन्हीं को हटाने की अथवा मंत्रिमंडलों में परिवर्तन करने की कोई बात कही है? मैंने तो स्वयं के हटने की बात कही है कि मुझे अब प्रशासन में अथवा पार्टी में किसी भी पद पर कार्य करने की इच्छा नहीं है और वह 60 साल वाली बात भी स्वयं के प्रसंग में कही गई है। जो भी प्रतिक्रिया व्यक्त करे, उसे कम से कम मेरा वक्तव्य तो पढ़ लेना चाहिए। वहां मैंने स्पष्ट रीति से कहा है कि 60 साल का हो जाने के बाद मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि जीवन के जो 15 एक साल बचे हैं, उन्हें केवल रचनात्मक कार्यों में लगाऊँ। ऐसा कहने में कहीं कोई राजनीति नहीं है। ऐसा कहने से पूर्व अपने किसी भी राजनीतिक मित्र से मैंने सलाह तक नहीं की। जो निर्णय किया रचनात्मक कार्यों में लगे हुए बंधुओं से मंत्रणा करने के बाद किया।

मगर क्यों? और इसी समय क्यों?

इसलिए कि मैं चिंतित हूँ कि सत्ता ही सर्वोपरि हुई जाती है और समाज उपेक्षित है। मैं चिंतित हूँ कि देश की युवा शक्ति भ्रमित, दिशाहीन होकर विध्वंसात्मक आंदोलनों में संलग्न हो रही है। यह परीक्षा काल है, लेकिन देश के अधिकांश विश्वविद्यालय बंद पड़े हैं। पिछले वर्ष सत्ता परिवर्तन के समय जो अदम्य उत्साह था, जिस आत्मविश्वास का उदय हुआ था युवा पीढ़ी में, उसके आज दर्शन भी दुर्लभ हैं। पूरा एक वर्ष बीत चुका है, लेकिन हम उस उत्साह और विश्वास को विधायक कार्यों में लगा नहीं पाए हैं। इस उपेक्षा से काम चलेगा नहीं। देर करने से बात और बिगड़ेगी, इसीलिए मैंने फैसला किया कि सत्ता की राजनीति को छोड़कर रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र में जाऊँ,

और लोग भी ऐसा करें तो स्वागत है। वयोवृद्ध और अनुभवी हों तो और भी अच्छा, लेकिन वृद्ध ही हों, 60 साल से ज्यादा के जितने भी हों, सब आ जाएं, ऐसा न मैंने कहा, न आवश्यक है।

क्या आप ऐसा अनुभव नहीं करते कि सारी भारतीय राजनीति को और राजनीति के माध्यम से समूचे समाज को कुरसी के लिए लड़ते रहने की वह बीमारी नहीं लग गई है, जिसे किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में कांग्रेसी राजराज कहा जा सकता है? क्या जनता पार्टी, प्रधानमंत्री के मनोनयन के दिन से ही इस रोग से ग्रस्त नहीं हो गई? क्या आपको यह विचित्र नहीं लगता कि इतने व्यापक युवा आंदोलन के बाद जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई, लेकिन नेतृत्व उसी नेहरू-युगीन पीढ़ी के हाथ में रहा और सारी राजनीति उनकी आपसी लड़ाई में खो गई? क्या आप इस क्रम का कहीं अंत देखते हैं?

वास्तविकता से इनकार नहीं करना चाहिए, लेकिन परिवर्तन की कोई संभावना न देखना और इस प्रकार स्वयं अश्रद्धालु बनना और दूसरे को बनाना यह भी अनुचित है। गत तीस वर्ष की राजनीति एक दल विशेष यानी कांग्रेस की राजनीति रही। सन् 1967 में संयुक्त विधायक दलों की राजनीति आई थोड़े समय के लिए और उसमें भी सत्ता-प्रश्न प्रमुख रहा। सत्ता की राजनीति ही हमारे यहां सर्वोपरि रही है। यह किसी से छिपा नहीं। पद-परिवर्तन हो जाने मात्र से, इसकी जगह उसके बैठ जाने मात्र से समूचा वातावरण और मानस बदल नहीं जाता, अतः चुनाव के बाद परिवर्तन होते ही सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा पूर्णतः विलीन हुई, ऐसा कोई कहना चाहेगा तो वास्तविकता से परे होगा। सत्ताकांक्षा आज भी राजनीति में कार्यरत है, किंतु वह हमारी एकता में बाधक बनेगी, इतनी प्रबल नहीं है। हमारा प्रयास है कि हम इस सत्ता की राजनीति से ऊपर उठें और जन-आकांक्षाओं की पूर्ति को अपना लक्ष्य बनाएं। जिस कांग्रेसी रोग का आपने जिक्र किया, वह समाप्त होने की दिशा में है। राजनीति का एक नया युग निश्चित रूप से प्रारंभ होने जा रहा है। सत्ता में जो अधिकांश नवयुवक मंत्रिगण हैं, उनका और नेहरूजी के युग के जो वरिष्ठ लोग हैं, उनका समागम निश्चय ही नई दिशा देगा।

समागम की बात तो ठीक है, लेकिन जिस नई दिशा की बात आप कहते हैं, वह इन दोनों के समन्वय से पैदा होगी कि टकराहट से?

मैं तो चाहूंगा कि समन्वय से हो और मुझे लगता भी है कि समन्वय से होगा। नहीं होगा तो फिर देखेंगे। जब तक संभावना है तब तक दूसरी चीज सोचना संभावना को कमजोर करेगा और वह देश की दृष्टि से अच्छा नहीं है।

आपने पहले कहा कि भारतीय राजनीति एक खास ढर्रे पर चलती आई थी। बीच में संविद की जो राजनीति आई, उससे भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सन् 1971 के चुनाव में यही संविद राजनीति महा-गठबंधन के रूप में मैदान में उतरी और वहां उसने मुंह की खाई। इसके बाद गुजरात में जो आंदोलन हुआ और बिहार में जो मुहिम छिड़ी वह कांग्रेसी और कांग्रेस-विरोधी दोनों ही तरह की

विराट् पुरुष

परंपरागत राजनीति से अछूती थी। इससे आगे कुछ पूछने से पहले मैं यह जानना चाहूंगा कि कहीं आपको इस स्थापना से ही इनकार तो नहीं है कि गुजरात और बिहार में युवाशक्ति ने जो आंदोलन छेड़ा, वह चुनाव और सत्ता की राजनीति से परे था?

मैं स्वयं बिहार आंदोलन से पूर्णतः संबद्ध था और मैंने अनुभव किया कि गुजरात में जो युवा-शक्ति का उदय हुआ, उसी ने बिहार के युवकों को बल और आत्मविश्वास प्रदान किया। इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि ये दोनों ही आंदोलन सत्ता और चुनाव की राजनीति से बहुत ऊपर उठे हुए थे।

तो क्या यह विडंबना नहीं कि व्यावहारिक रूप में वही आंदोलन संविद और महागठबंधन की राजनीति की वापसी का वाहन बना। जो लोग 1971 के चुनाव में पिट चुके थे, वही आगामी चुनाव में विजय की उम्मीद लेकर इस आंदोलन में कूद पड़े।

बिहार आंदोलन और जनता पार्टी की स्थापना, ये दो अलग-अलग प्रक्रियाएं हैं और इनको मिलाकर देखने से भ्रामक नतीजे निकलते हैं। जिस समय यह आंदोलन शुरू हुआ, चुनाव का कहीं भी प्रश्न नहीं था। जैसा कि आपने स्वयं कहा, गुजरात और बिहार के आंदोलन गैर-राजनीतिक युवा-शक्ति के छेड़े हुए थे और सच पूछिए तो आमतौर से राजनीतिक दलों को इनसे परहेज ही था। यह सही है कि व्यक्तिगत रूप से मुझ जैसे कुछ राजनीतिक दलों से संबद्ध व्यक्ति इसमें हिस्सा ले रहे थे, लेकिन राजनीतिक दलों को स्वयं इसके विषय में कोई उत्साह नहीं था। अगर उत्साह होता तो बिहार में विरोधी दलों के सभी विधायक तुरंत त्याग-पत्र देकर जे.पी. की इच्छा पूरी करते। यह तो जब 3, 4 और 5 अक्टूबर, 1975 को बिहार बंद सफल हुआ, तब कहीं राजनीतिक दलों ने यह अनुभव किया कि अगर इस आंदोलन का साथ नहीं देंगे तो पैरों तले से जमीन निकल जाएगी, लेकिन उस समय भी चुनाव के लिए एक होने का कोई सवाल नहीं था। मुख्य बात थी जे.पी. का व्यक्तित्व और देश की जनता का उनके लिए समर्थन।

जब 12 जून को इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला आया और इंदिराजी ने त्यागपत्र न देकर जनसमर्थन का नाटक रचा तब भी जो विरोध की लहर उठी, वह स्वयंभू थी। राजनीतिक दलों को अथवा चुनाव की राजनीति को उसका कोई श्रेय नहीं था। इतना अवश्य है कि राजनीतिक दलों ने तब जे.पी. की प्रेरणा से यह अनुभव किया कि अगर हम एक नहीं होते तो इस देश में लोकतंत्र बच नहीं सकता। सवाल चुनाव जीतने का नहीं, लोकतंत्र को बचाने का था। चारों विरोधी दलों की कार्यसमितियों की, जे.पी. के आदेशानुसार जे.पी. की उपस्थिति में साथ-साथ बैठक हुई और वहां विचाराधीन प्रश्न लोकतंत्र बनाम तानाशाही का रहा, चुनाव का नहीं। तभी लोक संघर्ष समिति बनी और तभी जनता पार्टी की स्थापना के लिए सिद्धता-भूमि तैयार हुई। चुनाव की बात हमारे मन में थी नहीं, बल्कि हम लोगों की भावना तो यह थी कि इंदिराजी चुनाव कराएंगी ही नहीं। जेल में और बाहर बराबर यही मंत्रणा हुई कि तानाशाही से लड़ने के लिए कैसे एकजुट हों।

लेकिन क्या यह सही नहीं है कि जब चुनावों की घोषणा हो ही गई, तब एकता के रास्ते में कई कठिनाइयाँ आईं और सत्ता का खेल शुरू होने लगा? जो यह सुनने में आता है कि कुछ नेता लोग उस समय भी श्रीमती गांधी से समझौते की बात सोच रहे थे?

मैं तब जेल में था, इसलिए अप्रत्यक्ष जानकारी के आधार पर कुछ कह नहीं सकता। ऐसा सुनता जरूर हूँ कि इक्का-दुक्का लोगों के मन में कुछ हिचक थी, शंकाएं थीं, लेकिन इंदिराजी से समझौतेवाली बात मुझे जंचती नहीं। जो लोग एक दल नहीं बनाना चाहते थे, उनके संबंध इंदिराजी से अच्छे थे—ऐसा मुझे तो नहीं लगता। वे इंदिराजी के अनुकूल थे नहीं। अब भी नहीं हैं।

कुछ महीने पहले बिहार के आंदोलन पर चोरी-छिपे बनाई गई एक फिल्म दूरदर्शन पर दिखाई गई थी। उस फिल्म के माहौल में और आज के माहौल में इतना जबर्दस्त अंतर है कि विश्वास ही नहीं हो पाता कि सत्ता-परिवर्तन में जे.पी. की अथवा युवाशक्ति की कोई भूमिका रही थी। जितनी अधिक निराशा गांधीजी के आंदोलन के बाद बनी स्वाधीन भारत की प्रशासन व्यवस्था से हुई थी, उससे कहीं अधिक निराशा जे.पी. के आंदोलन के बाद बनी इस शासन व्यवस्था से हो रही है। आदर्श केवल आंदोलन के लिए होते हैं, व्यवहार के लिए नहीं—यह ढोंग कब तक चलेगा? वे लोक समितियाँ क्या हुईं, जिनकी स्थापना की बड़ी चर्चा थी? और इस विडंबना को क्या कहें कि एक वरिष्ठ मंत्री के अनुसार ऐसी समितियाँ प्रशासन में बाधा ही डाल सकती हैं, भ्रष्टाचार ही बढ़ा सकती हैं।

यह दुर्भाग्य है कि सत्ता को ही सबकुछ मानने की भावना पिछले 30 वर्षों में देश में उत्तरोत्तर दृढ़ होती गई है। जो कुछ होगा, सत्ता पाने से होगा, जो कुछ करेगी, सरकार करेगी, ऐसी मान्यता सर्वत्र व्याप्त हो गई है। सामाजिक क्षेत्र में भी कुछ व्यक्तित्व खड़े हुए हैं। उन्होंने भी कुछ कार्य शुरू किए हैं, लेकिन वे सब या तो बंद पड़े हैं या चल रहे हैं तो कुछ मंद पड़े हैं। जब तक राजनीति में कार्य करनेवालों में यह धारणा नहीं बनती कि सत्ता ही सबकुछ नहीं है, राष्ट्र-निर्माण और जन-अपेक्षाएँ पूर्ण करने का तमाम काम सत्ता के बाहर के क्षेत्र में पड़ा हुआ है, तब तक कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

आज तो स्थिति यह है कि संसद में कोई 750 स्थान हैं और 4000 से कुछ ऊपर स्थान विधान सभाओं में हैं—कुल मिलाकर कोई 5,000 सीटें। लाखों लोग हैं, जिनमें समाज के लिए कुछ करने की उमंग है। परिवर्तन की इच्छा है, लेकिन वह तो इन्हीं पांच हजार सीटों के, इसी सीमित सत्ता के इर्द-गिर्द घूम रही है। जब पांच हजार जगहों के लिए लाखों लड़ रहे हों, तब आदर्श के लिए कोई गुंजाइश रह नहीं जाती। आदर्श केवल सत्ता-प्राप्ति के निमित्त रचा गया एक ढोंग ही हो सकता है। इसीलिए मैं सत्ता की राजनीति से हट रहा हूँ। मेरा हेतु किसी को हटाना या बैठाना नहीं। यह होगा तो मुझ जैसा कोई नीच नहीं, सच तो यह है कि हम जन-विश्वास खो बैठे हैं।

आपने समाज की चर्चा की, लेकिन समाज तो हमारी सारी व्यवस्था में गौण हो चला है। हम यह मानते हैं कि स्तर पर आधुनिकता आयात कर लेने से और आदर्श विधान संविधान बना लेने से

विराट् पुरुष

हमारा समाज भी आधुनिक स्तर पर हो रहा है, फाइलों में खानापूर्ति के लिए चल रहा है।

निश्चय ही यह दुःखद स्थिति है और जब तक यह स्थिति है, तब तक लोकतंत्र टिकेगा नहीं। 11-12 सौ साल की गुलामी ने सरकार को हमारे लिए माई-बाप बना दिया है। सामाजिक पुनर्रचना तक का काम हम सरकार पर छोड़ना चाहते हैं, लेकिन सामाजिक पुनर्रचना कानून बना देने से नहीं होती। आप शारदा कानून को ही लें। क्या मात्र इसके बनने से बाल-विवाह प्रथा पूरी तरह समाप्त हो गई है? यह भी विचारणीय है कि सरकार और समाज में कहीं कोई सामंजस्य, सहयोग और आदान-प्रदान नहीं है। पांच योजनाएं समाप्त हुईं, लेकिन जन सहयोग का सिलसिला कहीं भी शुरू नहीं हो पाया। सामुदायिक विकास किया गया, लेकिन समुदाय की भावना कहीं विकसित नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि गैर-सरकारी स्तर पर, गैर-राजनीतिक स्तर पर विराट् कार्य शुरू किया जाए और आदर्शवादिता तथा क्रांतिकारिता से ओत-प्रोत युवा भारत को उसमें लगाया जाए। यह स्पष्ट रीति से हमें समझ लेना होगा कि क्रांति युवा वर्ग से ही आएगी।

इतिहास बताता है कि क्रांति के अगुआ सदा तरुण लोग रहे हैं, वृद्धजन इस पंक्ति में कभी दिखाई नहीं पड़े। हमें ऐसी लोक समितियां बनानी पड़ेंगी, जो समाज की पुनर्रचना में जुट सकें और सरकार के समक्ष दलगत राजनीति के आग्रह से मुक्त रहते हुए समाज का प्रतिनिधित्व कर सकें। जब जे.पी. इस तरह की समितियों का प्रस्ताव करते हैं, तब निश्चय ही इसलिए नहीं कि वे राजनीतिक सिफारिशें करने और राजनीतिक दबाव डालनेवाली भ्रष्ट संस्थाएं बनें। युवा वर्ग के हाथ में ऐसी समितियां दीजिए, उनके समक्ष कोई सुनिश्चित कार्यक्रम रखिए तो निश्चय ही वे वैचारिक और सामाजिक क्रांति की वाहक बनेंगी और राजनीतिक वातावरण पर भी जबरदस्त असर डालेगी।

आपकी बातें सुनने में बहुत अच्छी लगती हैं, लेकिन क्या व्यवहार में ऐसा कुछ हो सकेगा? विवेकानंद से लेकर गांधी तक और गांधी से लेकर जे.पी. तक कई महानुभाव इस तरह की बातें कह चुके हैं और आंदोलन भी छेड़ चुके हैं। इसके बावजूद सत्ता की राजनीति भी जहां की तहां है और समाज भी वहीं का वहीं है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो बार-बार निराश होना ही देश और समाज के भाग्य में बंधा हुआ है।

पर केवल निराश होने से तो काम चलनेवाला नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझसे कहीं बड़े व्यक्तियों ने, विशेषकर महात्मा गांधी ने, इस देश में सामाजिक जागृति लाने का प्रयास किया। अगर मैं यह समझूं कि जो काम वे नहीं कर सके, मैं कर सकता हूं, तो यह मेरी धृष्टता मात्र होगी। मैं कुछ करूंगा या मेरे करने से कुछ होगा, ऐसा तो कहता भी नहीं, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि युवा वर्ग करेगा और जल्द ही करेगा। इसमें मैं सहायक हो सकूँ, मात्र यही मेरा अभीष्ट है। देखिए, आंध्र में तूफान के बाद युवा वर्ग ने जो राहत कार्य करना चाहा, उसके आयोजन और संगठन से मैं संबद्ध हुआ।

कृष्णा जिला के देवी ताल्लुक का एक क्षेत्र, इस वर्ग ने अपने हाथ में लिया, जो पूरी तरह नष्ट

साक्षात् नानाजी

हो गया था। 9 फरवरी को यहां काम शुरू किया गया और 14 मई तक 120 मकान बनकर तैयार हो गए। ऐसा ही काम 70-80 गांवों में किया जाना है। जितनी तेजी से काम यहां पूरा हुआ है, उतना और कहीं नहीं। यहां निर्माण कार्य शुरू करने से पहले युवा वर्ग ने मुरदे फूंकने का और घायलों की दवा-दारु करने का काम किया। मैं आपको बताऊं कि एक होनहार एम.बी.बी.एस. डॉक्टर, जो यहां मात्र कुछ दिनों के लिए गया था, वहीं बस गया है। वह एम.डी. का विद्यार्थी था, लेकिन उसे ऊंची डिग्री पाने की भी कोई चिंता नहीं है। वह कहता है कि मैं यहीं रहूंगा। अपनी योजना के अंतर्गत जो दवाखाना हम यहां बनवाएंगे, उसी में वह काम करेगा। अन्य लोग कहते हैं कि भारतीय डॉक्टर गांव में नहीं जाना चाहते। आप देश-सेवा का कार्यक्रम निश्चित कीजिए, वे जरूर जाएंगे। इस इलाके में हम हर चीज की अधुनातन व्यवस्था कर के एक आदर्श ग्रामीण क्षेत्र बनाने में जुटे हुए हैं और सारा काम गैर-सरकारी स्तर पर युवा वर्ग के श्रम और प्रतिभा से तथा स्थानिक लोगों के सहयोग से संपन्न हो रहा है। हम गांव के लोगों को गहरे समुद्र से मछलियां पकड़ने के लिए आधुनिकतम नौकाएं लाकर देंगे। नॉर्वे में जैसे जाल इस्तेमाल किए जाते हैं, वे ला कर देंगे और यह कोई खैराती काम नहीं है। गांववाले आगे अपनी मेहनत की कमाई से इस लागत को लौटाएंगे, ताकि वह पैसा अन्य ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्य के लिए लगाया जा सके।

हमने उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले के विकास के लिए भी विस्तृत योजना तैयार की है, यह काम भी युवा पीढ़ी ने किया है। इसके सिलसिले में इतना ब्योरेवार सर्वेक्षण किया गया—किस घर में कितने लोग रहते हैं, उनकी योग्यताएं और आवश्यकताएं किस प्रकार हैं आदि—आदि की योजना आयोगवालों ने देखा तो दंग रह गए। यह सारा काम बिना किसी सरकारी सहायता के हुआ है और इसे करनेवाले युवकों और युवतियों ने कोई पैसा नहीं लिया है। जब ऐसा युवा वर्ग मौजूद हो, तब मैं क्यों निराश होकर कहूं कि कुछ नहीं होगा।

लेकिन आप यह स्वीकार करेंगे कि हमारे जन-जीवन में आदर्श और व्यवहार के बीच बहुत बड़ी खाई है और वह कुछ छुटपुट आदर्शवादी कार्यों से पट नहीं सकती।

आपकी बात अपनी जगह पर बराबर ठीक है, लेकिन मैं आग्रह करना चाहूंगा कि युवा वर्ग में पर्याप्त आदर्शवादिता और उत्साह है। अपेक्षा इस बात की है कि हम उस आदर्शवादिता को प्रभावी होने का अवसर दें और उसके सामने ऐसे लक्ष्य रखें, जिनमें शीघ्र सफलता संभव हो। जब तक आदर्श की लंबी-चौड़ी बातें केवल ढोंग के लिए कही जाती रहेंगी, जब तक ऐसा बताया जाता रहेगा कि या तो एक दिन कहीं सुदूर भविष्य में सबकुछ आदर्शमय हो जाएगा और नहीं तो कोई भी आदर्श कार्य हो नहीं सकेगा, तब तक युवा वर्ग की आदर्शवादिता अश्रद्धा में परिवर्तित होने के लिए अभिशप्त रहेगी। आप उस आदर्शवादिता के सामने कोई छोटा, मगर ठोस काम ऐसा रखिए, जो पूरा हो सके। आप आदर्शवादिता को सफलता से जोड़िए, तभी उत्साह बना रह पाएगा अन्यथा लोग आदर्शवादिता को सिरफिरेपन का पर्याय ही समझते रहेंगे।

विराट पुरुष

आप यह सारा काम गैर-राजनीतिक स्तर पर करना चाहते हैं। निश्चय ही यह दृष्टिकोण स्तुत्य है, लेकिन राजनीति भी अपनी जगह है और अपने ढंग से वह काम करती रहेगी। सत्ता की राजनीति में क्या हो रहा है क्या नहीं, इससे आप भले ही विरक्त रहना चाहें, सत्ता की राजनीति आपके गैर राजनीतिक कार्य-कलाप में विरक्त रहनेवाली नहीं है। वह आपका उपयोग करना चाहेगी और अगर आप उपयोग नहीं करने देंगे तो वह आपको समाप्त करने के लिए अपनी सत्ता का अस्त्र चलाएगी। एक ओर सत्ता की राजनीति की आंधी है और दूसरी ओर आदर्शवादिता की नन्ही सी लौ! हमें यह समझने में भी कठिनाई होती है कि आदर्शवादिता और सत्ता का द्वैत क्यों? अगर युवा वर्ग की आदर्शवादिता ने बिहार और गुजरात में आंदोलन छेड़कर अंततः कांग्रेसी राज का पतन संभव किया तो अब यह शासन उसी कांग्रेसी दिमागवाले लोग करें? और युवा वर्ग की कुंठित आदर्शवादिता फिर बस जलाने में जुट जाए। आदर्श का राजनीति से, राजनीति का आदर्श से परहेज क्यों, आप युवा वर्ग की आदर्शवादिता को लेकर समाज-परिवर्तन की मुहिम छेड़ेंगे, यह तो बहुत अच्छा है, लेकिन जब आम चुनाव का अवसर आएगा तब क्या आप पर यह दबाव नहीं रहेगा कि यह आदर्शवादिता इस या उस राजनीतिक दल को सत्ता दिलवाए और फिर उसके पेशेवर राजनीतिज्ञ आदर्शवादिता से बदस्तूर बेखबर रहते हुए पांच साल तक शासन चलाएं।

आप जो कहते हैं, ठीक कहते हैं, मैं उसे झुठलाना नहीं चाहता। सत्ता की राजनीति अपनी जगह पर कायम है, वह प्रबल और प्रभावी है। उसका दबाव मुझ पर भी पड़ेगा। उसकी मुझसे कुछ अपेक्षाएं रहेंगी। इससे मुक्त होकर काम करना सरल नहीं है, लेकिन कठिनाई से जूझना तो होगा। अगर हमारी दृष्टि इस चुनाव से उस चुनाव तक की अवधि पर ही केंद्रित रही तो वह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य हमें नहीं मिल पाएगा, जिसका होना किसी भी आधारभूत परिवर्तन के लिए अनिवार्य है। चुनाव तक की बात सोचने पर तो सत्ता की राजनीति आदर्श की राजनीति पर हावी होती ही जाएगी। हमें आदर्श की राजनीति को प्रबल करना पड़ेगा। हमें नेतानिष्ठ की जगह आदर्शनिष्ठ, सत्तानिष्ठ की जगह समाजनिष्ठ, राजनीति चलानी होगी। मुझे विश्वास है कि उसके पावन प्रवाह को कोई रोक नहीं पाएगा। जिसे आप अभी आदर्शवादिता की लौ कहते हैं, जब वही सूर्य बनकर चमकेगी, तब सत्ता के अंधेरे प्रांगण भी ज्योति-स्पर्श पाएंगे। आदर्श और सत्ता में तब कोई अंतर नहीं रहेगा।

इसे आप मेरी आदर्शहीनता और अश्रद्धा का नमूना मान लें, लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि कुल मिलाकर यही समझा और माना जाएगा कि आप युवा आंदोलन के नाम पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का आंदोलन छेड़ना चाहते हैं और प्रकारांतर से आगामी चुनाव को दृष्टि में रखते हुए जनता पार्टी के एक घटक विशेष को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं। आप अपने आंदोलन को लाख गैर राजनीतिक कहें, लेकिन राजनीति से आपका जो संबंध रहा है, उसे देखते हुए इसे भी सत्ता की लड़ाई से जोड़ा जाएगा।

पहले तो मैं आपसे स्पष्ट रीति से यह कह दूं कि मैं नाना देशमुख कोई आंदोलन छेड़नेवाला हूं—ऐसा मैंने कभी नहीं कहा। जे.पी. जैसे तमाम यशस्वी और वरिष्ठ नेता पहले से मौजूद हैं

साक्षात् नानाजी

और फिर जिस तरह के आंदोलन की यहां चर्चा की जा रही है, वह तो निश्चय ही नेतानिष्ट नहीं हो सकता। आंदोलन युवा पीढ़ी का है। मैं उसमें निमित्त मात्र हो सकता हूं। रहा प्रश्न इस बात का कि मैं जनसंघ से या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबद्ध रहा हूं, तो इससे मुझे कोई इनकार नहीं है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मैंने छोड़ दिया हो, ऐसा भी दावा करना व्यर्थ होगा, लेकिन जिस युवा आंदोलन का मैं सहभागी बनना चाहता हूं, वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ही आंदोलन है ऐसा मानना भ्रांति होगी। संघ में युवतियां नहीं आतीं। इस आंदोलन में युवतियां भी शामिल हैं। संघ में एक धर्म विशेष के लोग ही आ सकते हैं, इस आंदोलन में सभी धर्मों के लोग हैं। संघ का एक विशिष्ट कार्य क्षेत्र है। यह आंदोलन समस्त सामाजिक पुनर्रचना और राष्ट्र निर्माण को अपना कार्य क्षेत्र मानता है। इस आंदोलन में सभी दलों का स्वागत है, उनका भी जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के घोषित विरोधी हैं। मुसलिम लीगवाले आए। कम्युनिस्ट आए। राष्ट्र निर्माण के मिशन में यदि इंदिराजी के भक्त युवा कांग्रेसवाले भी योग देना चाहें तो मैं उनका स्वागत करूंगा।

राष्ट्र निर्माण, सत्ता की दलगत राजनीति से बड़ी चीज है, यही सोचकर मैंने जीवन का शेष भाग रचनात्मक कार्यों में लगाने का फैसला किया है। अगर इसे भी दलगत राजनीति की एक चाल समझा जाए तो मेरा दुर्भाग्य है। मैंने जो किया है, निरहेतु और निस्स्वार्थ किया है। अगर घटक-विशेष को लाभ पहुंचाने की बात मेरे मन में होती तो निश्चय ही उस घटक के लोगों से मंत्रणा कर के यह कदम उठाता, लेकिन मैंने आपको बताया कि इस संबंध में मैंने राजनीतिक मित्रों से कोई सलाह नहीं की। और तो और अटलजी से भी नहीं, जिनसे मेरा सन् '44 से साथ है। राजनीति हर जगह अपने ही ढंग से अर्थ ढूंढती आई है। वह घोर जातिवादिता तक पहुंची है। वह बांटने में, अपने-पराए का लेबल लगाने में विश्वास करती है। निश्चय ही वह युवा आंदोलन पर भी लेबल लगाना चाहेगी, लेकिन वह लेबलों से परे होगा। हमें पुराने समाज और पुरानी राजनीति दोनों को बदलना है। पुरानी राजनीति को सफाई देता रहूं, इतना समय कहाँ?

□

लोकतांत्रिक प्रणाली आत्मस्तुति और परनिंदा त्याज्य

नानाजी देशमुख ने 8 अक्टूबर, 1978 को 60 साल की उम्र में राजनीति से संन्यास ले लिया। उस समय वे जनता पार्टी के वरिष्ठतम महासचिव थे। 13 वर्ष बीत चुके हैं। उनके पूर्णकालिक राजनीतिक व्यक्तित्व से उनकी पूर्णतः सामाजिक कार्यकर्ता की छवि अभी भी लोगों की दृष्टि में पूरी तरह परिवर्तित नहीं हुई है। हाल में प्रधानमंत्री चंद्रशेखर, जो कि जनता पार्टी के काल से ही उनके नजदीकी मित्र रहे हैं तथा भाजपा के विवादास्पद राज्यसभा सांसद जे. के. जैन के साथ उनका मेल-मिलाप विवादों के घेरे में रहा। नानाजी हालांकि यह दावा करते हैं कि उन्होंने सक्रिय राजनीति से सभी संबंध तोड़ दिए हैं, किंतु वे आरएसएस के साथ जुड़े हुए हैं और इस बात पर गर्व महसूस करते हैं कि आरएसएस ने ही उनको बनाया है।

उनके द्वारा स्थापित दीनदयाल शोध संस्थान कई पिछड़े इलाकों के विकास कार्यों में लगा हुआ है। उनमें दक्षिणी बिहार का सिंहभूम जिला, उड़ीसा का सुंदरगढ़ एवं उत्तर प्रदेश का गोंडा क्षेत्र, जो हाल में विश्व हिंदू परिषद् के अयोध्या आंदोलन की पृष्ठभूमि में सांप्रदायिक हिंसा का शिकार बना, सभी इलाके शामिल हैं।

उम्र के 75वें साल में नानाजी को मध्य प्रदेश की भाजपा सरकार ने प्रस्तावित चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय का कुलाधिपति नियुक्त किया है। इस विस्तृत साक्षात्कार के दौरान नानाजी सावधानीपूर्वक भाजपा व उसके नेतृत्व पर कोई भी टिप्पणी करने से कतराते रहे, लेकिन वामपंथियों और कांग्रेस-ई पर चुटकी लेने से खुद को रोक नहीं पाए, जबकि एक रात्रि भोज में उनके शामिल होने का विवाद, जिसमें खशोगी भी उपस्थित थे, उन्हें कुछ परेशान जरूर कर गया। नानाजी को प्रधानमंत्री चंद्रशेखर और डॉ. जे.के. जैन के साथ, जिन्होंने खशोगी को भोज का निमंत्रण दिया था, अपने नजदीकी संबंधों को स्वीकारने से कोई संकोच नहीं है।

आपको राजनीति छोड़े एक दशक से ऊपर हो चला है, लेकिन हाल में आप अखबारों में ऐसे मामलों के संदर्भ में छाए रहे, जिन्हें राजनीति से परे नहीं कहा जा सकता। आप इस पर टिप्पणी करना चाहेंगे?

द हिंदुस्तान टाइम्स, मार्च 10, 1991, विनोद शर्मा के साथ साक्षात्कार।

साक्षात् नानाजी

मैं प्रेस के पास नहीं गया। मेरी मित्रता सब प्रकार के लोगों के साथ है। जब मैं एक दल, जनसंघ या जनता पार्टी के साथ था, तब भी हर तरह के नेताओं के साथ मैंने संबंध बनाए रखे, जिनमें वामपंथी भी शामिल थे। अब आप देखिए, पूरा राजनीतिक वातावरण ऐसा बन गया है कि स्थायित्व को ही खतरे में डाल रहा है। किसी राजनीतिक दल के पास पूर्ण बहुमत नहीं है। त्रिशंकु संसद् है। ऐसे में मेरे संबंधों को देखकर लोगों को लगता है कि मैं राजनीति में लौट रहा हूँ। 13 साल पहले मैंने राजनीति को, लौटने के विचार से नहीं छोड़ा था। मैं दोहराता हूँ कि मैं कभी भी राजनीति में नहीं लौटूंगा, लेकिन साथ ही मैं किसी से अपने संबंध नहीं तोड़ूंगा, चाहे वे राजनीतिक लोग हों या और।

हथियारों के विवादास्पद सौदागर अदनान खशोगी के लिए दिए गए भोज में आपका शामिल होना जनसंघ एवं अब भाजपा में शामिल आपके साथियों को काफी उलझन में डाल गया। ऊपर से भाजपा के जयपुर में आयोजित पांचवें पूर्ण सत्र के मौके पर ही इस घटना का सुर्खियों में छाना। इस भोज में होनेवाली मुलाकात का आपको अंदाजा...

(बीच में ही बात काटते हुए) मुझे भी इससे बहुत उलझन हुई। डॉ. जे.के. जैन, जिन्होंने इस भोज का आयोजन किया था, उनसे मेरे बहुत नजदीकी संबंध रहे हैं। तब से जब वे यहां एक मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहे थे। कुछ समय तक वे दीनदयाल शोध संस्थान के सचिव भी रहे। जब उन्होंने मेनका गांधी की पत्रिका सूर्या खरीदी और राजनीति में उतर आए तो मैंने उनसे संस्थान छोड़ने का निवेदन किया। उन्होंने संस्थान छोड़ दिया। तब से वे संस्थान से जुड़े हुए नहीं हैं, लेकिन मेरे उनसे व्यक्तिगत संबंध तो बने हुए हैं।

उन्होंने फोन पर निमंत्रण दिया कि नानाजी, मैं आज शाम को भोज दे रहा हूँ, कृपया आप पधारें। उन्होंने बताया कि चंद्रशेखर को भी निमंत्रण भेजा गया है। मैंने निमंत्रण स्वीकार किया और वहां चला गया। चंद्रास्वामी भी वहां थे। वे 1975 में जयप्रकाश नारायण से मिलने आते थे। मैं तब जे.पी. के 'समग्र क्रांति' कार्यक्रम से जुड़ा हुआ था। जे.पी. ने ही इन महानुभाव से मुझे मिलाया था। मेरी जान-पहचान अधिक नहीं थी। मैं साधारण व्यक्ति हूँ। मैं साधु-संन्यासियों के पीछे नहीं भागता। मुझे साधु बनने की या संन्यास लेने की कोई इच्छा नहीं।

भोज पर चंद्रास्वामी ने कहा—नानाजी, हम काफी लंबे समय के बाद मिल रहे हैं। मैंने कहा, यह बहुत अच्छा है। उनके बाद खशोगी पहुंचे। मुझे नहीं पता था कि उसे भी बुलाया गया है या वह भी आ रहा है। खशोगी जाना-पहचाना व्यक्ति है। मैंने उसके बारे में पढ़ा है। अगर डॉ. जैन ने बता दिया होता कि वहां खशोगी भी आ रहे हैं तो मैं वहां नहीं जाता। डॉ. जैन ने एक वक्तव्य में कहा है कि उन्होंने भोज के लिए निमंत्रण भेजे थे। उन्होंने ऐसा किया होगा, लेकिन मुझे तो फोन पर निमंत्रण मिला।

भोज के समय एक अजीब बात हुई। चंद्रास्वामी ने मुझसे कहा कि खशोगी खुले दिल का आदमी है। वह भारत में विकास-कार्य करने में दिलचस्पी रखता है। स्वामी ने कहा, क्योंकि मैं

विराट् पुरुष

विकास कार्यों में लगा हूं, खशोगी मुझे मदद कर सकते हैं। मैंने पूछा कि वे मदद करने की स्थिति में कैसे हैं? चंद्रास्वामी ने कहा कि खुले दिल का होने के कारण वे आर्थिक सहयोग दे सकते हैं। मैंने तुरंत स्वामी को बताया कि दीनदयाल शोध संस्थान ने किसी विदेशी या बाहरी देश से आज तक एक पैसा नहीं लिया है। यह सोचा-समझा निर्णय रहा है। आत्मनिर्भरता और भारत के हर नागरिक का आत्मसम्मान बनाए रखना संस्थान की नीति है और यह विदेशी स्रोतों से पैसा लेकर कायम रखना संभव नहीं है।

जब मैं चंद्रास्वामी से बात कर रहा था, तब खशोगी अपने दो बेटों के साथ आए। मैंने उन्हें पहले नहीं देखा था। चंद्रास्वामी ने उनसे मेरा परिचय कराया। स्वामी ने मुझे बताया कि खशोगी मुझे और मेरे द्वारा चलाए जा रहे विकास कार्यों को जानते हैं। खशोगी ने पूछा कि क्या वे मेरी कोई सहायता ले सकते हैं। मैंने तुरंत धन्यवाद कहा और बता दिया कि किसी भी विदेशी से एक भी पैसा लेने का मेरा कोई इरादा नहीं है।

प्रधानमंत्री तब आए, जब यह बातचीत समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने सबके साथ औपचारिकता निभाई। खशोगी और उनके बीच कोई बात नहीं हुई। यह बस डिनर था। चंद्रशेखर और मैं पास ही बैठे थे। उन्होंने बहुत कम खाया और तुरंत ही जाने की इच्छा जाहिर की। मैंने उनसे कहा, तुम भी चलो, मैं भी चलता हूं। बस यही सब हुआ वहां।

लेकिन आपने यह सब भाजपा के नेतृत्व को बताया?

मैं क्यों बताता? मैं क्यों किसी को बताऊं? यदि मेरे पास कोई आता और पूछता कि पार्टी में क्या हुआ तो मैं बताता। मैं कोई अपराधी नहीं। मैं डॉ. जे.के. जैन के कारण वहां गया। अगर वह दोबारा डिनर के लिए बुलाएंगे तो फिर जाऊंगा। यदि मुझे पता चलता है कि खशोगी जैसे व्यक्ति को भी बुलाया गया है तो फिर मैं नहीं जाऊंगा।

क्या आपने इस विषय में डॉ. जैन से बात की? क्या उन्हें आपको सूचित नहीं करना चाहिए था?

(टोकते हुए) क्यों? मेरे विचार से यह इतना गंभीर मुद्दा नहीं है। मैं वहां जाता ही नहीं, यदि कोई मुझे बता देता कि खशोगी भी वहां मेहमान हैं, लेकिन इसे इतना तूल देने की क्या आवश्यकता है? वे आए और चले गए। मुझ पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह सबके सामने हुआ। मेरा पूरा जीवन एक खुली किताब है।

क्या आप कहेंगे कि प्रधानमंत्री का भोज में शामिल होने का निर्णय कोई खास महत्त्व नहीं रखता?

क्या महत्त्व है? वहां कुछ भी नहीं हुआ। अगर कुछ गड़बड़ चल रही होती तो मैं कह देता कि यह गलत है। मेरे विचार से रात्रि भोज को ख्वाहमख्वाह तूल दिया जा रहा है।

प्रधानमंत्री के साथ आपकी नजदीकी सब जानते हैं, लेकिन ऐसी खबरें हैं कि आपने बाल जगत्

साक्षात् नानाजी

(दीनदयाल शोध संस्थान का प्रकल्प) का उद्घाटन उनसे करवाकर भाजपा-संघ के कार्यकर्ताओं में विरोध उत्पन्न किया।

मुझे आश्चर्य है कि विरोध क्यों उत्पन्न होगा? उनका (भाजपा का) मेरे प्रकल्पों से क्या लेना-देना और मेरा उनकी योजनाओं से क्या लेना-देना? मेरे विचार से कोई विरोध नहीं है। मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा है। मैं संघ का व्यक्ति हूँ। संघ ने मुझे बनाया है। संघ के मुखिया बाला साहेब देवरस प्रकल्प देखने आए। मैंने उन्हें बताया कि चंद्रशेखर इसका उद्घाटन करेंगे। किसी को क्या विरोध होगा? इसमें गलत क्या है?

नानाजी आपकी संघ में मजबूत स्थिति है, जिससे आप नजदीक से जुड़े हैं...

सही है। मैं संघ से जुड़ा हूँ और जुड़ा रहूंगा।

कुछ लोगों का मानना है कि प्रधानमंत्री से उचित दूरी बनाए रखना दल के लिए अच्छा रहेगा...

(बीच में काटते हुए) मेरे मित्र, मेरा किसी दल से संबंध नहीं। भाजपा के अस्तित्व में आने से पहले ही मैंने राजनीति छोड़ दी थी। मैं भाजपा का सदस्य कभी नहीं था। मैं जनसंघ का सदस्य था।

आप आरएसएस से रिश्ते बनाए हुए हैं और आज भाजपा और संघ में कोई विभाजन रेखा नहीं है।

मैं नहीं समझता कि भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) एक हैं।

लेकिन एल. के. आडवाणी का कहना है कि भाजपा आरएसएस से ही पैदा हुई है।

वह अलग बात है। कोई भी अपना विचार रख सकता है। मैं वही कह रहा हूँ, जो मैं महसूस करता हूँ और समझता हूँ। अगर कोई कहता है कि नानाजी राजनेता हैं, तो मैं विरोध नहीं करूंगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं नहीं हूँ। मुझे किसी के विरोध या प्रशंसा की परवाह नहीं। मैं वही कर रहा हूँ, जो मुझे सही लगता है। प्रकल्प के उद्घाटन के लिए चंद्रशेखर को केवल इसलिए ही नहीं बुलाया गया था कि वे प्रधानमंत्री हैं, बल्कि इसलिए बुलाया था कि शुरू से ही उन्होंने विकास कार्यों के प्रति रुचि दिखाई है। वे अपने जिले में भी यही कर रहे हैं। उनका परिचय जयप्रकाश नारायण ने कराया था। तब से हमारे बीच कई वार्ताएं हुईं। मेरी उनसे अच्छी मित्रता है।

मैं विश्वनाथ प्रताप सिंह के नजदीक था, चरण सिंह के भी नजदीक था। मेरी समीपता तो कई लोगों के साथ रही। यदि कोई डेमोक्रेट है तो वह सबके प्रति अच्छी भावना रखेगा अन्यथा लोकतंत्र टिक नहीं सकता।

जब 60 साल की आयु में आपने राजनीति से संन्यास लिया और जनता पार्टी के समान या अधिक

विराट पुरुष

उम्रवाले साथियों से अनुसरण करने को कहा तो इसे चंद्रशेखर को प्रधानमंत्री बनाने की तरकीब के रूप में देखा गया। तो वास्तव में पुराने संदर्भ ही आज प्रधानमंत्री के साथ आपके रिश्तों को अर्थपूर्ण बनाते हैं।

देखिए, कोई भी एक प्रसंग को दूसरे प्रसंग के साथ जोड़ सकता है। लोकतंत्र में ऐसा होता है, लेकिन मेरा राजनीति छोड़ना चंद्रशेखर से कोई ताल्लुक नहीं रखता। उनका अपना ही काम करने का तरीका है। मेरा उनके राजनैतिक जीवन या विचारों से कोई लेना-देना नहीं। ऐसे बहुत से राजनैतिक मुद्दे हैं, जिन पर हमारी सहमति कभी बन नहीं सकती, लेकिन लोकतांत्रिक राजनीति में छुआछूत उचित नहीं। विचारों में मतभेद हो सकता है, लेकिन हम बहुत सी बातें साथ कर सकते हैं। सबके साथ सद्भावना रखनी चाहिए। यदि नेताओं के बीच सद्भावना नहीं तो आम लोगों, नागरिकों के बीच सद्भावना कैसे रहेगी।

आपने कहा कि भाजपा और आरएसएस को आप एक नहीं मानते। क्या आप समझाएंगे कि भाजपा को एक राजनैतिक इकाई मानने के विषय में आपका क्या दृष्टिकोण है?

मैंने किसी भी राजनीतिक दल पर न बोलने का निर्णय लिया है और भाजपा भी उन्हीं में से एक है। मैं आरएसएस के बारे में बोल सकता हूँ, क्योंकि मैं इसका एक साधारण सदस्य हूँ। भाजपा के बारे में एक भी शब्द नहीं बोलूंगा। न तो भाजपा और न ही किसी अन्य नेता पर मैं टिप्पणी करूंगा।

क्या आप धार्मिक मुद्दों के लिए काम करनेवाले किसी दल पर कुछ बोलेंगे? और किस सीमा तक इस विषय में क्या कहेंगे?

मेरे विचार से धर्म को राजनीति में नहीं लाना चाहिए।

लेकिन राम जन्मभूमि अभियान में राजनीति नहीं जुड़ी है क्या?

राम जन्मभूमि (बाबरी मसजिद) मुद्दा मेरे विचार से बिलकुल अलग है। यह धार्मिक मुद्दा नहीं है। बाबर धार्मिक व्यक्ति नहीं था। वह आक्रमणकारी था, इसलिए बाबरी मसजिद और कुछ नहीं, एक आक्रमणकारी की जीत और राष्ट्रीय ताकतों के अपमान का चिह्न है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज लोगों ने हमारे देश पर शासन किया। अंग्रेज शासक खुद को आस्था का रक्षक मानते हैं...सो ईसाई धर्म से संबद्ध हैं। वे यहां आए और 175 वर्ष तक शासन किया। उनके स्मारक थे, जिन्हें हमने हटा दिया (स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद)। जो उनके नामों पर सड़कें थीं, उनके नाम बदल दिए गए। क्यों? क्योंकि वे कुछ और नहीं, केवल राष्ट्रीय ताकतों के अपमान और विदेशी आक्रमणकारियों की जीत का परिचायक थीं। (उसी प्रकार) बाबरी मसजिद का धर्म से कोई लेना-देना नहीं...बहुत समय से वहां नमाज नहीं पढ़ी जाती।

मेरा प्रश्न एक राजनेता का अयोध्या में राम मंदिर बनाने के लिए रथयात्रा शुरू करने...

नहीं, नहीं... मैं राम मंदिर के लिए नहीं बोल रहा। मैं बाबरी मसजिद विवाद के विषय में बोल रहा हूँ। राम धर्मगुरु नहीं थे। वे ऋषि थे, गुरु नहीं थे। वे तो व्यावहारिक तौर पर पूरे राष्ट्र के नायक थे। वे राष्ट्र की एकता चाहते थे। जब केवट (नाविक) उन्हें गंगा के एक किनारे से दूसरे किनारे ले गया तो राम ने उसे अपने भाई के समान मानकर गले लगाया। उन्होंने शबरी की जाति के बारे में नहीं सोचा और उसके द्वारा दिए फल स्वीकार कर लिये। राम जोड़ने की शक्ति थे। यही नहीं, उनका एक आदर्श था। क्या था वह आदर्श?

उन्होंने राजपाट के बदले 14 वर्ष जंगलों में बिताना पसंद किया। एक राजनेता का सत्ता के प्रति यही रवैया होना चाहिए, इसलिए राम आज के राजनीतिक वातावरण के लिए, जहां सत्ता के लिए दल और मूल्यों के प्रति कोई निष्ठा नहीं, एक आदर्श साबित हो सकते हैं। राक्षसों से लड़ने के लिए राम ने कभी भरत से सेना भेजने का निवेदन नहीं किया। उन्होंने स्थानीय निवासियों को ही लड़ने के लिए प्रेरित किया।

जब उन्होंने बालि को पराजित किया तो उसका राजपाट खुद नहीं लिया, सुग्रीव को दे दिया। इसी तरह रावण का भव्य देश जीतकर भी विभीषण को सौंप दिया, जबकि लक्ष्मण का मत इसके विपरीत था। राम द्वारा प्रतिपादित यह राजनीतिक तरीका आज के विश्व के लिए सबसे प्रासंगिक और अनुकरणीय है। भारत में मंदिर बनाने की परंपरा है, परंतु राम धार्मिक व्यक्ति नहीं थे। वे राष्ट्रीय नायक थे। उनका मंदिर धार्मिक मंदिर नहीं कहलाया जा सकता, क्योंकि उनका पूरा जीवन तो नायक का था, एक राजनीतिज्ञ का था।

फिर राम को एक निश्चित हिंदू आयाम क्यों दिया गया है?

मेरे विचार में राम केवल हिंदू नहीं थे। हिंदूवाद एक सांस्कृतिक एवं भौगोलिक तथ्य है। यह पूजा करने की पद्धति नहीं है। एक किताब या एक मसीहा से यह नियंत्रित नहीं होता। कोई भगवान् नहीं विश्वास नहीं करता है, वह भी हिंदू है, इसलिए हिंदूवाद एक धार्मिक विचार नहीं है। अंग्रेजों को डर लगा कि यह एक ऐसा विश्वास है, जिसमें अलग-अलग प्रकार के लोग शामिल हो सकते हैं। तो उन्होंने विखंडन की दृष्टि से हिंदू को ईसाई और इसलाम के समानांतर खड़ा कर दिया। उन्होंने जनगणना और दूसरे माध्यमों से इसे अंजाम दिया। यह सोची-समझी चाल थी और हमने उनकी नकल शुरू कर दी।

आज के नेता क्या कर रहे हैं। सत्ता के लिए लोगों को जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीय आधार पर बांट रहे हैं। बंसीलाल हरियाणा विकास पार्टी को राजनीतिक दल में बदलना चाहते हैं। मैं सभी तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावादियों से पूछना चाहता हूँ कि वे केरल में क्या कर रहे हैं? वामपंथी जो संप्रदायवाद के खिलाफ हैं, इंडियन यूनियन मुसलिम लीग से सांठगांठ कर रहे हैं।

कांग्रेस के भी वे साथी रहे (यूडीएफ में) तो क्या वे सच में धर्मनिरपेक्ष हैं?

विराट पुरुष

(मैं कहूँगा) केवल हिंदूवाद धर्मनिरपेक्ष है। सारी समस्या यही है कि मुसलिम अन्य धर्म सहन करने को तैयार नहीं। ऐसा मुसलिमों का विश्वास है। यह बदलना होगा। यह काम ऐसे राजनेताओं से नहीं होगा, जिनके धर्मनिरपेक्ष विचारों ने भारत का धर्म के आधार पर विभाजन करा दिया। यह कांग्रेस पार्टी, क्या यह लोकतांत्रिक है? जब इसने 1946 में चुनाव लड़ा तो इसे भारत की एकता के लिए जनमत मिला था, विभाजन के लिए नहीं। जब कांग्रेस के लिए भारत की एकता और अखंड भारत बनाए रखना संभव नहीं था तो उन्हें वापस जनता के पास जनमत के लिए जाना चाहिए था, लेकिन वे नहीं गए, इसलिए यह धर्मनिरपेक्षता वास्तव में सांप्रदायिकता है।

कश्मीर में पिछले 5 वर्षों में 62 मंदिर नष्ट किए गए। इसके खिलाफ इन संप्रदायवादियों ने एक बार भी आवाज नहीं उठाई, लेकिन बाबरी मसजिद पर ये सभी बड़े रोष में हैं। इसी तरह कश्मीर में सौ से अधिक स्थानों का नाम बदलकर मुसलिम नाम दिया गया है और इन लोगों ने सरकारी मोहर भी लगा दी है। फिर भी कहते हैं, वे धर्मनिरपेक्ष हैं। मेरे विचार में ये बिलकुल धर्मनिरपेक्ष नहीं हैं।

जब आप नेताओं पर जाति और संप्रदाय के आधार पर विभाजन का आरोप लगाते हैं, तो क्या आप सभी दलों को इसका जिम्मेदार मानते हैं या जनसंघ को जो अब भाजपा का हिस्सा है, इस आरोप से मुक्त रखते हैं? गोंडा में नरसंहार के विषय में आप क्या कहेंगे, जहां आप विकास कार्यों में संलग्न हैं?

किसी राजनीतिक दल का बचाव करने का मेरा कोई इरादा नहीं है, लेकिन गोंडा के दंगे कैसे शुरू हुए? आज के अखबार कहते हैं कि छह सांसद चंद्रशेखर सरकार में मंत्री बनना चाहते हैं। उनमें से एक बलरामपुर से है, जहां मेरा कार्य चलता है। कर्नलगंज में दंगों के पीछे वही था। देखिए, मुसलिम और हिंदू, सभी मेरे साथ हैं। उन्हीं लोगों ने दंगे भड़काए। रथयात्रा (आडवाणी की) के बाद नहीं, उससे पहले भी 30 सितंबर को दंगे हुए, लेकिन रथयात्रा के दौरान कोई दंगा नहीं हुआ।

उदाहरण के लिए हैदराबाद के दंगे ले लीजिए। ये किसलिए थे? केवल चेन्ना रेड्डी को हटाने के लिए, ये सारे दंगे राजनीतिक हैं। मुलायम सिंह को हटाने के लिए बहुत से दंगे (उत्तर प्रदेश में) हुए। कौन करता है यह? नेता लोग, सभी दंगे। लखनऊ का दंगा हिंदू और मुसलिमों के बीच नहीं था, यह पीएसी और मुसलिमों के बीच था। मुसलिमों ने पीएसी पर हमला किया। क्यों? कैसे? क्या किसी ने यह सवाल पूछने की और सच्चाई जानने की हिम्मत की। सच्चाई बिलकुल अलग है। दंगे रथयात्रा के बाद हुए, रथयात्रा के दौरान नहीं। गोंडा के दंगे रथयात्रा से पहले हुए। बाकी रथयात्रा के बाद। मैं पूछना चाहूँगा कि ये दंगे शुक्रवार को नमाज के बाद ही क्यों शुरू हुए? आप तिथियां जांच लीजिए। भावनाओं से मुक्त होकर पूरा अध्ययन कीजिए। नेताओं के प्रचार में मत आइए।

क्या आप कहना चाहते हैं कि आडवाणी की रथयात्रा देश में सांप्रदायिक तनाव का कारण नहीं बनी?

मेरे विचार से नहीं। लालजी के भाषण और वक्तव्य मुसलिम भावनाओं या किसी मुसलिम नेता के खिलाफ कभी नहीं थे। आप उनका अध्ययन कीजिए, मैंने किया है। हालांकि मैं राजनीति में नहीं हूँ, लेकिन मैं सबका अध्ययन करता हूँ। देश में जो कुछ भी हो रहा है, मैं सबकुछ जानना चाहता हूँ।

लेकिन रथयात्रा को लेकर भाजपा में ही विभेद था...

मेरा उस दल से कोई लेना-देना नहीं। मैं भाजपा या किसी अन्य दल से संबंधित नहीं हूँ। मैं एक नागरिक के तौर पर ही विश्लेषण करता हूँ।

आप जनसंघ का हिस्सा थे और अब भी आरएसएस से जुड़े हैं। ये संगठन अपने अनुशासन के लिए जाने जाते हैं, लेकिन भाजपा में (जो जनसंघ से ही बनी) ऐसी कोई प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। क्या आप एक निष्पक्ष विश्लेषक के तौर पर इस तथ्य की समीक्षा करेंगे?

जहां तक भाजपा का प्रश्न है, मैं कुछ नहीं कहूंगा। मैं संपूर्ण राजनीतिक प्रणाली और राजनीतिक दलों का विश्लेषण कर सकता हूँ। मुश्किल यह है कि हमने दलीय लोकतंत्र और दलीय राजनीति को स्वीकारा है। आत्मस्तुति और परनिंदा दलीय लोकतंत्र की निशानी होती है। इस देश में प्रधानमंत्री दूसरे दलों के नेताओं को देश विरोधी कह देते हैं। ऐसी परिस्थिति में आम लोगों की सोच क्या बनेगी? दूसरों के प्रति सद्भावना लोकतंत्र को मजबूत बनाती है।

हममें सैद्धांतिक मतभेद हो सकते हैं, लेकिन हमें हर अच्छी बात स्वीकारनी चाहिए। वर्तमान प्रणाली में यह संभव नहीं। हर दल बंट जाएगा यदि केवल आत्मस्तुति और परनिंदा ही आधार बना रहेगा। हम 'शासक दल' और 'विरोधी दल' जैसे नाम क्यों देते हैं? सब विदेशी आयातित प्रणाली है। हमारे देश को इससे फायदा नहीं होगा। पिछले 43 वर्षों में समाज का विखंडन हुआ है। जब समाज विखंडित होगा तो राजनीतिक दलों का भी यही हाल होगा।

□

राष्ट्रीय एजेंडा नेतृत्व में नैतिकता उभरे

राष्ट्र और समाज के समक्ष वे कौन से सवाल हैं, जिन्हें पहली प्राथमिकता घोषित कर मौजूदा सरकार को पहल करनी चाहिए?

जिसकी सरकार बनी है या आगे जिसकी बनेगी, उसे सबसे पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि देश में कोई अभावग्रस्त न रहे। सामाजिक, आर्थिक विषमता कम-से-कम हो। जब तक आदमी को खाने को नहीं मिलेगा, तब तक वह कुछ भी नहीं कर सकता। यदि उसे उपेक्षित रखा गया तो उसकी अभावग्रस्तता बढ़ेगी और विषमता पर अंकुश लगाना नामुमकिन हो जाएगा। जिस समाज में विषमता रहेगी, वह समाज तरक्की नहीं कर सकता। तीसरी बात नैतिक मानदंडों को लेकर है। आम जन अपने नेताओं में एक उच्च कोटि की नैतिकता देखना चाहता है। पार्टियों के शीर्ष नेतृत्व को एक आदर्श प्रस्तुत करना पड़ेगा। उसे अपनी खोई हुई विश्वसनीयता हासिल करनी पड़ेगी। चौथा महत्वपूर्ण मसला है शिक्षा व्यवस्था का। शिक्षा व्यवस्था में जब तक बुनियादी परिवर्तन नहीं होता, तब तक विषमता एवं अभावग्रस्तता को समाप्त कर नैतिक मानदंडों को स्थापित करना कठिन होगा।

भाजपा और उसके सहयोगी दलों ने अपनी सरकार चलाने के लिए जो राष्ट्रीय एजेंडा निर्मित किया है, उसमें मुफ्त शिक्षा देने की बात कही गई है...

केवल मुफ्त शिक्षा से काम नहीं चलेगा। दरअसल, शिक्षा के मामले में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा एक समान शिक्षा का है। कुछ ऐसे स्कूल हैं, जहां टाट-पट्टी भी नहीं हैं, जबकि कुछ ऐसे हैं जहां प्रति माह हजार से पांच हजार तक फीस ली जाती है। पब्लिक स्कूलोंवाली यह शिक्षा व्यवस्था एक खास वर्ग का निर्माण करती है। वर्गभेद पैदा करती है। इन स्कूलों में बच्चों में कोई सामाजिक सरोकार पैदा नहीं हो पाता। जब ये बच्चे महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर जाते हैं तो उनके भीतर समाज के प्रति कोई दायित्व भाव नहीं रह जाता, इसलिए शिक्षा व्यवस्था में बुनियादी सुधार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी एक समान शिक्षा है, न कि मुफ्त शिक्षा।

इसके लिए तो फिर पब्लिक स्कूलों को बंद करने की घोषणा करनी पड़ेगी...

राष्ट्रीय सहारा, 28 मार्च, 1998 में अरुण पांडेय एवं दिलीप चौबे को दिया गया साक्षात्कार।

क्या और कैसे करना है, यह सरकार का काम है। इस बारे में मुझसे कुछ मत पूछिए। मैं तो सिर्फ यह बता रहा हूँ कि सरकार को क्या करना चाहिए।

प्राथमिकताओं के क्रम में आपके मुताबिक अगला महत्वपूर्ण मुद्दा कौन सा है?

पुरुषों और महिलाओं के बीच विभेदकारी सोच का खात्मा। हमारे समाज में स्त्री की तुलना में पुरुष को ज्यादा महत्व देने की प्रवृत्ति मौजूद है। यह हमारी शिक्षा का ही परिणाम है कि घर में जितनी खुशी लड़का पैदा होने पर होती है, उतनी लड़की के पैदा होने पर नहीं होती। स्त्री जाति ही नौ महीने तक हर पुरुष को अपने गर्भ में रखती है। यदि उसमें भी हीन भावना रही तो उसका सीधा असर उसकी संतान पर पड़ेगा, इसलिए शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो न तो वर्ग विभेद पैदा करे और न ही स्त्री-पुरुष में पुरुष को अधिक महत्व दे। बचपन से ही छात्रों के भीतर एक सामाजिक दायित्वबोध पैदा करना भी इस शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए।

सामाजिक दायित्वबोध पैदा करने के लिए क्या किया जाना चाहिए?

देखिए, हर बच्चा वही करता है जो बड़े करते हैं। जन्म से ही उसके भीतर यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। किसी छोटे बच्चे के सामने एक छोटा और एक बड़ा जूता रख दीजिए। आप पाएंगे कि वह बड़े जूते में अपना पैर डालेगा यानी वह वही करना चाहेगा, जो बड़े करते हैं, इसलिए सामाजिक दायित्वबोध पैदा करने का सारा दारोमदार बड़ों पर है। इन बड़ों में तीन लोग आते हैं—पहला परिवार के अग्रज, दूसरा अध्यापक वर्ग और तीसरा देश का राजनीतिक नेतृत्व। जब तक इन तीनों में सुधार नहीं होगा, तब तक नई पीढ़ी नहीं सुधरेगी और इस पीढ़ी के सुधरे बिना देश का कल्याण नहीं हो सकता।

भाजपा सरकार को और क्या करना चाहिए?

देश में कानून और व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति सर्वाधिक चिंताजनक विषयों में से एक है। मुझे आश्चर्य होता है कि जो देश पाकिस्तान जैसे मुल्क को दो-तीन बार युद्ध में परास्त कर सकता है, वह अपने देश के असामाजिक तत्वों से नहीं निपट पा रहा है। देश में न तो डकैत खत्म हुए और न ही गुंडई करने और ऊधम मचानेवालों की तादाद कम हुई। आज दो-तीन और दस वर्ष की बालिकाओं के साथ बलात्कार की घटनाएं हो रही हैं, इन पर अंकुश लगानेवाला तंत्र पूरी तरह नष्ट हो चुका है। यह शर्मनाक है। सरकार को चाहिए कि इस पर रोक लगाने के लिए तत्काल सख्त कदम उठाए।

स्वदेशी बनाम उदारीकरण की बहस जोरों पर है। भाजपा और संघ परिवार को प्रारंभ से ही स्वदेशी का कट्टर समर्थक माना जाता रहा है, लेकिन अब उनका जोर उदारीकरण पर ज्यादा दिखाई पड़ रहा है। इस संदर्भ में आपकी क्या राय है?

विराट् पुरुष

मैं स्वराज को स्वावलंबन की जननी मानता हूँ। यह प्रयास करना चाहिए कि हमारा देश स्वावलंबी बने। बावजूद इसके मेरी मान्यता है कि स्वदेशी की पुरातनकालीन परिकल्पना अब नहीं चलेगी। पुराने जमाने में भी संसार में व्यापार होता था। दुनिया के सारे देश परस्पर व्यापारिक संबंध रखते थे। भारत उनमें अग्रणी था, इसलिए यह तो नहीं चलेगा कि भारत विदेशों से संबंध-विच्छेद कर ले। आज की तारीख में व्यापारिक क्षेत्र में आदान-प्रदान को सुनिश्चित करना अनिवार्य शर्त है, लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रखना होगा कि हमारा स्वावलंबन खतरे में न पड़ जाए। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को मानते हुए हमें अपने को स्वावलंबी बनाना पड़ेगा। स्वावलंबन की नीति को पिछले पचास वर्षों के दरम्यान दरकिनार कर दिया गया। अब उसे पुनर्जीवित करना पड़ेगा। विदेशी ऋण के बोझ से देश को मुक्त कराना होगा, स्वरोजगार की भावना पैदा करनी होगी, ताकि देश का स्वाभिमान सुरक्षित रह सके।

भाजपा और उनके सहयोगी दलों ने सरकार के लिए एक 'नेशनल एजेंडा' तैयार किया है। उस एजेंडे पर आपकी टिप्पणी क्या है?

मैंने उस एजेंडा के प्रपत्र को अभी तक पढ़ा नहीं है। जो कुछ अभी मैंने कहा है, यदि उस एजेंडा में ये सारी बातें शामिल हैं तो फिर वह देश का एजेंडा होगा, वरना नहीं।

भाजपा ने जो एजेंडा जारी किया है, उसका मूल प्रपत्र सिर्फ अंग्रेजी भाषा में है, हिंदी में नहीं। क्या आपको नहीं लगता कि उसे हिंदी में भी होना चाहिए था?

बिलकुल होना चाहिए। जो एजेंडा जनसाधारण की भाषा में नहीं है, वह देश या जनसाधारण का एजेंडा नहीं हो सकता।

नानाजी, आप लंबे समय तक संघ परिवार से जुड़े रहे हैं। तब के जनसंघ और अब की भाजपा में क्या आपको कोई मूलभूत परिवर्तन दिख रहा है?

देखिए, परिवर्तन तो अभी दिखेगा जब कोई प्रत्येक व्यक्ति को देश के नवनिर्माण के कार्य से जोड़ेगा। यदि यह नहीं है तो किसी परिवर्तन की बात करने का कोई खास अर्थ नहीं। जैसे पहले था वैसे ही अब भी है।

भाजपा सरकार से आपकी अपेक्षाएं क्या हैं? क्या यह सरकार जनभावनाओं की दृष्टि से खरी साबित होगी?

इस बारे में मैं कोई टिप्पणी नहीं करूंगा। राजनीति और राजनीतिक दलों में किसी को भला-बुरा कहना मैंने बंद कर दिया है। सब मेरे दोस्त हैं। मैं सबके पास जाता हूँ और सब मेरे पास आते हैं। मुलायम सिंह, नारायण दत्त तिवारी और चंद्रशेखर से मेरी दोस्ती है तो अटल और लाल आडवाणी से भी। नरसिंह राव और कम्युनिस्ट पार्टियों के लोगों से भी मेरी दोस्ती है। ए.बी.

साक्षात् नानाजी

वर्धन से अब भी मैं मिलता रहता हूँ। ऐसे में किसी पर टिप्पणी करना मैं उचित नहीं समझता। दरअसल, राजनीति में इतनी गुटबाजी और बिखराव हो गया है कि हर नेता एक-दूसरे की टांग खींचकर आगे बढ़ना चाहता है, इसलिए मैं चुप रहता हूँ। हाँ, मुझे यह अवश्य लगता है कि सभी नेताओं को देश और समाज के हित में कुछ ठोस करने के लिए आपस में मिल-बैठकर बात करनी चाहिए।

क्या आप इसकी पहल नहीं कर सकते?

कतई नहीं। नेता वर्ग के बीच मैं कोई राजनीतिक पहल नहीं कर सकता। बहुत सोच-समझकर मैंने फैसला किया था कि राजनीति की बजाय सर्वसाधारण समाज के बीच मैं पहल करूँगा। ऐसा मैंने किया भी है। जिसे देखना हो, उसे कुछ दिनों के लिए चित्रकूट अवश्य आना चाहिए। वैसे भी मुझे लगता है कि बिना समाज के बदले सरकार को दुरुस्त भी नहीं किया जा सकता। आखिर एक बुरा समाज भली सरकार का चुनाव कैसे कर सकता है? हम लोग अपने देश को लोकतंत्र की संज्ञा देते हैं। मैं इसे 'चुनावतंत्र' कहता हूँ। हमारे यहां लोकतंत्र नहीं, चुनावतंत्र है। सर्वसाधारण को देश के नवनिर्माण से जोड़े बगैर लोकतंत्र की बात बेमानी है। भारत का हर नागरिक सबकुछ सरकार से ही हासिल करना चाहता है। उसकी उम्मीदें सरकार पर ही टिकी हैं। लोकतंत्र में ऐसा नहीं होता। जब तक देश में हर व्यक्ति को राष्ट्र की प्रक्रिया से नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक उसे लोकतांत्रिक देश कहना गलत होगा। यही वजह थी कि मैंने राजनीति से संन्यास लेने का फैसला किया था।



ग्रामोदय विश्वोदय का मार्ग

ग्रामीण विकास को लेकर आजादी से पहले और आजादी के बाद के योजनाकारों में क्या फर्क रहा?

देखिए, ग्राम्य विकास को महत्व दिया गांधीजी ने, जो कि आजादी से पहले की बात है। 1909 से 1924 के बीच गांधीजी ने अपना सारा विचार दर्शन और योजनाएं गांवों के आधार पर तय कीं। इस बीच उन्होंने जो भी किया गांवों को केंद्र में रखकर ही किया, मगर आजादी के बाद ऐसा नहीं हुआ। आजादी के बाद ग्रामोदय की बातें जरूर होती रहीं, मगर व्यावहारिक धरातल पर गांव अधिकाधिक उपेक्षित होते गए। आजादी के बाद के पचास सालों में शहरों का बड़ी तेजी से विकास हुआ। शहर सजे-धजे, चमके, जबकि गांव कुछ अधिकाधिक उजड़ते गए। शहरों और गांवों में इतना अंतर हो गया कि गांव के लोगों को गांव में रहने का भाव ही पसंद नहीं रहा। वे शहरों की ओर दौड़ने लगे, क्योंकि शहर कहते ही किसी का दर्जा बढ़ जाता है और गांव कहते ही घट जाता है।

आज हम देखते हैं कि लोकसभा हो या विधानसभा, यहां सब दल (राजनीतिक) आपस में लड़ते हुए भी एक बात पर एकमत होते हैं, अगर मसला विधायकों या सांसदों की वेतन-वृद्धि, भत्ता या कोई अन्य सुविधा बढ़ाए जाने से संबंधित हो। मगर आम लोगों के किसी हित को लेकर ये सभी दल आपस में कभी भी एक नहीं होते। यह विकास का वास्तविक तरीका नहीं है। गलत चीज का विरोध जरूर किया जाना चाहिए।

आखिर वे कौन सी वजहें रहीं, जिनके चलते हमारे गांव निरंतर शहरों के पिछलगू हो गए?

मैं गांवों को शहरों का पिछलगू तो नहीं मानता, लेकिन हिंदुस्तान के आजाद होने के बाद जो नेता वर्ग है, उसको अपनी शान की चिंता अधिक रही है। नेताओं को अपनी सुरक्षा की चिंता अधिक हो गई है। उनको अपने सुख-चैन की चिंता अधिक हो गई है, जबकि गांधीजी ने कहा था कि देश आजाद होने के बाद शासकों को आम लोगों के जैसे रहना चाहिए। यहां तक कि गांधीजी

की इच्छा थी कि राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति को नहीं रहना चाहिए, लेकिन इन सब चीजों को छोड़कर यह तय हुआ कि अंग्रेज लोग जिस शान से रहते थे, शासन करनेवालों को उसी शान से रहना चाहिए।

मैं दरअसल यह जानना चाहता था कि अपने इस शोषण के लिए गांव खुद कहां तक जिम्मेदार हैं? गांववालों का अपना नेतृत्व नहीं है। जिम्मेदार तो गांव को तब मानें जब उनका नेतृत्व हो और वे अपने नेतृत्व का दायित्व निभाते न हों।

आखिर गांव नेतृत्व क्यों नहीं दे पाए?

गांव नेतृत्व इसलिए नहीं दे पाए कि आजादी की लड़ाई के दौरान नेतृत्व जिन लोगों के हाथ में था, उन्होंने दल या पार्टी को अपने कब्जे में कर लिया। मेरा मानना है कि आज देश में पार्टियों के नेता नहीं हैं, बल्कि नेताओं की पार्टियां हैं। अब ऐसी स्थिति में गांव क्या कर सकते हैं?

नेतृत्व की इस साजिश के विरुद्ध गांव क्यों सचेत नहीं हो पाए?

देश की आजादी के लिए लड़नेवाले जो लोग थे, वे अपनी सारी शक्ति तो गांव से पाते थे। आजादी की इस जंग का नेतृत्व करनेवाले ज्यादातर लोग गांव के ही थे। मसलन, राजेंद्र बाबू को ही ले लीजिए। गांव के थे, लेकिन इन तमाम लोगों ने आजादी पाने के बाद कहीं रूस की तो कहीं अमरीका की नकल की। इससे इनके सोचने का रवैया बदल गया। साथ ही हजार साल की गुलामी के चलते देश की जनता का सोचने का जो ढंग है, उसमें शासकों के प्रति इज्जत और डर का भाव हमेशा रहा है। इसी मानसिकता के चलते देश की आम जनता अंग्रेजों को 'सुप्रीम' (सर्वोच्च) मानती थी, क्योंकि उनके हाथों में हुकूमत थी। दसियों साल की गुलामी के चलते हमारी मानसिक बनावट इस तरह की हो गई है कि जिसके हाथ में हुकूमत आ जाती है, उसी को हम बड़ा समझने लगते हैं। आजादी के बाद हम लोग यह भूल गए कि इन लोगों को हमारे कारण ही हुकूमत मिली है।

हमारे वैदिक साहित्य तक में 'नगर वसन्ते देवानाम्' जैसे उद्धरण देखने को मिलते हैं। क्या इससे यह आशय नहीं निकलता कि प्राचीन काल से ही हमारे यहां गांव की तुलना में शहर को श्रेष्ठ मानने की मानसिकता रही है और एक तरह से यह हमारी परंपरा बन चुकी है?

यह हमारी परंपरा नहीं है। सच बात यह है कि आम लोग क्या सोचते हैं, इसका बहुत फर्क नहीं पड़ता, मगर देश-आजाद होने के बाद हमारा नेतृत्व क्या सोचता है, इसका बहुत फर्क पड़ता है, क्योंकि हम हजार साल से गुलाम थे। जब देश आजाद हुआ तो पहली बार देश की जनता नेतृत्व के प्रति सही मायनों में आस्थावान हुई। हमारे नेतृत्व ने देश की आम जनता की इसी आस्था का शोषण किया।

विराट पुरुष

आजादी के बाद हर निर्वाचित लोकसभा में 30 से 35 प्रतिशत सांसद ऐसे होते हैं, जिनके पत्र व्यवहार के स्थायी पते गांव के होते हैं। तो क्या ये पते एक किस्म के छल हैं?

ये जो 30-35 प्रतिशत सांसद गांव के पतेवाले होते हैं, उनके दिल में गांव को लेकर कोई प्यार नहीं होता।

इसकी वजह?

ये लोग समझते हैं कि अगर उनका बेटा अच्छे अंग्रेजी स्कूल में नहीं पढ़ा तो दुनियावी प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाएगा, इसलिए ये जो तमाम बड़े लोग होते हैं, उनके बच्चे ऐसे स्कूलों में पढ़ते हैं, जिनमें बहुत खर्चा होता है और ऐसे स्कूल शहरों में हैं। इस तरह ये 30-35 प्रतिशत सांसद, जो गांव के पतेवाले होते हैं, वे गांव से सिर्फ चुनाव जीतने भर का नाता रखते हैं। स्वयं गांववाले बनकर नहीं रहते। स्वयं शहरी होते हैं।

ऐसे गैर-ईमानदार सांसदों से गांववाले अगले चुनावों में बदला क्यों नहीं लेते?

गांववालों को इन नेताओं ने गहरे जातीय दलदल में फंसा दिया है। जाति का ऐसा षड्यंत्र रचा है कि गांववाले उसमें उलझकर रह गए हैं और मजे की बात देखिए, जो लोग कभी जाति तोड़क मंडल बनाया करते थे, वही लोग आज चरम जातिवाद फैला रहे हैं।

गांववालों को राजनीतिकों द्वारा जो बरगलाने की एक सतत परंपरा है, वह खत्म कैसे हो सकती है? किसी पार्टी ने इसकी अभी तक शुरुआत क्यों नहीं की?

आजकल पार्टियों के नेता नहीं हैं, बल्कि नेताओं की पार्टियां हैं और कोई नेता या पार्टी नहीं चाहती कि यह परंपरा खत्म हो, क्योंकि तब उनकी नेतागिरी कैसे चलेगी। यह परंपरा उनकी नेतागिरी का शॉर्टकट है।

क्या भविष्य में भी गांव को बरगलाए जाने की परंपरा कायम रहेगी?

मुझे लगता है कि हमारी यह व्यवस्था ध्वंस की तरफ बढ़ रही है।

ऐसा आप किस आधार पर सोचते हैं?

इस आधार पर कि आज कोई सिद्धांत है ही नहीं। हमारी व्यवस्था सिद्धांतों के आधार पर चल नहीं पा रही। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद कांग्रेस पार्टी के रूप में बची ही नहीं, व्यक्तिवाद चल रहा है, परिवारवाद चल रहा है, राजनीति अब देश के आधार पर नहीं हो रही।

गांवों के इस अंतहीन शोषण का कोई अंत होता दिखता है आपको?

आनेवाले कुछ सालों में प्रशासन ध्वस्त हो जाएगा? अपराध बढ़ रहे हैं। बलात्कार बढ़ रहे हैं।

आखिर इन सबको रोकने के लिए सरकार को क्या चाहिए, नौकरशाही? अगर नौकरशाही खुद भ्रष्ट होती जा रही है तो देश को बचाने का कौन सा जरिया है सरकार के पास।

धीरे-धीरे शहरों में यह सोच बढ़ रही है कि अगर गांववालों का शहर आना रोका न गया तो शहरों की पूरी व्यवस्था चरमरा जाएगी। पहले यह व्यक्तिगत स्तर की सोच थी, मगर अब दिल्ली के महापौर योगध्यान आहूजा खुलेआम ऐसी ही टिप्पणी कर रहे हैं। एक समय ऐसी ही टिप्पणी मुंबई को लेकर शिवसेना प्रमुख बालासाहब ठाकरे भी करते थे—आपका क्या कहना है?

दरअसल, शहर अपनी असफलता छिपाने के लिए गांवों पर इस तरह का दोष मढ़ते हैं, बल्कि मैं तो यहां तक कहूंगा कि सत्ता अपनी असफलता को छिपाने के लिए ऐसा कह रही है। अपनी विफलता के लिए दूसरों को गाली देना, यह गुलामी के काल की मानसिकता है, जो आज भी चल रही है। आज आप देखेंगे कि हर पार्टी दूसरी पार्टी को गालियां दे रही है, लेकिन वही पार्टी जब सत्ता में आती है तो वही सबकुछ करती है, जो उसके पहलेवाली करती थी। यह अपनी विफलता को छिपाने का एक भोंडा तरीका है। गांववालों पर दोष मढ़कर शहर की सत्ता और शहर का समाज ऐसा ही कर रहा है।

आजादी के पहले और आजादी के दौरान समाज की तमाम संवेदनशील गतिविधियों, मसलन साहित्य, सिनेमा, थियेटर आदि में गांव से आनेवाले लोगों का अच्छा खासा प्रतिनिधित्व होता था, लेकिन अब धीरे-धीरे यह लगातार कम होता जा रहा है? समाज की तमाम सांस्कृतिक गतिविधियों में गांव हाशिए पर आते जा रहे हैं।

मैं आपसे पूछता हूं, क्या धीरे-धीरे आज की शिक्षा नई पीढ़ी को इतना संवेदनशून्य नहीं बनाती जा रही कि नई पीढ़ी अपने बूढ़े मां-बाप को भूलती जा रही है? जब भावनाएं इस स्तर तक गिर चुकी हों, तब उस स्थिति में एक बार गांव से शहर पहुंचकर गांव को भूलना क्या मुश्किल है? दरअसल यही हो रहा है। गांव से एक बार जो शहर आया, वह गांव को फिर भूल जाता है। जब लोग अपने मां-बाप को भूल सकते हैं तो गांव को भूलना कठिन तो नहीं।

इस सबसे गांव को बचने और बचाने का क्या उपाय है?

गांव ही सबको बचाएंगे, शहर तो देश को खा जाएंगे, हम सबको पता है कि रूस आज कम्युनिस्ट देश नहीं रहा, मगर उसे किसी और ने नहीं खत्म किया, वह अपने आप ही खत्म हो गया है। ऐसे ही यह पूंजीवाद भी है। यह भी अमानवीय है, वह भी अमानवीय था, इसलिए यह भी वैसे ही खत्म हो जाएगा। अगले 20-25 सालों में सबकुछ तहस-नहस हो जाएगा। सवाल है कि तब विकल्प क्या होगा? गांव ही संसार को विकल्प देंगे।

विराट् पुरुष

गांव दुनिया को क्या देंगे? विचार या व्यवस्था?

सबकुछ देंगे। वैकल्पिक व्यवस्था, मानवीयता के आधार पर रची व्यवस्था देंगे, शैक्षणिक, सांस्कृतिक और जीवकोपार्जन की व्यवस्था।

अभी तक का जो अनुभव है, वह यही है कि गांव आम तौर पर शहरों के ही पद-चिह्नों पर आगे बढ़ते हैं, चाहे उपभोग का मामला हो, रहन-सहन का ढंग हो या कोई दूसरा मामला। गांवों की जीवन के किसी भी हिस्से में एक वैकल्पिक और साहस भरी पहल नहीं दिखती। ऐसे में इस दावे का आधार सदिच्छ के अलावा और क्या है?

आखें बंद करके देखोगे तो कहीं भी नहीं दिखेगी यह पहल। ड्राइंग-रूम में थोड़े दिखेगी। तुम लोग तो पत्रकार हो। तर्क करोगे। ठोस सबूत मांगोगे, मैं 500 गांवों में काम कर रहा हूँ, वहां चलकर देखिए। कैसे आएगा यह बदलाव, इसे बताया नहीं जा सकता, देखा ही जा सकता है।

दरअसल, मैं कहना यह चाह रहा था कि निर्णायक विकल्प तय होने के दौरान क्या शहर और गांव के बीच अंतर्विरोध का संघर्ष नहीं खड़ा होगा?

यहां अंतर्विरोध का सवाल नहीं है। बात है केवल विकास के एक वैकल्पिक मॉडल की, शहर के लोगों को भी खाना तो गांव से ही मिलता है, कोई भी इंडस्ट्री चलानी हो तो सारा रॉ-मैटीरियल गांव से आता है। आज पूरी दुनिया अपनी जो जिंदगी शान से बिता रही है, वह गांव की बदौलत ही ऐश कर रही है। सोचिए, जब गांव करेंगे अपनी जिंदगी, अपनी दुनिया को बदलने का फैसला, तब क्या होगा। एक दिन इस दुनिया को बदलकर रख देंगे गांव। सिर्फ ग्रामोदय ही नहीं होगा, विश्वोदय होगा।

□

जनसहभागिता समाज की समृद्धि का मंत्र

उनकी आयु 82 वर्ष है, किंतु एक स्वप्नद्रष्टा के तौर पर उनकी सोच आज भी युवा एवं पैनी है। एक योजना के तहत ही 1970 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के इस प्रभावी नेता ने राष्ट्रीय राजनीति को अलविदा कहकर गुमनामी का जीवन चुना। वह भी उस समय, जब वे संगठन में वरिष्ठ पद पर कार्यरत थे। आजीवन अविवाहित रहनेवाले राजनीति के इस खिलाड़ी ने उत्तर प्रदेश के गोंडा नाम के दूरदराज के इलाके को समाजसेवा के लिए चुना। एक समय राजनीति के शिखर पर रहनेवाले नानाजी देशमुख हालांकि अब सक्रिय राजनीति से दूर हैं, पर राजनीति की परख आज भी उतनी ही सटीक रखते हैं। गरीबों के उत्थान के लिए उनका मिशन और उसके प्रति उनका समर्पण, उनकी हर बात में स्पष्ट झलकता है। हाल में राज्यसभा के लिए मनोनीत होने के बाद नानाजी देशमुख ने प्रकाश झा के साथ इस साक्षात्कार में राष्ट्रीय पुनर्चना में सक्रिय जनसहभागिता के महत्व पर जोर दिया।

राजनीति से अलग होने के दो दशक से अधिक काल के बाद आप राज्यसभा के मनोनयन के लिए तैयार हो गए...

राष्ट्रपतिजी ने मुझे राज्यसभा के लिए मनोनीत मेरे उन कार्यों की वजह से किया, जो मैं गरीब और पिछड़ों के विकास के लिए करता हूँ। हरेक का एक अपना व्यक्तित्व होता है। मैंने यह मनोनयन इसलिए स्वीकारा, क्योंकि यह गैर-राजनैतिक है। यदि यह राजनैतिक होता तो मैं अस्वीकार कर देता।

ऐसा देखा गया है कि मनोनीत सदस्य सदन की काररवाई में अधिक योगदान नहीं दे पाते।

मैं दूसरों की ओर से क्यों बोलूँ? अपने अतिरिक्त किसी और के कामों के लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। अगर उन्होंने (पूर्व मनोनीत सदस्य) कुछ नहीं किया तो उनसे पूछिए। मैं अपने स्तर पर बहुत कुछ कर रहा हूँ, बहुत कुछ करना चाह रहा हूँ और बहुत कुछ करता रहूँगा।

विराट् पुरुष

सक्रिय राजनीति छोड़कर समाजसेवा के प्रति समर्पित होने का क्या कारण था, वह भी तब जब आप राजनीति के शिखर पर थे?

मैंने राजनीति छोड़ी और समाज कार्यों के प्रति समर्पित हुआ, क्योंकि स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी। राजनीति सड़ने लगी थी और देश कमजोर पड़ रहा था। 'प्रेरणा' का अभाव था और युवा अपनी दिशा भूल चुका था।

जनसंघ और बाद में भारतीय जनता पार्टी में आपके कद को देखते हुए तो आप उच्चतम पद के दावेदार थे, लेकिन आपने सबकुछ छोड़ दिया।

मैं ऐसी चीजों में विश्वास नहीं रखता। मैं किसी पद की दौड़ में शामिल नहीं था। मैं हमेशा से गरीबों के उत्थान के लिए काम करना चाहता था। मैंने राजनीति इसलिए छोड़ी, क्योंकि मुझे लग रहा था कि राष्ट्रीय पुनर्रचना का काम जनसहभागिता के बिना नहीं हो सकता। सच तो यह है कि विकास की प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता के बिना कोई भी देश या समाज समृद्ध नहीं बन सकता। विकास केवल हुकूमत के सहारे नहीं हो सकता।

अब क्या स्थिति है? क्या हम सही दिशा में बढ़ रहे हैं?

क्या दिशा? यदि स्वतंत्रता के 50 साल बाद भी हम यह प्रश्न पूछ रहे हैं तो हम किस दिशा के बारे में बात करें? आज क्या स्थिति है? सामाजिक असंतुलन और आर्थिक विषमता बढ़ गई है। धनवान और शक्तिशाली गरीब और कमजोरों का शोषण कर रहे हैं। बेरोजगारी और हताशा देश के लिए खतरा बन गई है। 1991 यह सब इसलिए हुआ, क्योंकि सरकार में लोगों की सहभागिता नहीं बन पाई।

आपने राजनेताओं के रिटायर होने की आयु तय करने की बात कही। आज अधिकतर नेता साठ साल से ऊपर हैं। उनके बारे में आप क्या कहेंगे?

मेरे कहने का अर्थ था कि 60 पार करने के बाद आपको समाज के विकास में योगदान के लिए सत्ता की क्या आवश्यकता है? युवाओं को आगे आने दो। उन्हें सत्ता सौंपो। युवा ही बदलाव का माध्यम हैं। उन्हें भविष्य का सामना करना है, अतः उन्हें ही इस बारे में सोचना है। वृद्ध होती पीढ़ी भविष्य का क्या सोचेगी। उसकी जड़ें तो भूतकाल में हैं। दशकों से पनपी उनकी सोच की प्रक्रिया बदलाव के प्रति उपजाऊ नहीं है। पुरानी पीढ़ी भविष्य के बारे में सोचने के लिए परिपक्व तो है, किंतु आवश्यक बदलाव को स्वीकारना उसके बस की नहीं।

इसी कारण से मैंने प्रस्ताव रखा था कि एक उम्र के बाद बुजुर्गों को युवाओं के लिए स्थान छोड़ देना चाहिए, वरना युवाओं को अनुभव प्राप्त करने का अवसर कैसे मिलेगा? सच तो यह है कि इनके दिमाग में सत्ता छोड़ने का खयाल तक नहीं उठता। मरते दम तक लोग सत्ता से चिपके रहना चाहते हैं।

नेताओं की छवि धूमिल हुई है और राजनीति के अपराधीकरण से यह और भी खराब हो गई है...

स्वतंत्रता से पहले का नेता स्वार्थी नहीं था। वह जनता के लिए काम करता था, स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं, परंतु स्वतंत्र भारत में वह सत्ता के पीछे दौड़ने लगा। उसकी पहली प्राथमिकता पद पाना है। उसे सत्ता, पद, प्रतिष्ठा, सुरक्षा सबसे पहले केवल खुद के लिए चाहिए। लोग तो गिनती में ही नहीं आते। आते भी हैं तो सबसे पीछे।

सब अपने में व्यस्त व्यक्तिवादी बन गए हैं। कोई अपने और अपने बच्चों के आगे नहीं सोच रहा। सत्ता हथियाना मुख्य लक्ष्य बन गया है। नेता सोचता है कि अगर मैं प्रधानमंत्री हूँ तो मेरे बाद मेरी बेटी प्रधानमंत्री बने। उसके बाद उसका बेटा, फिर बहू बने। उनका कहना है, ऐसा लोग चाहते हैं। हो क्या रहा है यहां?

इसका इलाज क्या है?

सबकुछ भ्रष्ट हो चुका है। हम बच्चों को क्या सिखा रहे हैं? पैसा बनाओ येन-केन-प्रकारेण। समाज को साफ होना पड़ेगा। बच्चों को, जो भविष्य के नागरिक हैं, उचित सोच और व्यवहार सिखाना पड़ेगा और कोई इलाज नहीं। सामाजिक जागरण इसका इलाज है। कोई यह नहीं करना चाहता, लेकिन कोई विकल्प नहीं।

भारतीय समाज सांप्रदायिक आधार पर बंटता जा रहा है। ईसाइयों पर हाल के हमलों ने धार्मिक मुद्दों को फिर से सामने रखा है। क्या धर्म के नाम पर राजनीति उचित है?

मैं किसी धर्म के विरुद्ध नहीं। मैं मानवता में विश्वास रखता हूँ। किसी नाम से पुकारो—हिंदू, मुसलिम, ईसाई—सब मानव हैं।

आप अपने कामों का मूल्यांकन कैसे करते हैं? क्या यह आपका निजी कार्यक्रम था या संघ का?

मैं बचपन से संघ का सदस्य रहा। मैं जो कुछ आज हूँ, संघ के कारण हूँ, लेकिन समाजसेवा में संघ का होना या न होना आधार नहीं बनता। जाति, धर्म, समाज, वर्ग यह आधार नहीं बनता। मैं भारतीय ग्रामीण समाज के संपूर्ण विकास के लिए कार्यरत हूँ और हाँ, इसके लिए मुझे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से प्रेरणा मिली।

गरीबों के लिए अनगिनत योजनाओं के बावजूद हमारे देश में बेघरों और निरक्षरों की सबसे अधिक संख्या है।

बहुत साधारण सा कारण है। यदि मैं साक्षर नहीं होना चाहता तो मुझे कोई साक्षर नहीं बना सकता। जब तक लोगों में जागृति नहीं आती, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

क्या हमारी योजनाएं व्यावहारिक नहीं थीं? क्या उनके क्रियान्वयन में कोई चूक हुई?

विराट् पुरुष

यह योजनाओं का प्रश्न नहीं है। मूलभूत सोच का प्रश्न है। तब तक विकास हो नहीं सकता, जब तक कि लक्षित वर्ग खुद विकास और समृद्धि नहीं चाहता। आप बड़ी-बड़ी योजनाएं बना लीजिए। उनको सब्सिडी दे दीजिए। तब तक सब व्यर्थ है, जब तक कि गरीब पहल नहीं करता। सरकार विकास ऋण बांटती है। क्या होता है? लोग उसका उपभोग करते हैं। फिर से सरकार का मुख ताकते हैं। ऐसे माहौल में विकास संभव नहीं।

आर्थिक सुधारों ने अमीर को और अमीर एवं गरीब को और गरीब बना दिया है। क्या हम सही पथ पर हैं?

जब तक लोग नहीं जागते, तब तक आर्थिक सुधारों का फायदा उन्हें नहीं होगा। यही मैं कर रहा हूं। लोग इस सच्चाई को नहीं समझते, तभी तो ये समस्याएं हैं। सुधार हो तो कैसे हो? देश ऋण के बोझ तले दबा है, सरकार ऋण के सहारे टिकी है और ऋण के नए-नए रास्ते खोज रही है।

गरीबों के विकास कार्यों के दौरान आपके अनुभव कैसे रहे?

मैं विकास के नए-नए नमूने को लेकर प्रयोग कर रहा हूं। चित्रकूट में ऐसा नमूना खड़ा करना चाहता हूं, जिसमें मैंने जिंदगी भर का अनुभव लगा दिया है और जिसका लक्ष्य है सामाजिक पुनर्रचना का ऐसा मॉडल तैयार करना, जो हर गांव को आत्मनिर्भर और परस्परपूरक बना सके। गांवों में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है। सामाजिक, आर्थिक और औद्योगिक विकास का यही आधार है, परंतु हमारे गांव गरीबी से जूझ रहे हैं। शिक्षित युवक गांव छोड़ रहे हैं। वहां रोजगार नहीं है। मैं यह पलायन रोकना चाहता हूं। गांवों को नष्ट करके कोई देश समृद्ध कैसे बन सकता है?

आप देश में गैर-सरकारी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की सबसे बड़ी योजना उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में चला रहे हैं, जिसमें 2,814 गांवों को रखा गया है। क्या आप अपने मिशन में सफल रहे हैं?

अगर मैं सफल नहीं होता तो राष्ट्रपति मुझे राज्यसभा के लिए मनोनीत नहीं करते। मेरे विचार में मुझे 100 प्रतिशत सफलता मिली है।

आप सदन में अपनी कार्यविधि के दौरान क्या करना चाहते हैं?

मैं अपने कामों के बारे में सदस्यों को बताऊंगा और इसे कैसे किया जा सकता है, यह भी बताऊंगा। सब्सिडी देने की बात बेवकूफी है। मैं उनको बताऊंगा कि कृषि का विकास कैसे होता है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा कैसे सुनिश्चित की जा सकती है। योजना आयोग आठ पंचवर्षीय योजनाएं पूरी कर चुका है। नौवीं चल रही है। क्या हुआ है अब तक? किसी ने सड़क पर चलनेवाले आदमी के बारे में नहीं सोचा है। कोई नहीं परवाह करता। नेताओं को नहीं पता, लोगों को नहीं पता कि क्या करना है। कौन बताएगा? मैं उनको उनकी भूमिका, उनकी जिम्मेदारियों की याद

साक्षात् नानाजी

दिलाऊंगा। इसी कारण से मैंने यह मनोनयन स्वीकार किया। 800 सांसद हैं। मैं उनको बताऊंगा कि विकास कैसे किया जाता है। मैंने यह किया है और उन्हें भी बताऊंगा।

भारतीय राजनीति बदलाव से गुजर रही है। क्या आपको लगता है कि गठजोड़ की सरकारें दो या तीन दलीय व्यवस्था को आने देंगी?

मैं राजनेता नहीं हूं। मुझसे राजनीति की बात मत पूछिए। बहुत पहले राजनीति छोड़ी थी। मैं किसी सरकार या दल के बारे में बात नहीं कर सकता। मुझे इन बातों में न विश्वास है न रुचि।

आपकी राय में...

क्या राय? मैं कुरसी पर बैठकर हर विषय पर राय नहीं देता। मैं कड़े परिश्रम में विश्वास रखता हूं और वही करता हूं।



आर्थिक विकास हर नागरिक स्वावलंबी बने

आपने 22 साल पहले राजनीति छोड़ी, लेकिन राज्यसभा नामांकन स्वीकार करके क्या आप राजनीति में लौट रहे हैं?

माफ कीजिए, मैं राजनीति में नहीं लौट रहा हूँ। राजनीति में बहुत से कार्य करने पड़ते हैं, जैसे चुनाव लड़ना और सत्ता हासिल करना। राष्ट्रपतिजी ने मेरे सामाजिक कार्यों के आधार पर मुझे नामांकित किया है। मैंने स्पष्ट कर दिया था कि मेरे गैर-राजनीतिक चरित्र को आधार मानते हुए ही मैं नामांकन स्वीकार करूंगा। मैं सांसदों के सामने उदाहरण रखना चाहता हूँ कि उन्हें क्या करना चाहिए।

सांसदों को क्या करना चाहिए?

सारी समस्या यह है कि 50 साल से इस देश में विकास की जो प्रक्रिया अपनाई जा रही है, उससे लोगों का विकास नहीं हुआ है। समाज में विषमताएं बढ़ी हैं। बेरोजगारी बढ़ती ही जा रही है।

आपको सरकार की आर्थिक नीतियों पर एतराज है?

निश्चित रूप से। केवल आर्थिक ही नहीं, सामाजिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य नीतियों पर भी एतराज है।

क्या आप आर्थिक उदारीकरण के खिलाफ हैं?

भारत में उदारीकरण गरीबों को फायदा नहीं पहुंचाएगा। नीतियां बनानेवाले देश की सच्चाइयां नहीं जानते। आर्थिक विकास के लिए जितने संसाधन चाहिए, चाहे कृषि उत्पाद हो या उद्योगों के लिए कच्चा माल, सब गांवों में ही मिलता है, शहरों में नहीं। सरकारी नीतियों की वजह से गांवों के थोड़े से भी पढ़े-लिखे या सामर्थ्यवान नौजवान शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। अब गांवों में रह जाते हैं बूढ़े और औरतें, जो गांवों में उत्पादन बढ़ाने के लिए जरूरी आधुनिक तकनीक

19 दिसंबर, 1999। राज्यसभा के लिए मनोनीत होने के बाद इंडियन एक्सप्रेस की कूमी कपूर को दिया साक्षात्कार।

का उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं। प्रति एकड़ उपज हमारे यहां बहुत कम है। जो लोग गांवों के विकास के अग्रदूत होने चाहिए, वही शहरों की ओर भाग रहे हैं।

क्या आप समझते हैं कि भाजपा ने 'स्वदेशी' का नारा छोड़कर अपने समर्थकों को निराश किया है?

माफ कीजिए, मैं किसी राजनीतिक दल के बारे में यह नहीं कह रहा। मैं सरकार की बात कर रहा हूँ। आज की सरकार नहीं, आजादी के बाद से सब सरकारें यही कर रही हैं। राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए 'गरीबी हटाओ' जैसे नारों का सहारा लेते हैं। इससे आर्थिक विकास नहीं हो सकता। कोई लोगों को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए उत्साहित नहीं करता। जब आप गांवों में जाएंगे तो देखेंगे, लोगों को मांगने की आदत पड़ गई है। आप हमारे लिए क्या करेंगे—यही पूछते हैं। विकास के लिए पहल लोगों की तरफ से होनी चाहिए।

आप सरकारी सब्सिडी या मदद के खिलाफ हैं?

सब्सिडी विकास में मदद नहीं करती। इससे बड़े किसानों को फायदा होता है। 76 प्रतिशत जमीन छोटे किसान जोतते हैं, जिनके पास अपनी भूमि नहीं है और वे सिर्फ अपने लिए उत्पादन करते हैं। बड़े-बड़े किसान राजनीतिक दलों में शामिल हैं। इन लोगों के पास आधुनिक तकनीक है, जिसके इस्तेमाल से भूमि का जल-स्तर घट रहा है। सरकार को जल संसाधनों को पुनर्जीवित करना चाहिए, एक अच्छी सिंचाई नीति लागू करनी चाहिए।

क्या हमारी शिक्षा नीति भी गलत रास्ते पर है?

अध्यापक ही नई पीढ़ी के सबसे नजदीक हैं, लेकिन उन्हें वेतनभोगी नौकरों की तरह देखा जाता है। उनकी भी ऐसी मानसिकता है कि यदि हमारा वेतन नहीं बढ़ाया गया तो हम हड़ताल पर चले जाएंगे। नई पीढ़ी को देश के विकास के लिए नहीं पढ़ाया जा रहा, केवल पैसा कमाने के लिए पढ़ाया जा रहा है। सहयोग की अवधारणा उच्चतम संस्थान संसद् में भी भुला दी गई है। संसद् भी लोगों के भले के लिए एकजुट काम करने में विश्वास नहीं रखती। जब लोग सांसदों को लड़ते देखते हैं तो उन्हें लगता है लोकतंत्र शायद इसी को कहते हैं। सच्चा लोकतंत्र चुनाव लड़ने का नाम नहीं, बल्कि आर्थिक, शैक्षणिक व सामाजिक विकास में लोगों की हिस्सेदारी का नाम है।

आपके बहुत से पूर्व सहयोगी सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर हैं। वे सरकार की सोच में बदलाव ला सकते थे?

मैंने 22 साल पहले राजनीति छोड़ी। तब भारतीय जनता पार्टी का अस्तित्व नहीं था। मैंने 1978 में जनता पार्टी के सदस्य के रूप में राजनीति छोड़ी। मेरे पूर्व साथियों में जार्ज फर्नांडिस और चंद्रशेखर भी शामिल हैं, केवल भाजपा के लोग नहीं।

विराट् पुरुष

आप जनसंघ में कैसे शामिल हुए?

1950 में श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने नेहरू मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दिया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक (आरएसएस) के प्रमुख के पास नए दल की स्थापना का प्रस्ताव लेकर आए। तब मैं एक साधारण कार्यकर्ता था। मैं 1951 में बलराज मधोक और सुंदर सिंह भंडारी के साथ जनसंघ में शामिल हुआ था। अटलजी बाद में सम्मिलित हुए, जब डॉ. मुखर्जी ने कश्मीर में सत्याग्रह करने की घोषणा की। भंडारीजी राजस्थान के प्रभारी थे और लालकृष्ण आडवाणी उनके सहायक थे। शुरू में मैंने उत्तर प्रदेश में काम किया, बाद में बंगाल, उड़ीसा और असम में भी काम किया। 1965 में मुझे राष्ट्रीय महासचिव बनाया गया, बाद में प्रबंध सचिव।

आप केवल एक महान् संगठनकर्ता ही नहीं, एक बढ़िया फंडरेसर के नाते भी जाने गए। आप मुंबई के प्रमुख औद्योगिक घरानों, जैसे टाटा, वाडिया आदि के करीब कैसे आए?

मैं 1962 के चुनावों का प्रभारी बनाया गया। पैसा था ही नहीं। मैं के.एम. मुंशी के पास गया। उनसे मेरे अच्छे संबंध थे। वे नए-नए स्वतंत्र पार्टी में शामिल हुए थे। पहले तो उन्होंने विरोध जताया कि वे भिन्न पार्टी के हैं, पर बाद में उन्होंने मुझे धर्मसीभाई खटाऊ से मिलाया। मुंशी और खटाऊ के जरिए मैं उद्योगपति जे.आर.डी. टाटा के संपर्क में आया। साधारणतया मेरे जैसा व्यक्ति उनके घरों में प्रवेश पा नहीं सकता था, पर समय के साथ-साथ मैं उनके करीब आता गया।

आज आप राजनेताओं और उद्योगपतियों की सांठ-गांठ के बारे में क्या कहेंगे?

पहले उद्योगपति मुझसे बदले में कोई उम्मीद नहीं करते थे। उन्हें कभी नहीं लगा कि मैं सत्ता में आऊंगा। मुझे लगता है, पहले के मुकाबले आज उद्योगपतियों का राजनीति पर ज्यादा नियंत्रण है।



सहजीवन विवादमुक्त समाज का पथ

नानाजी देशमुख राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के मूल्यों को लेकर चलनेवाली शख्सियत हैं। उन्हें आज की राजनीति से वितृष्णा सी हो गई है। राजनीति में आई गिरावट से वे इतने खिन्न हैं कि उस पर चर्चा तक नहीं करना चाहते। नेताओं की मौजूदा जमात में वे किसी को एक नंबर से ज्यादा देने को तैयार नहीं हैं। नानाजी गुजरे कुछ सालों से ग्राम विकास और ग्रामोदय का लक्ष्य हासिल करने के लिए चित्रकूट के सियाराम कुटीर में रह रहे हैं। यहां उन्होंने वनवासी लड़कियों के लिए छात्रावास, स्कूल खोला है। आयुर्वेद कॉलेज की स्थापना जैसे कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन सामाजिक कार्यों के दौरान भाजपा, संघ के शीर्षस्थ नेता उनके यहां माथा नवाने पहुंचते रहते हैं। 94 साल की उम्र में भी वे देश-विदेश की सियासी हलचलों से खुद को अपडेट रखते हैं।

मौजूदा राजनीति को किस दृष्टि से देखते हैं?

मौजूदा राजनीति को मैं राजनीति ही नहीं मानता। सबकी अपनी-अपनी राजनीति है। मौजूदा राजनीति से मुझे वितृष्णा होती जा रही है।

ऐसा क्यों है?

यह लंबी बात है। जैसा होना चाहिए, वह हो नहीं रहा है। इस पर चर्चा के लिए अभी तैयार नहीं हूं।

संघ की स्थापना के समय जो मूल्य तय हुए थे, भाजपा क्या उस पर चली?

भाजपा चली या नहीं चली, यह मैं नहीं कह सकता, मगर मैं चल रहा हूं। ग्रामों में चल रहे हमारे कार्यों को आप देख सकते हैं।

राजनीति में गिरावट की वजह क्या मानते हैं?

अब इस पर मैं चर्चा नहीं करता।

विराट् पुरुष

इस समय विभिन्न राजनीतिक दलों में जो नेता हैं, उनमें नेतृत्व क्षमता के लिहाज से सबसे अच्छा नेता कौन है?

यह कहना बहुत कठिन है। मैं तो इनमें किसी को भी एक नंबर नहीं देता।

आपने कई बार कहा है कि समाज में आपसी रजिशें बढ़ रही हैं। इसकी वजह क्या है और समाधान क्या है?

हमने 500 गांवों में झगड़े मिटा दिए हैं। लोगों ने आपस में तय किया है कि झगड़े नहीं करेंगे। अगर हुआ भी तो उसे कचहरी नहीं ले जाएंगे। सहयोग से कार्य करेंगे। आपस में सहयोग नहीं रहेगा तो लोग कमजोर होंगे। तब ताकतवर इसका सीधा लाभ उठाएंगे। आदमी अकेला नहीं रहता। सुख से रहना है तो साथ रहना होगा और सुख से नहीं रहना है तो फिर झगड़ा होगा। ग्रामोदय से झगड़े की स्थिति खत्म होगी।

लोकसभा चुनाव चल रहे हैं, कुछ नेता आपका समर्थन हासिल करने का प्रयास कर रहे हैं? आप क्या कहेंगे?

मैं किसी पार्टी का नहीं हूँ। किसी पार्टी को मेरा समर्थन भी नहीं है। सब मेरे दोस्त हैं। चुनाव के समय हम क्षेत्रों में कार्य कर रहे अपने कार्यकर्ताओं को भी वापस बुला लेते हैं। जिस मतदाता का जहां मन चाहे वोट दे।

देश में बढ़ रहे आतंकवाद से निपटने के लिए आपके जेहन में क्या योजना है?

इसका समाधान ग्रामोदय से ही संभव है। जब कार्य होगा, ऊर्जा सकारात्मक कार्यों में लगाई जाएगी, तब इस समस्या का समाधान स्वतः हो जाएगा। आतंकवाद को धर्म विशेष से जोड़ना भी गलत है।

आपका ध्येय क्या है?

समाज को एक करना ही मेरा लक्ष्य है। आज समाज का कोई ध्यान नहीं रखता। समाज में सहजीवन खड़ा करना मेरा ध्येय है।

सहजीवन का अर्थ?

कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। यही सहजीवन है और सहजीवन ग्रामोदय से ही संभव है।



सामाजिक पुनर्रचना लोकशक्ति व राजनीति परस्परपूरक बनें

देश के विकास में शासन और स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका परस्परवलंबी होनी चाहिए, पर आजकल अपने देश में स्थिति वैसी नहीं दीखती, क्यों?

दुर्भाग्य है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद रचनात्मक कार्य के क्षेत्र में शासकीय एवं सामाजिक प्रयास एक-दूसरे से पृथक् मानकर गलत दिशा में अपनाई गई है। वस्तुतः दोनों स्तरों पर रचनात्मक कार्य परस्परपूरक होने चाहिए, तभी भारत का सर्वांगीण विकास संभव होगा। इसकी अवहेलना की जा रही है। स्वतंत्र भारत का राजनीतिक नेतृत्व मान बैठा है कि भारत की नवरचना का ठेका उन्हीं को मिला है। सामाजिक स्तर पर इस दिशा में प्रयास की आवश्यकता वे नहीं मानते। लोकशक्ति की अनभिज्ञता एवं श्रेय-प्राप्ति की लालसा इसके मूल में काम कर रही है। इसी कारण स्वतंत्र भारत की राजनीति सत्ता संघर्ष तक सीमित है। असहिष्णुता उसका स्वभाव बना है। रचनात्मक दृष्टि से वह वंचित है। जो बड़ी-बड़ी सरकारी योजनाएं बनती हैं, वे अधिकांश पदों पर आसीन लोगों के लिए धन-प्राप्ति की स्रोत बनी हैं। इसी कारण समाज समर्पित स्वयंसेवी व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा किए जानेवाले कार्यों को वे सहन नहीं कर पाते।

ऐसी विपरीत स्थिति में स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा लोकशक्ति का आत्मनिर्भर एवं प्रभावी रूप खड़ा करना नितांत आवश्यक है, अन्यथा प्रचलित राजनीति का चरित्र सुधरेगा नहीं। लोकशक्ति प्रभावी और समर्थ बनने के बाद ही देश की राजनीति और स्वयंसेवी प्रयासों में परस्परपूरकता संभव होगी। देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए यह कार्य अनिवार्य है।

क्या स्वयंसेवी प्रयास अपने देश में जनता का विश्वास अर्जित करने में सफल रहे हैं?

मैं सभी स्वयंसेवी प्रयासों से परिचित नहीं हूँ, अतः इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिए कठिन है। मैं कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं तथा व्यक्तियों को जानता हूँ। जनविश्वास एवं जनसहयोग पाने में उनकी सफलता उल्लेखनीय है।

मंथन, मार्च-1987। दीनदयाल शोध संस्थान के माध्यम से विभिन्न रचनात्मक प्रयोगों में संलग्न नानाजी देशमुख के साथ मंथन ने स्वयंसेवी संस्थाओं के दायित्व एवं स्थायित्व से संबंधित परिचर्चा की, जिसका संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत है।

विराट् पुरुष

भारत में स्वयंसेवी संस्थाओं की संख्या लगभग 20 हजार है। इसमें व्यक्तिगत रूप से ऐसे कामों में संलग्न व्यक्तियों के प्रयास शामिल नहीं हैं। ऐसा होते हुए भी इसका प्रभाव परिलक्षित क्यों नहीं होता?

जो स्वयंसेवी संस्थाएं शासन की आर्थिक सहायता पर ही पूर्णतः निर्भर हैं, उनका कार्य शासनतंत्र द्वारा संचालित कार्यों का ही प्रतिरूप है। उनसे जनकल्याण की अपेक्षा करना निरर्थक है। लोक कल्याण के लिए समर्पित स्वयंसेवी संस्थाओं में भी परस्परपूरकता का अभाव है। अपने-अपने सीमित क्षेत्र में वे अच्छा कार्य कर रही हैं, किंतु जब तक उन सबका सम्मिलित रूप विकसित नहीं होगा, तब तक वे अपना प्रभाव व्यापक स्तर पर प्रकट नहीं कर पाएंगी। जब तक इन सब समर्पित व्यक्तियों एवं संस्थाओं की सम्मिलित शक्ति प्रभावी रूप धारण नहीं करेगी, तब तक राजनेतागण इन कार्यों की महत्ता अनुभव नहीं करेंगे।

स्वाधीनता संग्राम के समय से ही महात्मा गांधी ने स्वयंसेवी प्रयासों का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए अनेक संस्थाएं निर्मित कीं और अनेक लोगों को इसके लिए प्रेरित भी किया, पर आज वे प्रभावहीन क्यों दिखती हैं?

गांधीजी ने स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ रचनात्मक संस्थाओं का निर्माण किया था। अनेक समर्पित एवं योग्य व्यक्ति उनमें लगे थे, किंतु वे संस्थाएं स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शासन की मुखापेक्षी बनीं। परिणामस्वरूप इन कार्यों का जनाधार एवं लोकप्रियता घटती गई। जो स्वयंसेवी संस्थाएं सरकार द्वारा पोषित होती हैं, उनकी हालत ऐसी ही बनती है। शासन स्वयं में अस्थिर तत्त्व है। उसकी नीतियां व्यक्ति एवं दलों पर निर्भर होती हैं। किस काल में कौन सा दल शासन संभालेगा और उसकी नीति क्या होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन होता है।

आप गांधीजी के प्रयासों का मूल्यांकन किस रूप में करेंगे?

गांधीजी के प्रयास मूलभूत रहे हैं। उनके इस मर्म को समझा गया तो उनके मूल्य-मापन की आवश्यकता अनुभव नहीं होगी। चिरंतन तत्त्व के आधार पर कार्यों में संलग्न व्यक्तियों की क्षमता कम अधिक होती है, अतः मूल्य मापन व्यक्तियों का करना चाहिए। मूल्यों के स्रोत का मूल्य मापन नहीं किया जाता। मूल्य मापन होता है परिणामों का, जो उन कामों में संलग्न व्यक्तियों की क्षमताओं पर निर्भर हैं।

प्रायः सभी औद्योगिक घरानों ने सेवा कार्यार्थ ट्रस्ट निर्माण किए हैं। इन्हें आप स्वयंसेवी प्रयास मानेंगे या व्यापार के प्रचार का माध्यम?

औद्योगिक घरानों द्वारा ट्रस्टों के निर्माण की परंपरा है। उन ट्रस्टों में संगृहीत धन का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है। इन ट्रस्टों में संगृहीत धन का उपयोग मुख्य रूप से उद्योगों को बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त उनका उपयोग दान-धर्म की भावना से भी जुड़ा रहता है।

देश में अनेक मठ-मंदिर प्रतिष्ठान हैं, जिनके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन हैं और साधु-संतों की भरमार। इनके द्वारा चलाए गए जनसेवा के कार्यों को आप किस रूप में देखते हैं?

मठ-मंदिरों के पास धन के अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। उनमें से कुछ मठ-मंदिर ऐसे हैं, जो जनसेवा का कार्य प्रभावी ढंग से कर रहे हैं, किंतु ऐसे मठ-मंदिरों की संख्या बहुत ही कम है।

भारत के जन-जन में व्याप्त भक्ति की भावना को आप भी एक महान् शक्ति के रूप में निरूपित करते हैं। सामाजिक नवनिर्माण में इस शक्ति का उपयोग किस प्रकार संभव है?

भारत में भक्ति भाव की शक्ति असीम है। उसका उपयोग सामाजिक नवरचना की दृष्टि से किया जाना चाहिए और किया जा सकता है, ऐसी मेरी धारणा है। उस दिशा में मैं प्रयास करना चाह रहा हूँ। अभी उस दिशा में मैं गति प्राप्त नहीं कर पाया। जयप्रभा ग्राम में निर्माणाधीन भक्तिधाम इस दिशा में प्रयोग करने के लिए ही बन रहा है।

गैर-सरकारी या स्वयंसेवी कही जानेवाली अनेक संस्थाएं वास्तविक रूप में सरकारी अनुदानों का उपभोग करती दिखाई देती हैं। ऐसी संस्थाओं की संख्या भी बढ़ी है। उनका अस्तित्व सही अर्थों में काम करनेवाली स्वयंसेवी संस्थाओं की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता है। इसका क्या उपाय है?

गैर-सरकारी या स्वयंसेवी संस्थाओं को सरकारी अनुदान प्राप्त करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कारण, सरकार के पास जमा धन जनधन ही है, जो विभिन्न प्रकार के टैक्सों द्वारा वसूला जाता है। उसका उपयोग जनकल्याण के लिए करना उस धन का सदुपयोग ही होगा, किंतु केवल उसी पर निर्भर रहना घातक हो सकता है।

गैर-राजनीतिक स्तर पर कार्य करते समय आपको शासन की ओर से कुछ अड़चनें आती हैं क्या? उन्हें आप कैसे दूर कर पाते हैं?

गैर-राजनीति स्तर पर कार्य करते समय शासन की ओर से निर्मित अड़चनें तभी अवरोधक बनती हैं जब हम केवल उसी पर निर्भर रहते हैं, अतः पूर्णतः शासन पर निर्भर प्रकल्पों को चलाने से बचना चाहिए। यह मैं अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। स्वयंसेवी संस्थाएं सामाजिक होने के कारण उनका चरित्र समाज के स्थायित्व से जुड़ा रहता है। इस कारण समाजसेवी संस्थाओं को सत्ता मुखापेक्षी न बनने देना आवश्यक है, अन्यथा उनका सामाजिक चरित्र खतरे में पड़ता है और वे भी अस्थिरता का शिकार बनती हैं। रचनात्मक कार्यों की सफलता के लिए उनमें निरंतरता एवं स्थिरता बनाए रखना नितांत आवश्यक है। इस कारण उनका रूप सदैव गैर-राजनीतिक बनाए रखना जरूरी है।

आप अपने प्रकल्पों में विदेशी एजेंसियों से आर्थिक सहयोग नहीं लेते। अनेक संस्थाएं ऐसा सहयोग

विराट् पुरुष

लेकर बहुत अच्छा कार्य करती दीखती हैं। दीनदयाल शोध संस्थान इससे दूर क्यों रहना चाहता है?

विदेशी धन पर आधारित नवरचना आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं कर पाती। नवस्वतंत्र देश को स्वावलंबन एवं स्वाभिमान के आधार पर ही खड़ा करना चाहिए। विदेशों से आर्थिक सहायता लेने के स्थान पर तकनीकी सहायता लेना उपयोगी हो सकता है। आर्थिक सहायता परावलंबी बनाती है, अतः विदेशी धन पर आधारित विकास स्वातंत्र्य को हानि पहुंचाता है।

व्यक्तिगत स्तर पर अनेक समाजसेवी बिना नाम-यश की कामना के बहुत अच्छे काम कर रहे हैं, पर उनके काम में आनेवाली अड़चनों को दूर करने का कोई सक्षम संपर्क या माध्यम दिखाई नहीं देता। क्या आपकी दृष्टि में इस समस्या का कोई समाधान है?

व्यक्तिगत या संस्थागत समाजसेवी कार्य लोकेषणा से अलिप्त रह सकें तो बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। देश में चलनेवाले ऐसे प्रशंसनीय कार्य वर्तमान काल में अकेलापन अनुभव कर रहे हैं। बिना भेदभाव के ऐसे सभी कार्यों को परस्परपूरक बनाने के लिए उचित माध्यम की आवश्यकता है। दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित 'मंथन' पत्रिका इस दिशा में पहल करे, यह मेरी अभिलाषा है।

देखने में आता है कि सरकारी स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार स्वयंसेवी प्रयासों में अनेक प्रकार की रुकावटें पैदा करता है। इसका कारगर उपाय क्या हो सकता है?

सरकारी स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए तभी कष्टदायक बनता है, जब स्वयंसेवी संस्थाएं स्वयंसेवी चरित्र छोड़कर सत्ताभिमुखी बनती हैं।

देश के नव निर्माण में सर्वाधिक प्रमुख भूमिका होती है निस्स्वार्थ भाव से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की। आज सर्वत्र इसका अभाव सा दिखाई देता है। आपने इसका क्या हल निकाला है?

देश की नवरचना में निस्स्वार्थ भाव से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं का अभाव अवश्य खटकता है, किंतु व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बढ़ाने की भावना से दूर और निस्स्वार्थ भाव से दृढ़ संकल्पित और योजनाबद्ध कार्य के लिए अपना समाज समर्पित युवक-युवतियों को उपलब्ध कराता है। यह मेरा अनुभव है।

संस्थान के अनेक प्रकल्प औद्योगिक घरानों के आर्थिक सहयोग से चलाए जाते हैं? क्या ऐसे प्रकल्पों में जनसहभागिता हो पाती है?

किसी भी सामाजिक कार्य के लिए धन की कम-अधिक मात्रा में आवश्यकता रहती ही है। सामाजिक नवरचना के कार्य के लिए पूर्णकालिक महिला-पुरुषों की आवश्यकता है। उनके उदर-भरण तथा अन्य आवश्यक खर्चों का प्रबंध करना अवश्यभावी है। औद्योगिक घरानों के पास समाज का ही धन लाभ के रूप में संगृहीत होता है। उस धन का उपयोग समाज-कार्य के लिए जितनी अधिक मात्रा में किया जा सके, अवश्य करना चाहिए अन्यथा देश के लिए सामाजिक

स्तर पर किए जानेवाले आवश्यक कार्य संभव ही नहीं होंगे। प्राप्त धन का उपयोग करते समय यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी होगी कि एकत्रित धन का एक-एक पैसा रचनात्मक कार्य संपन्न करने के ही काम आए, अन्यथा स्वयंसेवी संस्थाएं धन के लालच में बिक सकती हैं, किंतु भ्रष्ट होने के डर से धनाभाव के कारण सामाजिक कार्य में गति न आने देना समझदारी नहीं है।

इन 22 वर्षों में किए गए उपक्रमों के परिणामों से क्या आप संतुष्ट हैं?

1978 से जिस रूप में मैं रचनात्मक कार्यों में संलग्न हूं, उससे मुझे मात्र संतोष ही नहीं मिलता, अपितु अपने जीवन की सार्थकता अनुभव हो रही है।

स्वयंसेवी आंदोलनों को प्रभावी बनाने के लिए क्या करना होगा?

स्वयंसेवी आंदोलनों को प्रभावी बनाने के लिए दो उपक्रम आवश्यक हैं। एक है देश में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं में परस्परपूरकता निर्माण करना तथा दूसरा है, समाज की रचनात्मक क्षमता और शक्ति की सर्वसाधारण लोगों को अनुभूति कराना।



राष्ट्र निर्माण

समाज का हर घटक उत्तरदायी

आप सामाजिक व आर्थिक नवरचना के कार्य में जुट गए हैं। यह अच्छी बात है, किंतु इस काम के लिए राजनीति से पूरी तरह से हट जाना क्या जरूरी था?

वर्तमान राजनीति का रूप ऐसा है कि उसमें लगे रहने पर अन्य किसी भी काम के लिए समय नहीं बच पाता। साथ ही दलगत राजनीति में काम करने पर अपने सर्वोपयोगी काम को भी लोग दलीय दृष्टि से देखते हैं। परिणामस्वरूप सभी विचारों के लोगों का सामाजिक नवरचना के काम में सहयोग पाना संभव नहीं होता। इस काम की सफलता के लिए सभी विचारों के लोगों का सक्रिय सहयोग अति आवश्यक है, अतः इस उपेक्षित किंतु अति आवश्यक काम की सफलता के लिए दलगत राजनीति से पूर्णतः अलिप्त रहना ही उपयुक्त है।

व्या राजनीति की उपेक्षा करना उचित है?

मेरा मंतव्य राजनीति की उपेक्षा करना नहीं है। मेरे अकेले के राजनीति में न रहने से राजनीति की उपेक्षा नहीं होगी। आजादी के संघर्ष काल में अपने देश में जगह-जगह पर अनेक प्रभावी समाज-सुधारक दिखाई पड़ते थे, किंतु आजादी के बाद समाज-सुधारकों का अस्तित्व ही गायब है। सभी लोग राजनीति में ही जुटे हैं। इसका बड़ा दुष्परिणाम हुआ है। समयानुकूल सामाजिक नवरचना का काम भी सरकार के द्वारा ही होगा, ऐसी धारणा बन गई है। इसी से स्पष्ट होता है कि हर बात के लिए सरकार पर निर्भर रहने की वृत्ति जनमानस में घर कर गई है। सर्वसाधारण नागरिक या युवाशक्ति सामाजिक नवरचना या राष्ट्रीय नवनिर्माण के कार्य में बहुत कुछ कर सकती है, यह दृष्टि ही खत्म हो गई है। रचनात्मक दृष्टिकोण का व्यावहारिक जीवन में अभाव हो गया है। सामाजिक नवरचना या राष्ट्र नवनिर्माण में लोकशक्ति का कोई उपयोग भी नहीं हो रहा है।

सामाजिक नवरचना व राष्ट्र नवनिर्माण में आम लोगों को जुटाने का काम राजनीति से कम महत्व का नहीं है, किंतु इसकी उपेक्षा हो रही है। हम आजादी के चालीस सालों का अनुभव देखें।

सरकार ने सामाजिक परिवर्तन के लिए कुछ अच्छे कानून बनाए हैं। उन कानूनों को लागू करने

मंथन, अक्टूबर 1987। दीनदयाल शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री नानाजी देशमुख प्रतिमास पाठकों द्वारा भेजे गए प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे, जिन्हें संस्थान की पत्रिका 'मंथन' में प्रकाशित किया जाता था। उसी शृंखला के चुने हुए प्रश्न यहां दिए जा रहे हैं।

के लिए प्रशासन को आवश्यक अधिकार दिए गए हैं। इतने पर भी उन कानूनों से विशेष लाभ नहीं हुआ है। अपना समाज बहुत पुराना है। उसमें भी वह सैकड़ों साल गुलामी में भी बिता चुका है। उसमें युगानुकूल परिवर्तन करते हुए उसकी नवरचना करना आवश्यक है। देश में सामाजिक चेतना, रचनात्मक दृष्टि एवं निर्माणात्मक वृत्ति का विकास किए बिना उपर्युक्त कार्य संपादन कर पाना असंभव है। यह काम केवल सरकार द्वारा संपन्न नहीं किया जा सकता। इसे सामाजिक स्तर पर संपन्न किए बिना अन्य उपाय नहीं है। सामाजिक चेतना हर स्तर पर, हर परिवार में तथा व्यक्ति-व्यक्ति में जगाए बिना काम नहीं चल सकेगा। इसी पर राजनीतिक सफलता भी निर्भर है। राजनीतिक व सामाजिक कार्य राष्ट्रजीवन के दो अनिवार्य पहिए हैं। इनमें कोई अधिक महत्त्व का या कम महत्त्व का नहीं है। दोनों अखंड रूप से कार्यरत रहकर परस्परपूरकता के साथ अपना अपना दायित्व निभाते रहें, इसी में दोनों की सार्थकता व राष्ट्रोन्नति संभव है।

क्या कभी समाज के सभी घटक राष्ट्रीय कार्य में सक्रिय बन सकेंगे?

हर बात में अपवाद होते हैं, किंतु समाज के घटकों को सामाजिक दृष्टि से सक्रिय बनाना संभव न हुआ तो लोकतंत्र व व्यक्ति स्वातंत्र्य की बातें ढकोसला मात्र सिद्ध होंगी। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र चुनावतंत्र मात्र बनकर रह जाएगा। वही हो रहा है। ऐसी हालत में कुछ लोगों में हुकूमत का खेल चलता रहेगा। शेष सभी मजबूरी के जीवन के शिकार बनेंगे। क्या गत चालीस साल का यही अनुभव नहीं है। सच्चे अर्थ में लोकतांत्रिक जीवन जीना है तो समाज के प्रत्येक घटक को राष्ट्रीय दृष्टि से सक्रिय बनाने की विधि अपनानी होगी। यह कार्य सामाजिक स्तर पर ही हो सकता है।

क्या आर्थिक नवरचना का काम भी सामाजिक आधार पर संभव हो सकेगा?

इसका उत्तर हां में है। राष्ट्रजीवन को उसकी समग्रता में देखना होगा, अलग-अलग टुकड़ों में नहीं। जिस प्रकार मानव जीवन एकात्म है अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को मिलकर एक अविभाज्य इकाई है, उसी प्रकार राष्ट्र भी एकात्म है। उसमें भी चार तत्व हैं—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक। राष्ट्रजीवन में ये चारों पहलू अलग-अलग होते हुए भी उनका परस्परपूरक रूप ही राष्ट्रजीवन का मर्म है। इस मर्म को ध्यान में रखकर ही राष्ट्र जीवन के चारों अंगों के विकास की प्रक्रिया चलानी होगी।

राष्ट्र के प्रति समर्पित होते हुए हर नागरिक को स्वावलंबी व स्वाभिमानी होना चाहिए, अन्यथा राष्ट्रजीवन कमजोर बना रहेगा। स्वावलंबन में आर्थिक पहलू महत्त्व का है। आर्थिक स्वातंत्र्य का अर्थ ही है कि हर नागरिक आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो। इसी कारण आर्थिक नवरचना का कार्य सामाजिक स्तर पर भी करना होगा, तभी विकेंद्रित आर्थिक व्यवस्था आकार ले पाएगी। इसमें आर्थिक स्वैराचार अस्तित्व में आने का डर दिखाया जाता है, किंतु उसके लिए राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अंगपूरकता निभाते रहेंगे तो स्वैराचार की संभावना पर अंकुश लगाया जा सकता है।

विराट् पुरुष

सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन में सांस्कृतिक पहलू किस प्रकार पूरक बन सकेगा? अपने देश में तो अनेक संस्कृतियाँ हैं। वे सब सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन में दखल देंगी तो अराजकता को निमंत्रण देना नहीं होगा?

बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है आपका। इसे पूरी तरह से समझना बहुत आवश्यक है। संस्कृति को कई नामों से संबोधित करने की परंपरा पड़ गई है, किंतु वस्तुतः मानव संस्कृति एक ही है, जो मानव को मानवीयता से अर्थात् इनसानियत से विभूषित करती है। वह हर इनसान के लिए समान है। मजहब अलग-अलग हो सकते हैं। वे परमात्मा को पाने के मार्ग हैं। पति और पत्नी का भी मजहब अलग-अलग हो सकता है। साधारणतः उससे परस्पर संबंधों में फर्क नहीं पड़ना चाहिए। एक मानव का व्यवहार अन्य मानव के लिए कष्टप्रद न हो, इस रूप में हर मानव का व्यवहार विकसित करने की विधि को ही संस्कृति कहना चाहिए। यह मानव मात्र के लिए समान है। इसी पर मानव समाज की धारणा निर्भर है।

मानव को जन्म से ही दो प्रवृत्तियों का वरदान प्राप्त हुआ है। शरीर धारणा के साथ-साथ ही मानव में वासना व संवेदना काम करना प्रारंभ करती है। वासना उसे अपने शारीरिक सुखोपभोग तक सीमित रहने के लिए प्रेरित करती है, किंतु संवेदना उसे दूसरों के सुख-दुःख की अनुभूति कराकर अपनी वासनाओं पर संयम करना सिखाती है। यही इनसानियत का मूल स्रोत है।

मानव चाहे किसी भी मजहब में, जाति में या देश में पैदा हो, उसमें वासना व संवेदना अनिवार्य रूप से रहती है। मानव की वासनाओं पर संयम रखकर मानव को सबके लिए करुणामय बनाने की विधि ही संस्कृति है। यही सांस्कृतिक कार्य है। इसके बिना सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक व्यवस्था चल ही नहीं सकती अन्यथा जिसकी लाठी उसकी भैंस का जंगली जीवन हावी होगा। इस कार्य को किसी मजहब के दायरे में जकड़ना अमानवीय व असामाजिक है। यह मानव मात्र के लिए समान रूप से अनिवार्य है। इसके बिना सभ्य समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसे ही नैतिकता कहा जाता है, जिसके बिना न समाज टिक सकता है, न उन्नति कर सकता है।

आपके उत्तरों से स्पष्ट है कि यह काम बहुत आवश्यक, किंतु कष्टसाध्य है। क्या दीनदयाल शोध संस्थान स्वयं इतना व्यापक व कठिन दायित्व निभा पाएगा?

यह काम जितना आवश्यक और कष्टसाध्य है, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य है। इसे कर दिखाना समय की आवश्यकता है। इसे कर पाना किसी एक व्यक्ति या संस्था के बलबूते का काम नहीं है। इसी कारण दीनदयाल शोध संस्थान देश में इस उद्देश्य से कार्यरत संस्थाओं के सहयोग से ऐसी विधि विकसित करने की खोज में है, जो आपसी सहयोग से इस गुरुतर दायित्व को निभाने में सफलता प्राप्त कर सके।



पंथनिरपेक्षता विभेद की नीति छोड़नी होगी

आजादी की मूल प्रेरणाएं आपके मुताबिक क्या थीं?

आजादी की लड़ाई सांस्कृतिक भी थी। वह दो सभ्यताओं का संघर्ष था। आजादी हासिल होने के बाद युगानुकूल सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था खड़ी करने का काम अधूरा पड़ा है। इसके अलावा अनेक मुख्य काम भी आजादी के लक्ष्य में शामिल थे। उदाहरण के लिए, भौतिक और आध्यात्मिक विकास में संतुलन कायम करना, एकरस राष्ट्र-जीवन खड़ा करना, राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्र-जीवन के संचालन में प्रत्येक भारतीय को सहभागी बनाना।

आजादी के बाद भटकाव कहां से शुरू हुआ?

हमने सत्ता को राष्ट्र-निर्माण का अकेला औजार बना दिया। यह भारी भूल थी। उसके कारण सत्ताभिमुखी राजनीति का बोलबाला शुरू हो गया। संसद और विधानसभाओं की सीटों के लिए छीना-झपटी और जोड़-तोड़ को राजनीति मान लिया गया। इस मकसद के लिए एक-दूसरे को बदनाम करने का तरीका आम हो गया। सेवा की जगह रंजिश ने ले ली। इससे कोई दल अच्छा नहीं बचा। भारत में केवल सरकार के जरिए नवनिर्माण संभव नहीं है। पूर्व सोवियत संघ ने तो इसे प्रमाणित भी कर दिया है। इसलिए भी आवश्यकता है कि हम नया युग प्रारंभ करें। नया राजनीतिक उदाहरण पेश करें। वे नवनिर्माण का भी नेतृत्व करें। यह तभी संभव है, जब हरेक छोटा-बड़ा नेता एक क्षेत्र चुनकर वहां नवनिर्माण के प्रयोग करे। उनकी विश्वसनीयता इस तरीके से लौट सकेगी। हमें महसूस करना चाहिए कि अंग्रेजों से लड़ने का तरीका नवनिर्माण का तरीका नहीं हो सकता।

क्या संसदीय लोकतंत्र में बदलाव का वक्त आ गया है?

हमें अनुभवों से सबक सीखना चाहिए। आत्मस्तुति और परनिंदा की राजनीति त्यागनी होगी।

विराट् पुरुष

क्या छह दिसंबर की घटना से भारत में पंथनिरपेक्षता का गंभीर खतरा पैदा हो गया है?

हमारी राजनीतिक संस्कृति ने जितना जहर फैलाया है, उससे हिंदू समाज में जातिद्वेष जिस तरह से उभरा है, उसी तरह हिंदू-मुसलिम खाई भी बढ़ाई है। पूरे समाज को यह समझना होगा कि उनका राजनीतिक शोषण हो रहा है। वे कहते हैं कि पंथनिरपेक्षता को खतरा तब पैदा होगा, जब इस्लाम या अन्य धर्मों का विरोध हो। भारत में ऐसा कभी नहीं था और आज भी नहीं है। भारत का यह स्वभाव समझना जरूरी है। यहां किसी मजहब का कभी विरोध नहीं था। विरोध उनका हुआ और होगा, जो मजहब के नाम पर खुद को किसी आक्रमणकारी से जोड़ लेते हैं। हिंदुस्तान में पारसी और ईसाई मजहब विदेशों से ही आए हुए हैं। उन मजहबों को माननेवाले मुसलमानों से भी कम संख्या में हैं, किंतु वे अपने को असुरक्षित अनुभव नहीं करते। देश में पारसी-हिंदू या ईसाई-हिंदू दंगे नहीं हो रहे हैं। क्यों नहीं होते, कारण—वे तहेदिल से अपने को इसी देश का मानते हैं। वे किसी भी आक्रमणकारी से अपना रिश्ता नहीं जोड़ते।

संसार में ईसाई मजहब के भी अनेक देश हैं। ब्रिटेन में तो ईसाइयत वहां के राज्य का मजहब है। वे भारत को लगातार डेढ़-पौने दो सौ साल तक गुलाम बनाए हुए थे। उन्होंने से हमने अपनी आजादी छीनी है, किंतु यहां के ईसाई अपने को अंग्रेजों से नहीं जोड़ते। अंग्रेजी हुकूमत के प्रतीकों को हटाते समय यहां के ईसाइयों ने कोई आपत्ति नहीं उठाई। अल्पसंख्यक होते हुए भी वे स्वयं को पूर्ण सुरक्षित अनुभव करते हैं। वस्तुतः मुसलमानों को भी समझना चाहिए कि वे भी अन्य नागरिकों के समान भारत की ही संतान हैं। वे अपना मजहब कायम रखते हुए भारत के सभी नागरिकों के साथ अभिन्न और एकरूप होकर रहने की मानसिकता विकसित करें। विदेशी इस्लामी ताकतों की सहायता पाने की अंतरराष्ट्रीय आकांक्षाओं को भड़कानेवाले खतरनाक नेतृत्व से वे स्वयं को बचाएं। अल्पसंख्यक बहुसंख्यक विवाद में न पड़ें। इससे ही देश में सुख-शांति पनपेगी। सबकी आर्थिक, शैक्षणिक उन्नति होकर देश में एकता और एकात्मता अधिकाधिक मजबूत होगी।

आजादी की लड़ाई में भी इस वजह से टकराव उभरे थे। उन्होंने कहा कि अफसोस है कि अंग्रेजों की भांति इस देश में तथाकथित सेकुलरवादी बरताव कर हिंदू-मुसलिम दूरी को बनाए रख रहे हैं। वे उनसे सावधान हो जाएं जो 'इस्लाम खतरे में है' का नारा लगा रहे हैं। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की यह धरती है। यहां किसी मजहब को खतरा कैसे हो सकता है?

क्या आप महसूस नहीं करते कि नए संदर्भ में 'कंपोजिट कल्चर' को एक खतरा पैदा हो गया है?

कोई 'कल्चर कंपोजिट' नहीं होता। गंगा गंगोत्तरी से निकलकर गंगासागर में जा मिलती है। रास्ते में उसमें अनेक नदियां मिलती हैं तो क्या उनके मिलने से गंगा का नाम बदल जाता है? क्या गंगा को कोई कंपोजिट गंगा कहता है? संस्कृति को कंपोजिट कहकर आपस में विभेद की भावना भड़काई जा रही है। इस प्रवृत्ति को छोड़ना होगा। पंथनिरपेक्षता को खतरा दूसरी बातों से है। समान नागरिक संहिता का सवाल ऐसा ही है। यहां अलग-अलग कानून क्यों हैं? क्या उसी

साक्षात् नानाजी

से भेदभाव नहीं उभरता? उससे एक समुदाय की लाखों महिलाओं का जीवन यातनामय नहीं बना दिया है? क्या यह इनसानियत है? हमें मिल-जुलकर सोचना चाहिए। हर बात को सरकार पर छोड़ने की आदत भी बदली जानी चाहिए। तभी समर्थ समाज बन सकेगा।

नया नेतृत्व कैसे उभरेगा?

आज सबसे अविश्वास उभरा है तो एक रिक्तता पैदा हुई है। उसे नया नेतृत्व ही भर सकेगा। उसकी कोई विधि नहीं होती। यह तो परिस्थिति का कमाल होता है।



एकात्म मानववाद व्यावहारिक अनुसंधान की आवश्यकता

दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना में परम पूज्य गुरुजी की भूमिका के विषय में जानने की इच्छा है?

गुरुजी ने उस समय मुझसे कहा था, “जो तुम कर रहे हो, ठीक कर रहे हो।” यदि ऐसा नहीं होता तो गुरुजी इसके शुभारंभ के लिए नहीं आते। मैंने दीनदयाल स्मारक समिति का फरवरी 1968 की 13 तारीख को रजिस्ट्रेशन कराया। बाद में भवन बनने लगा, तो मैंने उस पर दीनदयाल शोध संस्थान नाम लिखवाया। मैंने कहा, “काम तो शोध का करना है और सब क्षेत्रों में करना है।” दीनदयालजी की जो विचारधारा सबके सामने आई, वह दर्शन दीनदयालजी का नहीं, वरन् हिंदू समाज का है। संघ ने उसे स्वीकार किया। मैंने व्यावहारिक अनुसंधान के लिए यह शोध कार्य शुरू कर दिया। दीनदयाल स्मारक समिति के अंतर्गत दीनदयाल शोध संस्थान के इस कार्य को प्रारंभ करने के लिए मुझे अटलजी ने समर्थन दिया। उन्होंने कहा, “यह सार्थक प्रयास है।” गुरुजी ने कहा, “तुम अपना काम करो, तुम ठीक कर रहे हो। मैं आऊंगा। फिर हमको क्या डर था?”

परम पूजनीय गुरुजी ने इस दीनदयाल शोध संस्थान के प्रारूप को स्वीकार किया तथा कहा कि अच्छा है। क्या, उनके मन में कोई कल्पना थी कि इसमें क्या करना चाहिए?

गुरुजी ने न केवल दीनदयाल शोध संस्थान के काम को स्वीकार किया, बल्कि काम कैसे करना चाहिए, क्या करना चाहिए, इन विषयों में भी मार्गदर्शन किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि तुम संस्थान के माध्यम से दीनदयालजी के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने की दृष्टि से शोध करो। फिर इस दृष्टि से हमने हिंदी और अंग्रेजी में जो प्रारूप बनाया, उसे गुरुजी ने देखा और उसमें थोड़ा सा सुधार भी किया।

क्या उद्घाटन समारोह 15 अगस्त को हुआ था?

15 अगस्त को नहीं। ऐसा हुआ कि दीनदयाल शोध संस्थान ने एक लेख प्रतियोगिता—‘आज के युग में महर्षि अरविंद की प्रासंगिकता’ का आयोजन रखा था। अच्छे पुरस्कार भी रखे थे,

मंथन, जनवरी-मार्च, 1996। मा. नाना देशमुख से श्रीगुरुजी के संदर्भ में मंथन के संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा की बातचीत के अंश।

उस संदर्भ में मैं पांडिचेरी में श्रीमां के पास गया। मां ने कहा—तुम अच्छा कार्य कर रहे हो, अच्छा सोचा है। मैंने मां से कहा कि हम चाहते हैं उन्हीं के जन्मदिन पर इसका उद्घाटन करें। 15 अगस्त को श्रीअरविंद का जन्मदिन है। उन्होंने कहा—अरे, नहीं! देखो, हिंदू होते हुए भी अंग्रेजी तिथि की बात करते हो (यू बीइंग हिंदू, यू स्पीक ऑफ दी इंग्लिश डे) मैंने कहा—आपका क्या अभिप्राय है?

तब न मुझे पता था, न गुरुजी को। गुरुजी ने कहा कि मैं तुमको यही कहनेवाला था। 15 अगस्त को करना गलत है। इस साल महर्षि अरविंद का जन्म दिवस 20 को है। देखो, एक वृद्ध महिला ध्यान रखती है, तुम लोग ध्यान नहीं रखते। उद्घाटन अरविंद के जन्मदिन पर करना चाहिए, इसलिए हमने 20 अगस्त को कार्यक्रम किया। गुरुजी ने मुझे टोक दिया। कहा कि इंदिराजी को बुलाओ। मैंने कहा—आप आएंगे तो उद्घाटन होगा, वरना ऐसे ही चलेगा। इंदिरा कोई मेरा आदर्श है? गुरुजी ठहाका मारकर हंसे। अच्छा हुआ तू अब सही रास्ते पर चलना चाहता है। तो वे हंसी-मजाक करते थे। भवन का सवाल आया। मैंने सोचा कि किराए पर प्लॉट ले लूंगा। मेरी चिंता थी कि प्रोजेक्ट रुके नहीं। उस समय श्री धर्मसी भाई खटाऊ ने आर्थिक मदद की। '67 के चुनाव में भी मैंने उन्हीं से पैसा लिया था। सन् 1972 तक 13 हजार पुस्तकों के साथ लाइब्रेरी तैयार हो चुकी थी। लोग न जाने क्या-क्या बातें करते हैं। ऐसा हुआ कि परमेश्वरनजी आए हुए थे। मंथन हमने शुरू कर दिया था। देवेंद्रजी ने कहा—मंथन के हिंदी संस्करण के लिए यदि आप कहें तो मैं संभाल सकता हूं। मैंने कहा, बहुत अच्छा। आप आ जाइए। हम एक कार्यशाला कर रहे हैं। विशेषांक निकालना है। तब से वे हमारे साथ जुड़े।

यह जो गुरुजी का चित्र है, यज्ञ करते हुए, उसी समारोह का है क्या?

हां! संघ परिवार के सभी लोग आए थे। शामियाना लगा था। आर.आर. दिवाकर भी आए थे, जो उस समय गवर्नर रह चुके थे और गांधी शांति प्रतिष्ठान के अध्यक्ष थे, अरविंद के साहित्य में अध्ययनशील थे, इसलिए उस प्रतियोगिता का चेयरमैन भी उन्हें ही बनाया गया।

उद्घाटन समारोह की कोई रिपोर्ट छपी नहीं। भाषण लिखा है क्या?

गुरुजी बोले थे, वह छपा था, क्योंकि वह थोड़ा विवादास्पद था।

जब जनसंघ की स्थापना हुई, राजनीति में जानेवाले कार्यकर्ताओं के लिए श्रीगुरुजी का कोई मार्गदर्शन था क्या?

गुरुजी ने कहा, जितने भी प्रचारक हैं, जिनको मैं भेज रहा हूं, वे सत्ता में नहीं जाएंगे, चुनाव नहीं लड़ेंगे, आदर्शवाद को कायम रखेंगे, संगठन को मजबूत बनाएं।

जनसंघ की स्थापना से पूर्व क्या उनकी चर्चा श्यामा प्रसाद मुखर्जी से हुई थी?

मुखर्जी की चर्चा वसंतराव और मौलिवंदर शर्मा से हुई थी। शर्मा संघ के नहीं थे, प्रतिबंध

विराट पुरुष

हटवाने के समय काम में आए थे। डॉ. मुखर्जी ने इनसे बातचीत की तो वे प्रॉमिस करने लगे। तब संघ ने डॉ. भाई महावीर को दिया।

संघ में क्या थे भाई महावीर?

संघ में प्रचारक थे, अच्छे थे, होशियार थे। सबसे बड़ी बात यह है कि भाई परमानंद के बेटे थे।

हिंदू महासभा कहती है कि डॉ. हेडगेवार का हिंदू महासभा से निकट का संबंध था। गुरुजी ने संघ और महासभा को अलग कर दिया।

डॉ. साहब बड़े विचित्र थे, उनके सबसे अच्छे संबंध थे। संघ को गाली देनेवाले लोगों को बुलाकर बौद्धिक कराते थे। डॉ. साहब सबको साथ लेकर चले। डॉ. साहब को डॉ. मुंजे ने कहा—हमारा (हिंदू महासभा का) सम्मेलन होनेवाला है। सावरकर अध्यक्ष बननेवाले हैं। डॉ. साहब ने कहा—मैं सब काम करूंगा, लेकिन संघ किसी पार्टी का स्वयंसेवक दल नहीं है। तो जिसको जो सूझता है, कहता है। हां, डॉक्टरजी की स्थिति यह थी। कांग्रेस के एक स्वर्णकार, बड़े भारी नेता जेल में थे। बड़ा प्रभाव भी था। संयोग से मैं तब स्वयंसेवक था। आयोजन अकोला में हुआ। वहां उन्होंने कांग्रेस के अनुकूल और हिंदुत्व की संकुचितता के बारे में बौद्धिक दिया कि संकुचितता से ऊपर उठना होगा। उन्होंने (डॉ. साहब ने) कहा—देखो, हम हिंदू हैं तो संकुचित भाव तो नहीं रखना है। फिर इनका तो ध्यान रखना होगा, ये वृद्ध लोग हैं।

महात्मा गांधी की हत्या के बाद संघ के खिलाफ जो वातावरण बना, प्रतिबंध हटा, गुरुजी का देश भर में स्वागत हुआ। गुरुजी की जो लोकप्रियता थी, जैसे कि बीबीसी ने कहा नेहरू के बाद गोलवलकर हैं, जो सबसे बड़ी भीड़ को आकर्षित कर सकते हैं। लेकिन गुरुजी ने जो भाषण दिया, वह एकतावाला तथा गैर-राजनीतिक था। संघ पर प्रतिबंध लगानेवालों के विरुद्ध भी नहीं था। कांग्रेस के प्रति बदले की भावना भी नहीं थी।

शुरु में कांग्रेस में अंग्रेजों की नीति पर चलने की परंपरा थी। गुरुजी इसके विरुद्ध थे। गुरुजी को दल विशेष से कोई द्वेष नहीं था। गुरुजी से उस समय कहा गया कि आप राजनीति में आ जाओ। आपटेजी शुरु से डॉक्टरजी के साथ रहे, वे राजनीति में आने के सख्त खिलाफ थे। वे कहते थे—डॉक्टरजी के सपने को हम बरबाद करेंगे? गुरुजी ने कहा, मैं तो आपटेजी की बात मानूंगा। गुरुजी संघ के गैर-राजनीतिक व्यक्तित्व थे।

गुरुजी तीन दशकों तक हिंदुत्व के बारे में बोलते रहे। उनके वक्तव्यों में मुसलिम पृथक्तावाद के बारे में आलोचना है, लेकिन कुरान, इसलाम के बारे में नहीं। आजकल लोग इनकी भी आलोचना करने लगे हैं।

इनका रिलीजन राजनीति के साथ जुड़ गया। यह भारत में नहीं जुड़ा। यह बाहर ही जुड़

साक्षात् नानाजी

गया। अब यह ठीक है कि कुरान में चार पत्नियां हो सकती हैं, किंतु नैतिकता पर बल देने के लिए शिक्षा उसमें रही। तो गुरुजी कुरान या बाइबिल के खिलाफ नहीं थे। जब गुरुजी से एक सवाल किया गया तो उन्होंने कहा था—देखो, जब कोई भी चीज शुरू होती है तो उसमें हजारों चीजें पैदा होती हैं। मुसलमानों की यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है, ये तो सभी उस तरफ ही जाएंगे। शायद मोहम्मद को भी लगा होगा कि 1800 वर्ष बाद ये रहेंगे नहीं। उनका मुसलमानों के प्रति रोष इसलिए था, क्योंकि इन्होंने रिलीजन को आधार बनाकर राजनीति की। जहां गए, वहां के अन्य मजहबों को मिट्टी में मिलाने की कोशिश की।

जब नेहरू के बाद शास्त्री प्रधानमंत्री बने तो गुरुजी के उनके साथ अच्छे संबंध थे?

उस समय शास्त्रीजी और टंडनजी से मेरे संबंध थे। तभी काशी हिंदू विश्वविद्यालय का नाम बदलने का सवाल आया। मैंने गुरुजी से कहा। गुरुजी ने कहा—तुम्हारे लाल बहादुर शास्त्री से संबंध हैं, उनसे बात करो। मैं शास्त्रीजी से मिला। मैंने उनसे कहा, गुरुजी बहुत परेशान हैं। काशी हिंदू विश्वविद्यालय का नाम बदलने के बारे में मैंने उन्हें बताया। शास्त्रीजी ने कहा, मेरे होते हुए गुरुजी ने ऐसी शंका क्यों की? मैं जिंदा हूँ, तब तक यह भेदभाव नहीं हो सकता। इससे लगता है कि संबंध रहे होंगे। इसकी मुझे प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है।

1965 में जब पाकिस्तान से युद्ध हुआ, तो क्या गुरुजी को राष्ट्रीय एकता परिषद् के लिए आमंत्रित किया गया था?

राष्ट्रीय एकता परिषद् में गुरुजी को आमंत्रित किया गया था। लोकसभा के सदस्य के नाते अटलजी, जनसंघ के अध्यक्ष के नाते बच्छराजजी और संघ की तरफ से गुरुजी थे।

उस समय देश में जितने भी राजनीति के प्रवाह थे, गुरुजी उनसे मिलते थे तथा गुरुजी से लोग प्रभावित थे?

गुरुजी से सभी लोग प्रभावित थे।

□

अटल बिहारी वाजपेयी अद्भुत व्यक्तित्व के धनी

इस समय मैं नानाजी देशमुख के सम्मुख बैठा हूँ, जिनका श्री अटल बिहारी वाजपेयीजी से बहुत पुराना संबंध है। मैं प्रार्थना कर रहा हूँ कि हमें कोई अच्छा संस्मरण सुनाएँ, जिससे आगे की पीढ़ियों को कुछ प्रेरणा मिल सके। यह भी आप ही तय करें कि आप क्या-क्या बताना चाहते हैं?

मेरी पहली भेंट अटलजी से गोरखपुर में हुई। गोरखपुर में मैं संघ का प्रचारक था और अटलजी के बड़े भाई का विवाह गोरखपुर में हुआ था, तो अटलजी अपनी भाभी को लेने गोरखपुर आए। ग्वालियर से वे संघ के स्वयंसेवक थे और मैं संघ का प्रचारक था। वे आए तो थे अपने भाई के ससुर के यहां, पर पता चला तो हमसे मिलने के लिए आए।

यह किस सन् की बात है?

यह मेरा खयाल है सन् 1944 की होगी। 1943-44 हो सकता है। उस समय तक वे कई कविताएँ लिख चुके थे और संघ कार्यालय में उन्होंने अपनी कविताएँ भी सुनाईं। यह हमारा पहला परिचय था। एक कवि स्वयंसेवक, इस रूप में उनका परिचय हुआ।

लॉ भी किया?

हां, उनके पिताजी भी उनके साथ लॉ करने के लिए आए और एक ही हॉस्टल में दोनों रहने लगे। उस समय कानपुर में बैरिस्टर नरेंद्र सिंहजी हमारे प्रांत संघचालक थे। तब हमने देखा कि दोनों बाप-बेटे वहां बैठे हुए हैं। हमें पता नहीं था कि लॉ कर रहे हैं। उनके पिताजी से मैंने पूछा कि आप कब आए? वे कहने लगे—अरे, मैं कब आया, मैं तो यहीं हूँ। यहां क्या कर रहे हैं आप हॉस्टल में? वे कहने लगे—मैं लॉ कर रहा हूँ। हमारे लिए यह बहुत अजब सी अनुभूति थी कि बेटा और बाप एक साथ एक कॉलेज में एक ही विषय पढ़ रहे हैं।

किस सन् की बात है?

मेरा खयाल है यह बात होगी सन् 1946-47 की। यह आजादी मिलने से पहले की बात है।

मैंने बाप-बेटे को साथ-साथ पढ़ते देखा। इनके पिताजी बड़े ही खुशमिजाज व्यक्ति थे।

तिथि एवं मूल स्रोत अज्ञात।

क्या वे भी कवि थे?

हां, वे भी कवि थे और अच्छे लेखक भी थे। अटलजी को कवि और भाषण कला का गुण अपने पिताजी से मिला। बहुत अच्छे वक्ता थे इनके पिताजी। इस प्रकार हमारा संबंध बढ़ता गया। फिर अटलजी की पढ़ाई समाप्त हो गई तो संघ के प्रचारक बने। प्रचारक बनने के बाद उनको क्या काम देना है, ये लेखक भी थे और कवि भी थे, यही सोचकर दीनदयालजी ने भाउरावजी देवरस से कहकर इनको 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य' का काम दिला दिया। ये लखनऊ आए। लखनऊ से 'राष्ट्रधर्म' छपता था, 'पाञ्चजन्य' छपता था और 'स्वदेश दैनिक' भी निकाला।

किस चीज से, क्या वहां हैंड प्रेस था?

नहीं, हाथ से भी चलाते थे। मैं मैनेजिंग डायरेक्टर था और अटलजी एडीटर थे। दोनों एक ही साथ रहते थे। खाना-पीना, रहना, चौबीसों घंटे।

उस वक्त के उनके कुछ संस्मरण बताएं।

उस समय वे संपादन करते थे और कभी-कभी कवि सम्मेलनों में कविता पाठ भी करते थे। साथ-साथ रहने पर हमारे घनिष्ठ संबंध हो गए थे। अटलजी की विशेषता थी कि जिस काम को वे हाथ में लेते थे, उसकी गहराई में जाने का उनका स्वभाव था। जब दैनिक के एडीटर बने तो उनको बहुत पढ़ना पड़ता था। सामयिक चीजों पर कमेंट्स भी लिखने पड़ते थे, किंतु काम इतना होता था कि पढ़ने का विशेष समय नहीं मिलता था, लेकिन रात्रि में मिल जाता था। उस समय मैंने देखा कि उनकी ग्रहण-शक्ति और स्मरण-शक्ति दोनों बहुत अच्छी थीं। एक बार पढ़ने के बाद फिर वह दिमाग में जम जाती थी और जो काम की चीज होती, उसको सुलेख करने का उनका एक अजब सा स्वभाव था। इतनी बड़ी किताब पढ़ने के बाद या कोई चीज पढ़ने के बाद, क्या चीज चाहिए, उसको सुलेख करना और उसी पर कमेंट्स करना, इससे अटलजी के जो एडीटोरियल थे, बड़े लोकप्रिय थे। इस प्रकार से हम लोग उस समय साथ थे। हम, दीनदयालजी मीटिंग भी करते थे, कंपोजिंग भी करते थे, मैनेजमेंट भी करते थे। तो उस समय एडीटर का मतलब खाली एडीटर नहीं था, सभी काम करने पड़ते थे। ऐसे जमाने में बड़ी कठिनाई होती थी। आर्थिक तंगी तो थी ही। जब संघ पर प्रतिबंध लगा, फिर अलग-अलग नामों से अलग-अलग जिलों से अखबार निकालने का सिलसिला चला।

सन् 1948 में?

हां, संघ पर प्रतिबंध लगने के बाद, तो यह सब अटलजी को करना पड़ता था, बनारस रहकर करते थे, इलाहाबाद रहकर करते थे, दिल्ली में आकर करते थे, तो सब जगह से यह काम उन्होंने बंद होने नहीं दिया। जो काम हाथ में लिया तो फिर उसको शिखर पर पहुंचाना उनका स्वभाव है। किसी भी चीज में कदम रखा, तो फिर दूसरे-तीसरे नंबर पर नहीं रहे। यह शुरू से

विराट् पुरुष

उनका स्वभाव है। फिर जनसंघ शुरू हुआ तो शुरू में तो ये जनसंघ में नहीं आए, ये संपादन ही करते थे। संपादन का काम सारा करना पड़ता था।

पत्रकार के रूप में?

हां, पत्रकार के रूप में, लेकिन कभी जरूरत पड़ती तो वे भाषण भी देते थे।

अच्छा वो भी साथ?

हां, डॉ. मुखर्जी के साथ। डॉ. मुखर्जी को देर हो गई तो पब्लिक को बनाए रखने के लिए। जो उनमें भाषण देने की कला है, प्रभावी व्यक्तित्व है, वह सबके सामने आ गया। जब कश्मीर का आंदोलन छेड़ा और ऐसा लगा कि इनको जाना ही है कश्मीर, तब इनको हम लोगों ने डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का पर्सनल असिस्टेंट नियुक्त कर दिया, ताकि वे कश्मीर की जेल में भी गए तो देश भर में अटलजी घूम करके यह बात कह सकें। इस ढंग से फिर राजनीति में उनका प्रवेश हुआ। अब जब राजनीति में प्रवेश हुआ तो सन् 1955 में एक बाई इलेक्शन हुआ लखनऊ में पार्लियामेंट का। उस बाई इलेक्शन में हम लोगों ने इनको खड़ा किया।

अटलजी को?

हां, अटलजी को। सन् 1955 में कांग्रेस की तरफ से नेहरू खानदान की एक महिला खड़ी हुई थी राजेश्वरी नेहरू के नाम से। पीएसपी की तरफ से त्रिलोक सिंह खड़े थे, जनसंघ की तरफ से अटलजी खड़े थे।

तिकोना मुकाबला था?

हां, कांग्रेस इलेक्शन में जीत तो गई, लेकिन अटलजी का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में स्थापित हो गया। उसी के बाद उनके पिताजी कैसर से पीड़ित हुए। उनके ट्रीटमेंट के लिए हम लोग उन्हें लखनऊ लाए, किंतु उनका स्वर्गवास हो गया। फिर सन् 1957 में हम लोगों ने अटलजी को बलरामपुर से खड़ा किया।

आम चुनाव में?

हां, आम चुनाव में वे तो जीत गए। सन् 1957 में उन्होंने संसद् में प्रवेश किया और आज तक वे संसद् में हैं। बीच में एक बार सन् 1962 में वे हार गए थे, तो राज्यसभा में आ गए थे, इस प्रकार वे लगातार 42 साल या 43 साल से संसद् में हैं।

नेहरूजी इनको पसंद तो करते थे, लेकिन इनको भाषण का अवसर नहीं देते थे। नेहरू के जमाने में हुक्मा सिंह स्पीकर इनको बोलने नहीं देते थे।”

जो कुछ वे बोलते थे, उसे सभी पसंद करते थे। पार्टी के स्ट्रेंथ के आधार पर ही चांस मिलता था, इंडीविजुवल के नाते तो नहीं मिलता था।

जब दीनदयालजी की हत्या हो गई, फिर अटलजी के ऊपर जिम्मेदारी आप लोगों ने डाली?
उनको अध्यक्ष बनाया था हम लोगों ने।

सुना है उस समय बहुत रोए थे। दुःख भी बहुत हुआ इनको।

कवि हृदय हैं, सेंटीमेंटल हैं, तो बहुत शॉक लगा न, जिस प्रकार से उनकी हत्या हुई।

हत्यारे कौन थे? क्या यह कम्युनिस्टों का काम था?

अब यह तो कहना बहुत कठिन है, लेकिन हुई हत्या। किसने की, क्यों की, यह पता नहीं चला। मिस्ट्री ही बनी हुई है। दीनदयालजी की हत्या के बाद जिम्मेदारी अटलजी ने संभाली। हिंदुत्व के कट्टर अभिमानी होने के बावजूद सारे देश की परिस्थितियों को समझना और वैचारिक दृष्टि से अपने सिद्धांतों पर अड़े रहते हुए, जो हिंदू की उदारता है उस उदारता को अटलजी ने कभी अपने से अलग नहीं होने दिया, इसलिए उनके व्यक्तित्व से हर विचार का और हर मजहब का आदमी प्रभावित होता है। यह अटलजी की विशेषता है कि अपने सिद्धांतों को न छोड़ते हुए सबको लेकर चलना। वे जहां कहीं भी जाएंगे अपना प्रभाव डाले बिना नहीं लौटेंगे। चाहे वे कवि सम्मेलन में जाएं, चाहे वे हंसी-मजाक की बैठक में जाएं, चाहे वे किसी सेमीनार में जाएं, चाहे किसी डायलॉग में जाएं, किसी पार्टी में जाएं, हर जगह अपनी छाप छोड़ देते हैं। यह उनकी विशेषता है। वे कवि हैं, वक्ता भी हैं, किंतु वे एक बड़े संवेदनशील व्यक्ति हैं। उन्हें किसी की पीड़ा सहन नहीं होती। यह उनकी एक बड़ी विशेषता है। कवि होने के साथ-साथ उनका विनोदी स्वभाव भी है। तो मजाक करना, हंसना, ये उनके स्वभाव में है। एक ही आदमी में इतने गुण, कवि भी हो, लेखक भी हो, वक्ता भी हो, सेवक भी हो, संवेदनशील भी हो और विनम्र होते हुए प्रभावशाली हो, ये सब गुण एक व्यक्ति में पाना बड़ा कठिन है। ये सभी गुण अटलजी में हैं। वे स्वाभिमानी बहुत हैं। अपने बारे में स्वाभिमान, हिंदू के बारे में स्वाभिमान, देश के बारे में स्वाभिमान, इस पर चोटें वे सह नहीं सकते, लेकिन चोट लगने के बाद भी विचलित नहीं होते। बदला लेने की प्रवृत्ति नहीं है। प्रतिक्रियात्मक कदम वे उठा नहीं सकते। अब ये सब बातें आजकल के जमाने में मिलना बड़ा मुश्किल हैं, जो उनमें हैं। किसी को धोखा देना, यह उनके नेचर में नहीं है। पसंद नहीं आएगी तो साफ कह देंगे, लेकिन जो चीज पसंद न आई हो, उसे न बताना और मौका पड़ने पर उसका बदला लेना, यह अटलजी के स्वभाव में नहीं है। यह मानवीयता का



विराट् पुरुष

गुण उनमें सहज ही देखा जा सकता है। बाकी तो सब चीजें दुनिया को पता हैं उनके बारे में। वे आज बहुत ही लोकप्रिय नेता हैं।

एशिया में और अंतरराष्ट्रीय स्तर के?

अंतरराष्ट्रीय स्तर के तो हैं ही, अंतरराष्ट्रीय समझ भी बहुत है। इतना ही नहीं, श्री नरसिम्हा राव ने तो कांग्रेस के जमाने में भी, भले ही ये विपक्ष के नेता थे, इनको जेनेवा भेजा। अंतरराष्ट्रीय मामलों को सुलझाना तो इनके स्वभाव में ही है। भारत में इन्हें सुपरमैन माना जाता है।



मानव विकास अनुकूल व्यवस्थाओं का पुष्पन

नानाजी, आप कहते हैं कि मैं लेखक नहीं हूँ, तो मंथन के प्रकाशन का विचार आपके मन में किस कारण आया?

आपातकाल के दौरान मैं 17 महीने लगातार जेल में रहा। जेल में न तो कोई समाचार-पत्र मिलता था और न ही कोई किताब। समय भी पर्याप्त होता था। फलतः अंतस्-मंथन का दौर प्रारंभ हो गया। मैंने सोचना प्रारंभ किया कि स्वयं की इच्छा न रहते हुए भी मैं राजनीति में आया, इसका परिणाम क्या हुआ? मैंने क्या सोचा क्या पाया, इसकी विवेचना की। अनुभव विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पूज्य डॉ. हेडगेवार ने जो सोचा था, उसके अनुरूप हम कार्य नहीं कर पा रहे हैं।

राजनीति में हमने संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली को अपनाया है। इस व्यवस्था में सरकार शासक की भूमिका में होती है, लेकिन उसे निर्वाचित प्रतिनिधियों की बजाय ब्यूरोक्रेट्स चला रहे हैं। मन में ऐसे कई सवाल उभरते चले गए। लोकतंत्र का संचालन किसे करना चाहिए और कर कौन रहा है? हुकूमत जरूरी है स्थिरता के लिए। पर राजशाही बदलती रहती है तो विकास की धारा जो निरंतर रहनी चाहिए, उसकी निरंतरता कैसे बनी रहेगी? क्या विकास के सारे कार्य सरकार द्वारा करना संभव है? जिन कार्यों को सरकार नहीं कर पाती, क्या उन्हें समाज नहीं कर सकता? इस मंथन से ही मंथन के प्रकाशन का विचार आया। पत्रिका का मंथन नामकरण भी इसी कारण हुआ।

नानाजी, मंथन के संपादन की दिशा क्या थी?

विकास कभी समाप्त न होनेवाला कार्य है, यह निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। हर एक पीढ़ी नई आएगी और विकासशील प्राणी होने के कारण मनुष्य स्थिर नहीं रह सकता। वह निरंतर विकास करता जाएगा। अब यदि व्यवस्था में उस विकास के अनुरूप परिवर्तन नहीं हुआ तो विकास न केवल कुंठित होगा, बल्कि गलत दिशा में भी संचालित हो सकता है। ऐसे में मानव विकास की इस निरंतरता को बनाए रखने और उसके पुष्पन हेतु संपूर्ण व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करते रहने का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। इस कार्य के लिए अध्ययन तथा इस समूचे प्रवाह को निरंतर अभिव्यक्ति प्रदान करना ही मंथन के संपादन की दिशा रही है।

मंथन, जुलाई-दिसंबर, 2004। राष्ट्रीय जीवन के तमाम मुद्दों पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा से हुई बातचीत के मुख्य अंश दिए जा रहे हैं।

विराट् पुरुष

नानाजी, क्या मंथन आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरता है?

मंथन में कई विषयों, जैसे आरक्षण आदि पर ऐतिहासिक सामग्री प्रकाशित हुई है, जो अत्यंत आसानी से उपलब्ध नहीं है। पर ऐसे जिन विषयों पर हमने विशेषांक निकाला, उन्हीं पर संभव हुआ दिखता है। कारण, इन विषयों पर हम सामूहिक चर्चा करते थे। विस्तृत विचार के लिए सेमिनार करते थे। परिणामतः सामग्री अपेक्षा के अनुरूप होती थी, किंतु इतना ही परिश्रम और न्याय हर अंक के साथ होना चाहिए था।

नानाजी, लगता है मंथन के लिए मंथन काफी चलता रहा?

व्यक्ति अपने अनुरूप ही संपादन पर भी छाप छोड़ता है। पी. परमेश्वरन, केवल रत्न मलकानी फिर देवेंद्र स्वरूप जैसे अपने परिवार के वरिष्ठ लोग मंथन के संपादन में रहे। पी. परमेश्वरन का आध्यात्मिक दृष्टिकोण रहा और देवेंद्र स्वरूप का ऐतिहासिक। उनके प्रयासों से मंथन पुष्ट हुआ, साथ ही उसकी पूरकता के अन्य अनछुए आयाम भी प्रतिबिंबित हुए।

नानाजी, आप कल्पक पुरुष हैं और समाज रचना के कार्य में लगे हैं। आज भी आप गहन प्रवास करते हैं। देश भर में आप मंथन के पाठकों से मिलते होंगे। मंथन के बारे में पाठकों की क्या राय है?

मंथन अकादमिक पत्रिका है, इसलिए पाठकों की प्रतिक्रिया विषय के अनुसार होती है। कई मुद्दों पर प्रकाशित हमारे अंकों की काफी प्रशंसा पाठकों ने हमेशा की है। हमें सदा उनका सहयोग भी मिलता रहा है, पर उपलब्ध सभी कुछ छापना है, इस प्रवृत्ति से अपने को बचाए रखना चाहिए।

नानाजी, गत चार वर्षों से मंथन का संपादन 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' द्वारा किया जा रहा है। आप कुछ कहना चाहेंगे?

आजकल मैं स्वयं पढ़ नहीं पाता। किसी दूसरे से पढ़वाकर सुनता हूँ, इसलिए पूरा मंथन पढ़ नहीं पाता। हमें मंथन के प्रारंभ की पृष्ठभूमि ध्यान में रखनी चाहिए और इसकी गुणवत्ता में निरंतर वृद्धि होती रहे, इसके लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

नानाजी, आपने कहा कि विकास कार्य सतत चलता रहता है, पर सरकारों में निर्णय करनेवाले नेता बदलते रहते हैं, ऐसे में केवल ब्यूरोक्रेट्स पर निर्भर न रहें और हर मंत्रालय को समाज अपने भीतर से सुझाव दे, लेकिन स्थिति भिन्न है। आज महात्मा गांधी, दीनदयालजी और जयप्रकाशजी का साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, पर सरकार चलानेवालों के पास इसे पढ़ने का समय नहीं है, ऐसे में वे मंथन क्या पढ़ेंगे?

देखिए, ऐसा नहीं है। मेरा मानना है कि सरकार चलानेवालों को व्यावहारिक होना चाहिए, पर व्यवहार की भी एक दिशा होती है। यह दिशा विकास की दिशा होनी चाहिए। वस्तुतः

गांधी, लोहिया, दीनदयालजी और जयप्रकाश को पढ़कर अपनी दिशा संतुलन को ठीक रखना होगा, ताकि दिशा गड़बड़ न हो जाए।

एक उदाहरण ध्यान में आता है। सन् 1956 की बात है। नेहरूजी ने सहकारी कृषि पर अध्ययन करने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल को चीन भेजा। दीनदयालजी को यह अच्छा नहीं लगा। उनकी दृष्टि से यह गलत पहल थी। उन्होंने मुझे इस प्रकरण पर ध्यान देने के लिए कहा। उन दिनों मैं लखनऊ में रहता था। चौधरी चरण सिंह से मेरे अत्यंत आत्मीय संबंध थे। मैंने उनसे इस विषय में जिक्र किया। चौधरी तो इस कार्य में माहिर थे। उन्होंने प्रतिनिधिमंडल की रिपोर्ट स्वयं भी पढ़ी, मुझे भी बताया। दीनदयालजी गहन अध्ययन करते थे। उन्होंने बताया कि को-ऑपरेटिव फार्मिंग तो कभी सफल हुई ही नहीं है। 14 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल के एक सदस्य कांग्रेसी थे और मेरे मित्र भी, उनसे विस्तार से चर्चा की तो उन्होंने हमारे पक्ष को ठीक बताया। परिणाम हुआ, चौधरी ने जब नागपुर सेशन में नेहरू से इस विषय पर प्रश्न किया तो वे निरुत्तर हो गए।

वास्तविकता यह है कि नेहरू ने स्वयं भी रिपोर्ट नहीं पढ़ी थी। ऐसे ही नेता लोग भी नहीं पढ़ते। जिस व्यवस्था में हम रचे-बसे नहीं हैं, वह अपने हित में होगी या नहीं, यह कैसे तय हो?

हमें अमरीका या चीन, कृषि या उद्योग कोई भी क्षेत्र हो, अपनी दिशा स्वयं विकसित करनी होगी। गांधीजी, दीनदयालजी देश के साथ एकात्म हो गए थे। उनका विस्तृत अध्ययन था। उन्होंने देश के विकास की अपनी दिशा (भारतीय अर्थनीति विकास की दिशा) के प्रारूप की कल्पना की थी। उसे समझना होगा। दीनदयालजी के इसी अध्ययन और गहराई को देखकर मैं उनका भक्त बना था और आज भी हूं।

नानाजी, जवाहरलाल नेहरू ने तो अपना एक प्रतिनिधिमंडल चीन भेजा था, वर्तमान सरकार तो योजना आयोग की सलाहकार समितियों में विदेशी प्रतिनिधियों को स्थायी सदस्य के नाते शामिल कर रही है। आप क्या कहना चाहेंगे?

मैं जानता हूं। सवाल है कि जब आपने आर्थिक विकास के विदेशी मॉडल स्वयं के लिए स्वीकार किए हैं, तो झक मारकर उनके प्रतिनिधियों को भी शामिल करना ही पड़ेगा। ये मॉडल हमारे देश में हुए प्रयोगों के आधार पर विकसित मॉडल तो हैं नहीं, जिससे कि हमारे पास भी इसके विशेषज्ञ मौजूद हों। चूंकि ये मॉडल हमारे देश के मौलिक चिंतन से उत्पन्न मॉडल तो नहीं हैं, तो परिणाम यही होना था। इन मॉडलों को विकसित करनेवालों ने स्वयं का विनाश किया है। अब वे हमें भी बरबाद करेंगे।

इस विषय पर नरसिंह राव से मेरी कई बार बहस हुई। मैंने कहा कि विकास के बारे में मनमोहन सिंह जो सोच रहे हैं, वह देश के लिए हितकारी नहीं होगा। मनमोहन और मोंटेक सिंह ने पाश्चात्य देशों के आर्थिक मॉडलों (वर्ल्ड बैंक) का अध्ययन किया है, जो हमारे यहां की हकीकत नहीं हो सकती, पर नरसिंह राव ने नहीं माना, फिर परिणाम तो यही होना था।

इस मॉडल से देश की गरीबी और बेकारी कभी दूर नहीं हो सकती। वास्तव में बेकारी और बढ़ेगी। औद्योगिक विकास का अर्थ श्रम के उपयोग को कम करना है, फिर बेकारी घटेगी कैसे?

विराट् पुरुष

नानाजी, आपने गांधी, विनोबा और दीनदयालजी के विचारों का अध्ययन करने के उपरांत चित्रकूट, बीड और गोंडा में विकास कार्य प्रारंभ किया था। आपके मॉडल और आज की अर्थनीति में कोई मेल हो सकता है?

बिलकुल नहीं, दोनों विपरीत हैं।

नानाजी, पिछली बार अटलजी जब चित्रकूट गए थे, तो कहा था कि विकास देखना है तो चित्रकूट जाइए। तब ऐसा लगा था, शायद सरकार की ओर से भी ऐसा ही विकास कार्य किया जाएगा।

कहना और कल्पना करना तो आसान है। आजादी के दौरान गांधीजी की बात माननेवाले, उनके इशारे पर काम करनेवाले अनेक नेता थे। कांग्रेस में उनकी तूती बोलती थी, पर गांधीजी को मानना और उनके विचारों को समझना, ये दो अलग-अलग बातें हैं। विचार तो व्यवहार में लाकर ही अनुभूत किया जा सकता है। आज देश में इस बात का अभाव है।

अभी बिहार में एक बड़ा सम्मेलन आयोजित किया गया था। आचार्य राममूर्ति, जिन्होंने जयप्रकाशजी के साथ लंबे समय तक कार्य किया है, आए थे। उन्होंने यह कहते हुए अफसोस जाहिर किया था कि हमने तो अपनी सारी जिंदगी लगा दी, पर देश का अपेक्षित विकास नहीं हुआ। मैं सम्मेलन में नहीं जा सका, पर भरत पाटक के नेतृत्व में एक टीम भेजी थी। वहां चंद्रशेखर (पूर्व प्रधानमंत्री) भी आए थे। उन्होंने कहा, “ऐसा नहीं है, विकास हुआ है, इसका उदाहरण चित्रकूट है। मैं वहां स्वयं गया था और यह सब मैंने अपनी आंखों से देखा है।” यह सुनकर आचार्य राममूर्ति को आश्चर्य हुआ।

वास्तविकता यह है कि चाहे गांधी हों या जयप्रकाश, विनोबा हों या लोहिया, लोगों की निजी पहल पर जोर नहीं दे पाए। एक तरह से जनता को सिखाने का ही प्रयास करते रहे।

चित्रकूट, बीड और गोंडा के प्रकल्प वहां के स्थानीय निवासियों के प्रयत्न, अनुभव और स्वयं की पहल पर आधारित हैं। पिछले पचास वर्षों से जहां लोग 40 किलोमीटर की दूरी से पीने का पानी लाया करते थे, आज वहां बड़े-बड़े जलाशय हैं। पीने का पानी तो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है ही, सिंचाई के साधन उपलब्ध होने के कारण लोग साल में दो-तीन अच्छी फसलें प्राप्त कर रहे हैं। विकास का समूचा दृश्य देखकर स्वयं अटलजी की आंखों में भी आंसू आ गए थे। यह विकास संभव है। मंथन को देश भर में ऐसे प्रयासों को अभिव्यक्ति देनी चाहिए।

नानाजी, मंथन की आज की संपादकीय टीम युवाओं की टीम है, कम अनुभववाली है। उन्हें आप कुछ संदेश देना चाहेंगे?

युवा हैं, अच्छा है, पर केवल पुस्तकीय अध्ययन से काम नहीं चलेगा। आवश्यक है कि इसके साथ वे स्थितियों का प्रत्यक्ष जायजा लें, अनुभव प्राप्त करें, फिर लिखें। मेरी शुभकामनाएं उनके साथ होंगी।

□

भारतीय अर्थव्यवस्था सहजीवन बने आधार

कभी राजनीति में रहकर देश की दिशा तय करनेवाले समाजसेवी नानाजी देशमुख आज मौजूदा राजनीति से आहत हैं। उनका मत है कि जब तक बदलाव की बयार गांव से नहीं बहेगी, तब तक देश के हालात नहीं बदलेंगे।

भारतीय राजनीति में आशा की नई किरण क्या है?

मुझे तो दिखाई नहीं दे रही। जिस देश में हर रोज भ्रष्टाचार बढ़ रहा हो, सत्तर फीसदी आबादी को जिस देश में नकार दिया गया हो, किसान आत्महत्या कर रहे हों, ऐसी स्थिति में क्या आशा की जा सकती है। यहां हर आदमी अपने बारे में सोचता है। किसी को भी देश की चिंता नहीं है। आजादी से पहले महात्मा गांधी ने भारत निर्माण का जो कार्य शुरू किया था, स्वतंत्रता के बाद सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उसे आगे बढ़ाना चाहा, परंतु भारतीय राजनीति के कुछ खास हाथों में चले जाने से सबकुछ अधूरा रह गया। भारत में राजनीति है कहां? राजनीति होती तो सहजीवन होता और सहजीवन होता तो देश की तसवीर यह नहीं होती।

क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद तेजी से बढ़ रहा है...

इस देश का अजीब हाल है। पहले पार्टी का नेता होता था, लेकिन अब नेताओं की पार्टी हो गई है। वोट के लिए नेता जातिवाद को बढ़ाकर समाज नीति को बरबाद कर रहे हैं। जितने चुनाव होते हैं, उतनी पार्टियां बन जाती हैं। सभी तथाकथित नेता सिर्फ अपनी पार्टी, पंथ, संप्रदाय और जाति के नेता के रूप में सिमटकर रह गए हैं। इसके लिए कोई और नहीं, वे खुद जिम्मेदार हैं। उनकी सोच इतनी संकीर्ण हो गई है कि वे दलगत राजनीति से ऊपर उठकर देश के सामने मुंह फाड़े खड़ी चुनौतियों का सामना करने लायक खुद को नहीं समझते। मौजूदा राजनीति में जिस तरह की सोच है, उसमें कोई भी सच्चा भारतीय होने का दावा नहीं कर सकता।

विराट पुरुष

राजनीति से अच्छे लोग क्यों दूर हो रहे हैं?

अच्छे लोगों का दूर होना कोई सवाल नहीं है, यह ऐसा खयाल है, जो सबके मन में आता है, लेकिन पहले कौन चले, इसकी प्रतीक्षा की जाती है। मैं राजनीति में व्यापक बदलाव का पक्षधर हूँ। मेरा मानना है कि बिना परिवर्तन सुधार असंभव है। इसके लिए सभी को मिलकर काम करना होगा। किसी को भारत का भविष्य देखना है तो चित्रकूट चले, वहाँ के पांच सौ गांव में दीनदयाल शोध संस्थान सहजीवन खड़ा करने का काम कर रहा है। सैकड़ों ऐसे गांव हैं, जहाँ आपसी लड़ाई बंद हो गई है, सब परस्पर सहयोग से रहते हैं। गरीब की मदद के लिए सैकड़ों हाथ उठ जाते हैं। हर बच्चा पढ़ने जाता है। देश से भेदभाव मिटाने, अमीर-गरीब की खाई पाटने का काम गांधी भी करना चाहते थे, आजादी के बाद सरदार पटेल ने भी किया और उसे आगे ले जाने के लिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की जो रूपरेखा बनाई थी, हम उसी के अनुसार चित्रकूट को मॉडल के रूप में देश में खड़ा करेंगे। जब सारा देश एक जैसा हो जाएगा तो दिक्कत अपने आप खत्म हो जाएगी। यह काम अभी छोटा दिख रहा है, लेकिन आनेवाला समय बताएगा कि हमने क्या किया है। जहाँ तक बात राजनीतिक शुद्धीकरण की है तो सुधार से जो बदलाव होगा, उससे खुद व खुद सब शुद्ध हो जाएगा।

क्या बुजुर्ग राजनीतिज्ञों को संन्यास लेना चाहिए?

मौजूदा राजनीति में जो युवा तबका है, क्या आप उसे दूध का धुला मानते हैं। राजनीति में आने के बाद वह भी बड़ों के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। राजनीति हो या कोई अन्य क्षेत्र, इस समय युवा जहाँ भी हैं, उनका लक्ष्य पैसा कमाना है। वे हर काम पैसे के लिए करना चाहते हैं। उन्हें अपने अलावा कोई नहीं दिखता। उन्होंने राजनीति को धन कमाने का जरिया बना लिया है। ऐसे में मौजूदा राजनीति में चाहे युवा हों या बुजुर्ग, जब सभी एक ही मकसद लेकर काम कर रहे हैं तो किसी के रहने और हटने से क्या फर्क पड़नेवाला है।

क्या राजनीति के लिए आयु सीमा निर्धारित होनी चाहिए?

ऐसा होना चाहिए, लेकिन आयु सीमा कौन तय करेगा। इसके लिए राजनीति करनेवालों को खुद पहल करनी होगी और वह करना नहीं चाहते। मैंने कहा था कि 60 साल के बाद राजनीति नहीं करनी चाहिए, लेकिन मानता कौन है? मैं भी राजनीति में था। इंदिरा गांधी को हराने के बाद राजनीति छोड़ दी। अब यह तय करने की जिम्मेदारी मौजूदा राजनेताओं की है कि वे सारी उम्र राजनीति करना चाहते हैं या निश्चित समय के बाद उसे छोड़ना ठीक होगा।

क्या संसदीय प्रणाली भारतीय लोकतंत्र की भावना को पूरा कर रही है?

इसकी अपेक्षा हम तब करें, जब हमारा अपना कुछ हो, संसदीय प्रणाली हो या भारतीय संविधान, सबकुछ उधार का है। हम आजाद कैसे हुए, इस पर तरह-तरह की व्याख्या है। हम

मानते हैं कि आजादी हमने हासिल की है, जबकि आजादी हमें दी गई है। आजादी के बाद देश को बेहतर बनाने के काम की शुरुआत हुई। सभी के सुझाव आए, लेकिन हमने अमरीका, रूस, फ्रांस जैसे देशों की नकल करना ठीक समझा। हमने विदेशी व्यवस्था में थोड़ा तोड़-मरोड़कर उस पर नया आवरण चढ़ा दिया। भला ऐसी व्यवस्था में लोकतांत्रिक भावना की पूर्ति की आशा कैसे की जा सकती है, जिसमें हमारा कुछ है ही नहीं।

इसमें सुधार का कोई रास्ता है?

जरूर है। कागज में हेरफेर कर देना विकल्प नहीं है। इसके लिए हमें खुद को बदलना होगा। भारत की मूल भावना समझनी होगी, उसी के हिसाब से चलना होगा। यह रास्ता कठिन है, इसलिए इस पर चलने की बजाय हम अपनी सुविधा के हिसाब से कानून बनाते-बिगाड़ते रहते हैं। भला ऐसे में सुधार की उम्मीद कैसे की जा सकती है? भारत के संवैधानिक और संसदीय प्रणाली को दुरुस्त करने के लिए देश को मिलकर पहल करनी होगी।

भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वावलंबी बनाने का मंत्र?

हम आजादी के बाद भारत के लोगों को अर्थव्यवस्था का मतलब या तो समझा नहीं पाए या फिर समझाना नहीं चाहते। लोग इसका मतलब पूंजीवादी व्यवस्था समझते हैं, इसलिए सब यह सोचकर चलते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था कुछ चुनिंदा हाथों में है। उन्हें ही सबकुछ करना है, इसमें हमारी कोई भूमिका नहीं है। जबकि ऐसा नहीं है भारतीय अर्थव्यवस्था हमारे घर से होकर गुजरती है। सहजीवन भारत का लक्ष्य है। इसी से होकर सारे रास्ते निकलते हैं। हम स्वावलंबी होंगे, तभी देश स्वावलंबी होगा। भारतीय राजनीति के लोग इसे रहस्यमय बनाकर रखे हुए हैं। ऐसा लगता है जैसे वह इस पर से परदा हटाना नहीं चाहते, क्योंकि उससे राजनीति-क्षेत्र में उथल-पुथल मचने की आशंका है। मैं फिर से कहना चाहूंगा कि चित्रकूट के पांच सौ गांव में जो काम हो रहा है, वह भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वावलंबी बनाने का सबसे बड़ा उदाहरण है।



ग्रामोदय जनाक्रोश मिटाने का समाधान

मौजूदा राजनीति को किस दृष्टि से देखते हैं?

मौजूदा राजनीति को मैं राजनीति ही नहीं मानता। सबकी अपनी-अपनी राजनीति है। इससे मुझे वितृष्णा होती जा रही है।

ऐसा क्यों है?

वास्तव में राजनीति मूल्यों के हिसाब से नहीं चल रही। नेताओं की सोच एकदम से बदल गई है। राजनीति का जो मकसद होना चाहिए, उससे नेता भटक गए हैं।

संघ की स्थापना के समय जो मूल्य तय हुए थे, भाजपा क्या उन पर चल रही है?

भाजपा चले या नहीं यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन मैं चल रहा हूँ। चित्रकूट क्षेत्र के गांवों में चल रहे हमारे कामों को देखिए आपको पता चल जाएगा।

इस समय विभिन्न राजनीतिक दलों में जो नेता हैं, उनमें नेतृत्व क्षमता के लिहाज से सबसे अच्छा नेता कौन है?

यह निर्धारण करना बहुत कठिन है। जहां तक मेरे विचार की बात है तो इनमें किसी को भी एक नंबर नहीं देता।

आपने कई बार कहा है कि समाज में आपसी रंजिश बढ़ रही है। इसकी वजह क्या है और समाधान क्या है?

हमने 500 गांवों में झगड़े मिटा दिए हैं। लोगों ने आपस में तय किया है कि झगड़े नहीं करेंगे। अगर हुआ भी तो उसे कचहरी नहीं ले जाएंगे। सहयोग से कार्य करेंगे। आपस में सहयोग नहीं रहेगा तो लोग कमजोर होंगे। तब ताकतवर इसका सीधा लाभ उठाएंगे। आदमी अकेला नहीं

26 अक्टूबर, 2008 को चित्रकूट में मा. नानाजी देशमुख ने कुछ चुनिंदा समाचार-पत्र प्रतिनिधियों से देश के मौजूदा हालात पर बातचीत की। बातचीत के संपादित अंश बाद में युगानुकूल नवरचना में प्रकाशित हुए। युगानुकूल नवरचना, अक्टूबर, 2009।

रहता। सुख से रहना है तो साथ रहना होगा और सुख से नहीं रहना है तो फिर झगड़ा होगा। ग्रामोदय से झगड़े की स्थिति खत्म होगी।

देश में बढ़ रहे आतंकवाद और नक्सलवाद से निपटने के लिए क्या योजना हो सकती है?

इसके समाधान का केवल एक रास्ता ग्रामोदय है। जब कार्य होगा, ऊर्जा सकारात्मक कार्यों में लगाई जाएगी, तब इस समस्या का समाधान स्वतः हो जाएगा। आतंकवाद और नक्सलवाद को जाति धर्म से जोड़कर देखना गलत है। हम इसकी उपज का कारण और समाधान जानते हैं, लेकिन उसे करने के लिए इच्छाशक्ति की कमी है। जिस दिन उस शक्ति से काम करने की इच्छा पैदा हो जाएगी, उस दिन समस्या अपने आप खत्म हो जाएगी।

आपका ध्येय क्या है?

समाज को एक करना ही मेरा ध्येय है। आज समाज का कोई ध्यान नहीं रखता। समाज में सहजीवन खड़ा करना मेरा लक्ष्य है और मैं उस काम में लगा हुआ हूँ।

सहजीवन का अर्थ?

कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। यही सहजीवन है और सहजीवन ग्रामोदय से ही संभव है।



ग्राम चेतना लेतृत्व अपनी जिम्मेदारी समझे

20वीं शताब्दी के नाम से हम जो तमाम योजनाएं कर रहे हैं, आजादी से पहले और आजादी के बाद ग्राम विकास की दृष्टि से उनका क्या महत्व है?

देखो, ग्राम विकास को महत्व दिया गांधीजी ने और उन्होंने सारा कुछ अपने हाथ में लिया। विचार कर योजना बनाई। 1909 से ग्रामों के आधार पर ही उन्होंने बातें कीं और प्रयास किया। आजादी मिलने के बाद ग्रामोदय की बातें जरूर होती रहीं, लेकिन व्यावहारिक रूप से ग्राम अधिकाधिक पिछड़ते चले गए। आजादी के 50 वर्षों में शहरों का बड़ी तेजी के साथ विकास होता रहा। शहर सजे, धजे, चमके। गांव और शहरों में इतना अंतर हो गया है, गांव के लोगों को गांव में रहने का ख्वाब ही पसंद नहीं आया। वे भी शहरों में दौड़ने लगे। आजादी के बाद ग्रामोदय को कितना महत्व एवं किस स्तर का महत्व दिया गया है, वह केवल मतदाताओं की अधिक संख्या के कारण। ग्रामों में मतदाता अनेक हैं, इसलिए हर एक नेता कहता है कि मैं तो ग्रामवासी हूं, किसान हूं। कहता जरूर है, लेकिन वस्तुतः आज देश में बड़े किसानों का अस्तित्व वैसा ही है, जैसे जमींदारी प्रथा में आजादी से पूर्व। जमींदारी प्रथा आजादी से पूर्व उन लोगों के पास थी, जिनके पास सैकड़ों नहीं, हजारों एकड़ जमीन रही है। तो यह सब विकास का नाटक हो रहा है।

आज हम देखेंगे, लोकसभा में या विधानसभा में सब दल एक-दूसरे से लड़ते हुए भी एकमत होते हैं। ये विधानसभा के सभासदों का या लोकसभा के सांसदों का वेतन बढ़ाने, भत्ता बढ़ाने में सब एकमत हो जाते हैं, लेकिन आम लोगों के फायदे के लिए वे लोग एकमत नहीं होंगे। गलत बात का विरोध जरूर किया जाना चाहिए, गलत बात को कभी बरदाश्त नहीं करना चाहिए, लेकिन अच्छी बात किसी ने नहीं कही जो बात आम लोगों के भले की है, उसमें सब लोगों को एकमत होना चाहिए। गुलामी से आजाद होने के बाद इस बात पर हम लोगों ने विचार किया कि हर एक का अपना या अपने पालकों का जो हित है, वह राष्ट्रहित, जनहित से बड़ा हो गया।

नानाजी, मैं जानना चाहता हूं कि आपकी दृष्टि में ऐसी कौन सी वजह रही है, जिससे हमारे गांव शहरों के निरंतर गुलाम होते चले गए?

मैं गांवों को शहरों का गुलाम तो नहीं मानूंगा, लेकिन हिंदुस्तान आजाद होने के बाद जो नेता

हो गए, उनको अपनी सुरक्षा की चिंता अधिक है, उनको अपने सुख-चैन की चिंता अधिक है, जबकि गांधीजी ने कहा था कि देश आजाद होने के बाद शासकों को आम लोगों जैसा रहना चाहिए। यहां तक कि गांधीजी की इच्छा थी कि राष्ट्रपति भवन सिर्फ राष्ट्रपति का ही नहीं रहेगा, लेकिन इन सब चीजों को छोड़कर यह तय हुआ कि भाई अंग्रेज लोग जिस शान से रहते हैं, हुकूमत करनेवालों को उसी शान से रहना चाहिए। शिक्षक बन करके काम करते तो उनके लिए हम समझते। विदेशी लोगों के लिए खतरा हम समझते। लेकिन व्यक्तित्वकर्ता के लिए इतनी सुरक्षा, वे दिल्ली में रहेंगे तो वहां भी पुलिस के 10-15 जवान उनके घर की सुरक्षा में और आम आदमी की सुरक्षा तो होनी ही नहीं है।

गांव अपने पिछड़ेपन और शोषण के लिए कहां तक जिम्मेदार हैं?

गांववालों का नेतृत्व जिम्मेदार लोग करते और अपना दायित्व निभाते तब तो हम उन्हें जिम्मेदार मानते।

तो गांव का नेतृत्व क्यों नहीं हो पाया?

गांव में नेतृत्व इसलिए नहीं हो पाया, क्योंकि देश का नेतृत्व नेताओं ने अपने कब्जे में कर लिया है। जो बल को, पार्टी को और व्यक्ति को महत्व देता है। आज तो मुझे लगता है कि देश में पार्टी के नेता नहीं, बल्कि नेताओं की पार्टी है। ऐसी स्थिति में गांव के आदमी को कौन पूछता है।

मेरे पूछने का मतलब यह था कि गांव में सामाजिक चेतना के लिए गांव का आदमी किसे पुकारता है?

इस देश की आजादी के लिए लड़नेवाले जो लोग हैं, उन्होंने तो सारी शक्ति गांव से पाई, इसलिए गांव तो सामाजिक चेतना के केंद्र हैं, वे क्यों किसी को पुकारेंगे।

क्या वे स्वयं सहायक तथा कर्तव्य के प्रति जागरूक हों?

वे सहायक तो थे, पर राजा लोगों को सहायता नहीं मिली गांव से। ये लोग गांव के थे, वकील बन गए। कलकत्ता गए, नेता बन गए। ये सब लोग जो हैं, मूल इनका गांव था, लेकिन इन लोगों ने आजादी आने के बाद वतन की बात नहीं की। कहीं धर्म की, कहीं ऊंच-नीच की, कहीं ईर्ष्या की बातें होने लगीं। उनका सोचने का रवैया वही बन गया। आम लोगों में अपने प्रति आत्मसम्मान बढ़ाने के लिए कोशिश करनी चाहिए। जिनको देश के नए नागरिक बनाना है, वही जब नौकर प्रवृत्ति से भरे होंगे तो यह होगा कैसे?

हमारी जो सामूहिक चेतनाएं हैं या हमारा जो दर्शन है, उसमें बहुत पहले से यह बात कही गई है कि शहर वसंत बन गया। तो क्या शहर को विशिष्ट मानना हमारी परंपरा है? क्या यह उचित है?

विराट् पुरुष

सच बात क्या है कि यह जो हम कहते हैं वह नई दृष्टि से कहते हैं। सब चीजों का प्रयोग एक समान करना उचित नहीं। देश आजाद होने के बाद नेतृत्व क्या सोचता है, किसकी सत्ता है, इस पर विचार आवश्यक है, क्योंकि हजार साल विदेशियों के गुलाम रहने के बाद भी हम संघर्ष करते रहे। संघर्ष भी हम नेतृत्व के अंतर्गत ही करते थे। आजादी के पहले जो भी नेतृत्व था, अपने को बड़ा बनाकर अपने सुख चैन को छोड़कर सोचता था और जो आम लोग थे, उनसे भी ज्यादा कष्ट सहता था। उनसे जगह प्राप्त करता था और उनसे भी ज्यादा साहस दिखाता था। तब नेताओं के प्रति श्रद्धा आम लोगों में पैदा होती थी। जब इस प्रकार की श्रद्धा आम लोगों में पैदा हो तो ऐसा व्यक्ति गांव-शहर के प्रति सम दृष्टिकोण रखेगा। क्या आज लोगों में यह सम्मान का भाव पैदा होगा? सियासत ही बड़ी होने से क्या होता है? इन सियासतों के होने पर भी तो हम गुलाम थे। सियासत को व्यवहार में लानेवाला नेतृत्व हो, वह नेतृत्व किस प्रकार के काम का हो, इसके ऊपर दृष्टि डालनी होगी।

नानाजी, आजादी के बाद से अब तक जितने भी लोकसभा के चुनाव हुए हैं, उनमें से ऐसा कोई चुनाव नहीं हुआ कि चुने गए 30 से 35 प्रतिशत सांसदों के पते गांव के न हों। इनके डक के पते गांव के हैं। जबकि व्यवहार में गांव हमेशा उपेक्षित रहा। तो फिर 30-35 प्रतिशत जो गांव के पते हैं, वह क्या छल है?

छल नहीं है। वह तो ठीक है कि 30-35 प्रतिशत पते गांव के हैं, लेकिन उनके दिल में गांव के लिए कोई प्यार नहीं बचा।

वजह?

वही कि हमको सत्ता मिली, हम खुशहाल रहें, सुख से रहें, दुःख जाए, सुख आए। मेरे बच्चे कैसे रहें? आज तक उन बड़े लोगों को लगता है कि मेरे बच्चों को अंग्रेजी भी नहीं आई तो दुनिया की प्रतिस्पर्धा में आगे नहीं रहेंगे। ये जो सारे बड़े लोग हैं, इनके बच्चे ऐसे स्कूलों में पढ़ते हैं, जिनमें खूब पहचान हो। 30-35 प्रतिशत गांव के अंदरवाले जो लोग हैं, वे गांव से समर्थ होकर लोकसभा का सदस्य बनने के लिए तो काम करते हैं, लेकिन स्वयं गांववाले रहते नहीं।

लेकिन गांव इसका बदला अगले चुनाव में क्यों नहीं लेता है?

गांव के लोग तो अपने मतलब के लिए ऐसी जातियों का आदमी खड़ा करते हैं, जो जातियां प्रभावशाली हैं। नेता पूरे प्रकार से परंपरागत चीजों का फायदा उठा लेते हैं। प्रारंभ में ऐसा व्यक्ति लोगों को लालच देकर नेता बनने के लिए अपनी बात को बढ़ाकर व्यवहार करता है। वह कहता है कि मैं तो तुम्हारी जाति का हूं, तुम्हारे बीच ही मुझे रहना है। उनके जो एजेंट हैं, लोगों को खूब खिलाते-पिलाते हैं। भोली जनता उसके चाल में आ जाती है और वह पांच वर्ष के लिए फिर जनता को भूल जाता है।

मतलब, यह लगातार बरगलाते रहने की परंपरा है?

बिलकुल बरगलाने की ही, विकास की नहीं।

क्या होना चाहिए इस परंपरा को खत्म करने के लिए? किसी गांव के व्यक्ति ने यह क्यों नहीं किया?

देखो बात तो सही है। ये नेतागिरी आम लोगों को केवल लक्ष्य बनाती है, लेकिन नेता लोगों की क्षुधा किसी और ही चीज की होती है।

आनेवाले समय में क्या यह परंपरा खत्म होगी?

देखिए, यह परंपरा तो मुझे लगता है अपने लोगों की नई सोच के ऊपर निर्भर है। क्या नई सोच पैदा होगी? क्या नया नेतृत्व पैदा होगा? आज की स्थिति में मुझे भी कुछ खास आशा नहीं है।

फिर आप संभावना किस आधार पर व्यक्त कर रहे हैं?

संभावना के बिना तो सत्ता चल ही नहीं सकती। आप मुझे बताइए कि इंदिरा गांधी के बाद इस देश को क्या हो गया है? उसके बाद व्यक्तिवाद चल रहा है, परिवारवाद चल रहा है, जो बातें चल रही हैं, ये सब राष्ट्रीय भावना से काम कर रहे हैं, ऐसा मुझे तो दिखता नहीं। परिवारवाद और जातिवाद गलत है। देश के लिए फायदेमंद नहीं है, तो भी चल ही रहा है।

ये सब तो 50 सालों से चल ही रहा है। गांव का शोषण निरंतर बढ़ रहा है। क्या आपको यह लग रहा है कि ये सब आगे नहीं चलेगा या चल नहीं पाएगा?

देखिए जो चल रहा है, वो चलता रहेगा। रोज डकैतियां हो रही हैं। रोज बलात्कार हो रहे हैं। रोज चोरियां हो रही हैं। आज पुलिस इनको संभाल नहीं पा रही है। आखिर सरकार के पास कौन सी कमी है, नौकर नहीं हैं। ये नौकरशाही ही दिनोदिन बिगड़ती जा रही है। तो कौन से तरीके से देश को संभालें? पैसा कहां से आए?

शहर गांवों को इतनी नीची नजर से देखने लगे हैं तो क्या इसका कोई असर होगा?

ये सभी अपनी विफलता छुपाने के तरीके हैं। सत्ता या शहर के या शहर की सत्ता के। अपनी विफलता छुपाने के लिए दूसरों को गाली देना गुलामी के काल की मानसिकता है। आज भी चल रही है। आज आप देखें, सब पार्टियां एक-दूसरे को गाली देती हैं और जब स्वयं हुकूमत में आती हैं तब सत्ता कौन चलाता है? हर एक गड़बड़ी के लिए दूसरों को गाली देना अपनी अयोग्यता है, अपनी नाकाबिलियत है।

कला के क्षेत्र में भी गांव का प्रतिनिधित्व कम क्यों होता जा रहा है?

आज गांव से आने के बाद गांव को भूलना ज्यादा दिक्कत का मामला नहीं है, क्योंकि यदि आदमी मां बाप को भूल सकता है तो गांव को भूलना कौन सी बड़ी बात है।

विराट् पुरुष

ऐसे माहौल में गांव को बचाने का क्या तरीका है?

गांव ही सबको बचाएगा। शहर तो देश को खा गया। गांव ही देश को बचाएगा। मेरे सामने चिंता दूसरी है। जिसकी तरफ आप पत्रकारों का ध्यान नहीं है। आप सबको पता है कि सोवियत रूस किसी दूसरे के खत्म करने से खत्म नहीं हुआ। वह अपने ही कारण गया। अगले 20-25 साल में सबकुछ बदलनेवाला है। क्या बदलनेवाला है? मानवता के आधार पर आर्थिक व्यवस्था, मानवता के आधार पर शैक्षणिक व्यवस्था, मानवता के आधार पर सब प्रकार की व्यवस्था। गांव में ही पैदा होनेवाला आदमी गांव में ही मरता है तो उसके घर का चूल्हा नहीं जलता 3 दिन। अड़ोस-पड़ोस के लोग खिलाते हैं। शहर में होता तो कोई पूछता तक नहीं। गांव में यह जो मानवता है, यही मानवता सारे संसार को बचाती है। मेरा विश्वास है, इसलिए मैं गांव में हूँ।

अभी तक ग्रामनिष्ठा के प्रति एक साहस भरा कल नहीं दिख रहा। शहर सुख के पदचिह्नों पर ही क्यों अग्रसर हो रहा है, जिसका आधार उपभोक्तावाद है?

आप देखना ही नहीं चाहते। आंख बंद करके देखेंगे तो दिखेगा थोड़े ही। मानव मात्र के लिए 500 गांव के अंदर उद्योग लगाना चाहता हूँ। अल्टरनेटिव मॉडल 5-7 साल में खड़ा हो जाएगा।

जो आप कह रहे हैं, ये बहुत आसानी से तो नहीं होगा। गांव और शहर के अंतर्विरोध का क्या होगा?

पहली बात आसानी से कुछ नहीं होता। आसानी से तो इनसान जिंदा भी नहीं रह सकता। दूसरा अंतर्विरोध का सवाल ही नहीं। यह सवाल डेवलपमेंट के अंतर्विरोध का भी नहीं। हम किसी का नुकसान नहीं चाहते। हम सबका भला सोचते हैं। आज मैं बताता हूँ शहर के लिए खाना गांव से आता है, शहरवाला पैदा नहीं करता। शहर में क्या है कि कोई भी कारखाना चलाओ, परंतु सारा कच्चा माल तो गांव में मिलता है। चाहे खदान का हो, सब गांव में मिलता है। आज दुनिया जो शान से जिंदगी बिता रही है, वो गांव के आधार पर ही बिता रही है। इसका अनुभव तो गांव में रहकर ही किया जा सकता है। जिस प्रकार आप अपना जीवन खड़ा करेंगे, उसी प्रकार आप लोकप्रिय होंगे। आज तक कोई खड़ा ही नहीं है और न कोई कोशिश कर रहा है। गांव के लोग इतने अच्छे हैं। मैं आपको बताता हूँ कि दुनिया भी बदल करके रख देंगे गांव के लोग। यह ग्रामोदय नहीं, विश्व उदय होगा।

इसकी प्रक्रिया क्या होगी?

प्रक्रिया शुरू हो गई है। यह दिमाग से समझने की चीज है, आंखों से देखने की नहीं। आप पत्रकार दिमाग से सारी बातें करते हैं। फुरसत नहीं तो करोगे क्या? रहना तो चाहोगे दिल्ली में। गांव में रहोगे तभी तो गांव की बात करोगे।

आप दुनिया को आगे ले जाएंगे। क्या दुनिया का विकास गांव के जरिए होगा?

आज दुनिया का जीवन गांव पर चल रहा है। आप बताओ, बिना खाए इनसान जिंदा रह सकता है? खाना कहां से आता है? हम देखते नहीं हैं। आज गांव के कारण सारा संसार जिंदा है।

अभी भी शहर गांव की बदौलत जिंदा हैं और 100 साल पहले भी थे, लेकिन अब गांव का तो लगातार शोषण हो रहा है, क्यों?

कोई शोषित नहीं होगा। गांव जब अपने को समझेगा तब ठीक हो जाएगा। शोषण किसका होता है, जो समझता नहीं है। जो समझदार है, उसका शोषण कोई नहीं कर सकता।

तो फिर अचानक गांव में समझ कैसे आएगी?

अब कैसे आएगी, हम जो काम कर रहे हैं, उससे आएगी। हमने देखा, शहर के आदमी को समझाओ, उसको समझ में नहीं आता है, पर गांव के आदमी को समझाओ, उसकी समझ में आ जाता है और वह करने लगता है। शहर का आदमी कर नहीं सकता। आपको कहा कि सुबह चार बजे उठो तो आप उठ नहीं सकते। गांव का आदमी उठ जाता है। उसको बताना नहीं पड़ता, उसके लिए घड़ी की आवश्यकता नहीं होती। अलार्म भी नहीं चाहिए, क्योंकि गांव के आदमी के दिमाग में आई हुई चीज वह करने लगता है और आपके दिमाग में आ भी जाए, लेकिन आपने कभी करके देखा ही नहीं। सुबह उठ करके पढ़ना है तो अलार्म बजता है तो उसको दबा देते हैं। गांव के लोग ऐसा नहीं करते।

यानी यह चेतना आ रही है?

आएगी नहीं, आ चुकी है।

यानी ग्रामोदय होगा?

होगा नहीं, हो रहा है। 500 गांव को हमने 100 केंद्रों में बांटा है। ये 100 ग्राम विकास केंद्र हैं और एक-एक विकास केंद्र में 5-5 गांव हैं। उनमें सबसे बड़ा धंधा खेती है, लेकिन हमारे देश में लगभग 80 फीसदी किसान अलाभकर जोतवाले हैं। ये 80 फीसदी अलाभकर जोतवाले किसान यह दर्शा रहे हैं कि हमारे खेतों पर बहुत बड़ी आबादी निर्भर हो रही है। 33 करोड़ एकड़ खेती लायक जगह पर 74 करोड़ जनसंख्या निर्भर हो रही है और इसके कारण सर्वसाधारण हिस्सा खुशहाली की जिंदगी किसी भी ढंग से निर्माण नहीं कर सकता, इसलिए खेती का बोझ घटाने के लिए गांव न छोड़ते हुए गांव की अन्न के अतिरिक्त जो आवश्यकता है, उसे पूर्ण करने के लिए छोटे-छोटे उद्योग शुरू करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से हमने यहां उद्यमिता विद्यापीठ शुरू किया है, जिसमें गांव के युवक-युवतियों को हम ट्रेनिंग देते हैं। जिससे वे ट्रेनिंग के आधार पर गांव में रह सकें और अपने-अपने उद्योग शुरू कर सकें।

विराट पुरुष

उद्यमिता विद्यापीठ में किस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा रहा है?

किसी इलाके से उपलब्ध कच्चे माल को तैयार माल के रूप में उसी इलाके में कैसे अपनाया जाए, यह प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अब देखो, ये भेड़ें चर रही हैं। इनसे सब ऊन चली जाएगी। कहीं उसका धागा बनेगा। फिर वह वापस मिर्जापुर, भदोही आदि जगह जाएगा। तो ये सारी उलटी दुनिया चल रही है। तो इस दुनिया को सीधे रास्ते पर चलाने के लिए इस प्रकार के उद्योग हम करा रहे हैं कि जो चीज जिसके लिए उपयोगी हो सकती है, उसी जगह पर वही ट्रेनिंग हम दें। हमारा जो उद्यमिता विद्यापीठ है, वहां कौन कितना पढ़ा-लिखा है, इसके ऊपर हम प्रवेश नहीं देते। कौन अपने गांव के लिए काम कर सकता है, उसको ट्रेनिंग दी जाती है।

आम तौर पर ट्रेनिंग कितने दिन की होती है?

4 महीने, 6 महीने और 1 साल। एक साल से ज्यादा की नहीं होती।

समस्या यह आती है कि प्रशिक्षण लेकर काम करना है तो पैसों की जरूरत होती है। तो इस ओर भी आपकी तरफ से कुछ मदद की जाती है?

देखिए, इसके लिए भी पहले से व्यवस्था मौजूद है। बैंक से उसके लिए पैसा मिलता है। सरकार उसकी मदद करती है। बेचारे बेपढ़े-बेलिखे होने के कारण जानकारी नहीं रखते, इसलिए दीनदयाल शोध संस्थान अपने प्रभाव से भी करा देता है। माल ऐसा तैयार करना, जो बाहर भी जा सकता है और उसके मानदेय की व्यवस्था, उन्हीं में से किसी जवान को पढ़ा-लिखाकर वह मार्केटिंग का काम सौंपकर की जाती है।

व्या स्वास्थ्य क्षेत्र में भी आपका कोई प्रयास चल रहा है?

इस क्षेत्र में कई प्रकार के प्रयास चल रहे हैं। एक ऐसा प्रयास चल रहा है कि आदमी की जीवन पद्धति ऐसी हो कि उसको बीमार पड़ने की जरूरत ही न हो। दूसरा प्रयास यह है कि गांव के लोगों को जो आम बीमारियां होती हैं, उनके लिए एक 'दादी मां का बटुआ' तैयार किया गया। उसमें सारी दवाइयां हम अपने यहां तैयार करते हैं, रसशाला में। उसी का हमने बटुआ तैयार कर लिया है। 25 दवाइयों का इसमें संकलन है। साधारण बीमारियां उन दवाओं से ठीक हो जाती हैं और जिसको समाज की सेवा करने की इच्छा हो, बिना पैसे लिए ही उनको प्रशिक्षण देते हैं। दो-चार घंटे में समझ में आ जाता है। गांव के कई लोगों को फायदा हो रहा है। सब दवाइयां आयुर्वेदिक हैं। उनसे कुछ नुकसान नहीं होता, गलती से भी कोई दवाई दे दी तो उससे नुकसान नहीं होता, फायदा ही होता है।

□

अक्षय गांव स्वावलंबन बिना संभव नहीं

नानाजी, 1835 में तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर जनरल चार्ल्स मेटकाफ ने कहा था, 'मुझे हर उस प्रवृत्ति से डर लग रहा है, जिससे ग्रामीण जीवन नष्ट हो सकता है।' आपके विचार में वे किन प्रवृत्तियों को देख रहे थे?

मेरे विचार में भारतीय ग्रामीण जीवन कभी नष्ट नहीं होगा। ऐतिहासिक दृष्टि से ही ऐसा रहा है। और भारतीयता का वातावरण भी ग्रामीण जीवन पर ही आधारित है। ग्रामीण जीवन नष्ट नहीं होगा बल्कि फलेगा-फूलेगा।

तो क्या आप गांधीजी के इस कथन से असहमत हैं कि अगर भारतीय ग्राम नष्ट होंगे तो भारत भी नष्ट होगा?

मेरे विचार में न तो गांव और न ही भारत नष्ट होने जा रहा है।

आप ऐसा क्यों मानते हैं?

मैं ऐसा इसलिए कहता हूं कि आप पूरे विश्व को ले लीजिए, पूरी धरती को ले लीजिए, आधार गांव ही है, न कि शहर। शहर तो उपभोग का केंद्र हैं और गांव प्राकृतिक संसाधनों के स्रोत। इनसान पूर्ण रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। शहर वास्तव में उत्पादन का केंद्र भी नहीं है। उत्पादन के लिए भी सबसे पहले प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता है, जो केवल गांवों में पाए जाते हैं।

आधुनिक शहरीकरण के संदर्भ में लोकतंत्र की परिभाषा कैसे खरी उतरती है? गांव लोकतंत्र के केंद्र में रहें, यह कैसे निश्चित किया जा सकता है?

शहरीकरण या लोकतंत्र का जो भी आधुनिक संदर्भ हो, जब हम शहरी जीवन की ओर नजर डालते हैं तो साफ हो जाता है कि यह ग्रामीण क्षेत्रों पर ही निर्भर करता है। जहां तक कृषि का प्रश्न है, कोई भी अनाज के बिना जी नहीं सकता। यह गांवों में पैदा होता है। अनाज उत्पादन दिल्ली, मुंबई, न्यूयॉर्क, वॉशिंगटन या लंदन में तो हो नहीं सकता। उद्योगों के लिए जंगल,

जाने-माने डॉक्यूमेंटरी फिल्म निर्माता नीलिमा माथुर और प्रमोद माथुर को दिया गया साक्षात्कार, जिसका संपादित अंश अप्रैल, 2003 में दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया था।

विराट् पुरुष

खदानें, पशु-जन्य उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों में ही होता है। इसलिए शहरीकरण का विचार अपने आप में पूर्ण नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि भविष्य में शहरी जीवन से ग्रामीण जीवन की ओर जाना पड़ेगा। क्योंकि शहरी जीवन कृत्रिम है, प्राकृतिक नहीं।

हम परस्परपूरकता का संदर्भ व्यावहारिक जीवन में कैसे ला सकते हैं?

हम इसे चित्रकूट में अपना रहे हैं और मुझे खुशी है कि इसमें सफलता मिल रही है।

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि पश्चिम की एकपक्षीय विकास की विचारधारा ने जैवीय और सांस्कृतिक बहुविविधता को नष्ट कर दिया है?

जब आप जैविक और सांस्कृतिक विविधता की बात करते हैं तो यह केवल ग्रामीण भारत में ही संभव है। आपको सौर ऊर्जा की आवश्यकता है। सूर्य के बिना जीवन नहीं। प्रदूषण के कारण शहरी जीवन में यह उपलब्ध नहीं। गांवों में खुलकर उपलब्ध है।

इस पूरी परियोजना में शहरी केंद्रों, जैसा कि प्राचीन काल में धौलावीरा, मोहनजोदड़ो, हड़प्पा संस्कृति में था, को भी रखा जाए तो?

शहरी केंद्रों को हम नकार नहीं रहे। शहरों और गांवों के बीच परस्परपूरकता आवश्यक है। अगर आप केवल शहरीकरण की बात करते हैं तो यह संभव नहीं होगा। इस समस्या के और भी बहुत सारे पक्ष हैं।

विकास के पश्चिमी मॉडल को शक की निगाह से देखा जाता है कि यह स्थानीय परंपराओं और संस्कृति के लिए खतरा है। राष्ट्रीय स्तर पर इसका क्या समाधान हो सकता है?

देखिए, स्थानीय परंपराओं और स्थानीय संस्कृति को बाधा नहीं मानना चाहिए। पूरा विश्व परस्परपूरकता पर आधारित है। एक समाज में एक ही परिवार नहीं होता। एक गांव में एक ही परिवार नहीं होता। 10-15 परिवार तो साथ आते हैं। मनुष्य अकेले खाकर संतुष्ट नहीं होता। मनुष्य को बांटने से सुख मिलता है। मनुष्य को घर चाहिए। अन्य सुविधाएं भी चाहिए, जो प्रकृतिदत्त नहीं हैं किंतु मनुष्य स्वयं निर्मित करता है। यह कार्य केवल मनुष्य कर सकता है, अन्य प्राणी नहीं। आप पर भी यह लागू होता है। आप डॉक्यूमेंटरी बना रही हैं। आपको कैमरा, माइक्रोफोन, लाउडस्पीकर सब चाहिए। इसे बनाना एक आदमी के बस का नहीं। इसलिए आविष्कार के लिए, निर्माण के लिए परस्परपूरकता की आवश्यकता है।

परंतु आज औद्योगीकरण की प्रक्रिया वैश्वीकरण से जुड़ चुकी है। क्या हम फिर एक प्रकार के पश्चिमी आधुनिक प्रौद्योगिक साम्राज्यवाद के खतरे की ओर नहीं बढ़ रहे?

वैश्वीकरण कोई नया विचार नहीं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा हमारे यहां गांवों से परिवारों

तक और परिवारों से व्यक्ति तक मानी जाती थी। क्योंकि हम मानते हैं कि भावनात्मक रूप से हम एक हैं। अलग-अलग देशों में भिन्न मौसम हैं, भिन्न प्राकृतिक संसाधन हैं, भिन्न सभ्यताएं हैं और भिन्न आदतें हैं। परंतु एक समानता है। वो है—ईमानदारी। चाहे अमरीका से हों, अफ्रीका से हों या रूस से, सबके पास भावनाएं हैं। यदि किसी को कष्ट में देखते हैं तो उसकी मदद के लिए हम महसूस करते हैं। ये भावनाएं पूरे विश्व को जोड़ती हैं। वैश्वीकरण की धारणा कृत्रिम नहीं, भावनात्मक है। अब अमरीका सब पर अधिकार चाहता है। यह वैश्वीकरण नहीं शोषण है।

लेकिन नानाजी, यह बहुत आदर्शवादी विचार है। आप समझते हैं, इसका आज के युग में कोई अस्तित्व भी है?

माफ कीजिए, आदर्श विचार ही सच्चा विचार है। समस्या यह है कि किसी ने निर्णय ले लिया कि आदर्श फालतू है, अव्यावहारिक है। यह बिलकुल गलत है। आदर्श व्यावहारिक है। यदि मैं आपकी भावनाओं की कद्र करता हूं तो मैं आपकी खुशी, प्रगति का खयाल रखूंगा। अगर ऐसा नहीं होता तो यह वैश्वीकरण नहीं सिर्फ शोषण है।

क्या आप आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण का अंतर स्पष्ट करेंगे, विशेषतः ग्रामीण संदर्भ में?

माफ कीजिए, आधुनिकीकरण की बात नहीं है, मानवीयकरण की बात है। मनुष्य भावना प्रधान प्राणी है, अर्थप्रधान नहीं। आर्थिक व्यवस्था आवश्यक है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। परंतु अर्थव्यवस्था भावनाओं को ध्यान में रखते हुए, यानी सबका भला, केवल स्वयं का नहीं। यह विचार होना चाहिए। इसी दिशा में दीनदयाल शोध संस्थान कार्य कर रहा है।

गांधीजी ने एक बार कहा था—ऐसी अर्थव्यवस्था, जो व्यक्ति का नुकसान करे, अनैतिक है, पाप है। क्या हम उसी चंगुल में फंस गए हैं?

मुझे ऐसा ही लगता है। मैं कहता हूं, कुछ बंटा हुआ नहीं है। व्यक्ति, समाज सब जुड़ा हुआ है। अर्थव्यवस्था को मानवीय भावनाओं से अलग नहीं किया जा सकता। मनुष्य को भोजन की आवश्यकता है। जब तक आप जरूरतमंदों के लिए भावनाएं नहीं रखेंगे, आप उनके साथ बांटेंगे भी नहीं।

अर्थव्यवस्था में अनैतिकता का क्या अभिप्राय है?

हम जहां से शुरू हुए थे, वहीं आ गए हैं। एक बहुत बड़ा विश्व पर्यावरण सम्मेलन हुआ था। 152 देश राजी हुए कि प्रदूषणकारी गैसों की मात्रा में 20 प्रतिशत की कटौती की जाए। अमरीका नहीं माना। केवल 5 प्रतिशत की कटौती पर माना। तर्क यह दिया कि लोगों की मांग है। आखिर ओजोन क्षरण का नुकसान अमरीकी लोगों को भी तो होगा। लेकिन अल्पकालिक फायदों के लिए भविष्य को खतरे में डाला जा रहा है।

विराट् पुरुष

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमने समाजवाद और पूंजीवाद की बुराइयां अपना लीं और साम्यवाद के सामाजिक कल्याण के पक्ष को छोड़ दिया। आपके अनुसार पंचवर्षीय योजनाओं की अंतर्निहित समस्याएं क्या रही?

पंचवर्षीय योजनाएं केवल अर्थशास्त्र पर आधारित हैं, लोगों के जीवन पर नहीं। जनजीवन एक-दूसरे से जुड़ा है। इसलिए नौ साल की पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी लोग भूख से मर रहे हैं। 35 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। समाचार-पत्रों में पढ़िए। अंबानी ने इतना पैसा कमाया। भारत रत्न मिलना चाहिए। क्यों, सब चीजों का शोषण करने के लिए? इसीलिए योजनाएं सफल नहीं होतीं। आप गांवों में जाकर देख सकते हैं। लोग वहां से प्राकृतिक संसाधनों को शहरों की ओर उड़ा रहे हैं। अब चालीस हजार करोड़ रुपए ग्राम विकास में लगाए जा रहे हैं। लेकिन गांव से तो लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, जहां उन्हें पैसे की जरूरत है। लोगों को यह समझ नहीं आ रहा। यह सरासर गलत योजना है।

गांव के लोग किस तरह से इन संसाधनों का प्रबंधन सीख सकते हैं?

ग्रामीण लोग प्रबंधन में सक्षम हैं। वे कर रहे हैं। आप गांवों में जाइए। जहां पीने का पानी था ही नहीं, लोग बारह हजार हेक्टेयर जमीन सींच रहे हैं।

मेरा प्रश्न यही है। वे किस प्रकार से ऐसा प्रबंधन कर पाए?

ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि वे योजनाओं पर या सरकार पर, किसी पर निर्भर नहीं करते। आपका विकास कोई और नहीं कर सकता। आपको आत्मनिर्भर बनना होगा। वरना कोई आर्थिक विकास संभव नहीं।

आपने उन्हें सिखाया और अब वे लाभ उठा रहे हैं। इतनी संख्या में लोग गरीबी से कैसे उबरे?

उन्हें उचित मार्गदर्शन नहीं मिलता। नेता लोग उन्हें कहते हैं—हमें वोट दो, हमें सत्ता दो, हम आपकी समस्याएं सुलझाएंगे। जनसत्ता का देश के विकास में योगदान नहीं लिया गया। इसलिए शिक्षित युवा गांव छोड़ रहा है। जहां पैसा मिलता है, चले जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि उनके भाई-बंधु गरीबी से जूझ रहे हैं। 1947 से पहले यही युवा आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। अपने फायदे के लिए तो नहीं लड़ रहा था। एक आदर्श था। अब आदर्श होना चाहिए कि हमें सत्ता दो, शक्ति दो, ताकि खुद के लिए काम कर सकें। हम लोगों को यही सिखा रहे हैं, लोग कर रहे हैं और खुश हैं।

आपने राजनीति छोड़ते समय कहा था कि जो सत्ता के पीछे भागते हैं, उनके पास 'न भाग्य है, न लज्जा', इसका क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है वे स्वार्थी हैं। 1952 से हमारे देश में आम चुनाव शुरू हुए। तब एक एमएलए या एमपी को कितना पैसा चाहिए था और आज 2002 में कितना चाहिए? यह पैसा कहां से आ

रहा है? यह काला धन है। पूरी सरकार काले धन पर खड़ी है। अब जहां से काला धन आता है, उन्हें भी खुश करना है सरकार को। यह पूरा चक्र गलत है। इसमें गरीब पिस रहा है।

क्या सही राजनीति करने का कोई मंत्र है?

राजनीति जरूरी है, लेकिन यह सही दिशा में तभी जाएगी जब लोग कहेंगे—हमारी मदद मत करो, हम खुद प्रगति करेंगे। जब नेताओं को लगेगा, लोगों को हमारी जरूरत नहीं, तो वे सही राजनीति करेंगे। इसके लिए लोगों को शिक्षित, प्रेरित होना जरूरी है।

नानाजी हमारे इस विशाल राष्ट्र ने दो चीजें विरासत में पाईं। अंग्रेजों से ऐसा प्रशासन पाया, जो शोषणकारी है। दूसरे, समाजवादी मॉडल के तहत भारी कर प्रणाली पाई। ऐसी स्थिति में आप लघु-स्तर पर विकास का क्या मॉडल ठीक समझते हैं?

यह लघु-स्तर पर मॉडल तैयार करने की बात नहीं है। विकास के ऐसे नमूने खड़े किए जाने चाहिए, जो लोगों को आत्मनिर्भर बनाएँ। ऐसे नमूनों को दीनदयाल शोध संस्थान सफलतापूर्वक चला रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए और कोई विकल्प नहीं।

आपको पूरा विश्वास है, लोग इन नमूनों को अपनाएंगे?

लोग कर रहे हैं। मैंने चार गांवों में किया। सफलता मिली। औरों ने कहा, हम भी करेंगे, हमने कहा, करो।

गरीबी के मुद्दे के क्या आर्थिक और नैतिक पक्ष हैं, आप इस पर प्रकाश डालेंगे?

गरीबी के मुद्दे पर नेता लोगों को गुमराह करते हैं, लेकिन करते कुछ नहीं हैं। यही असली समस्या है। और कोई समस्या नहीं है।

गांधीजी के समय में 'स्वराज और स्वदेशी' प्रासंगिक थे। अब वर्तमान में भी ये मुद्दे प्रासंगिक हैं। आपको लगता है कि बीच के काल में इन्हें नजरअंदाज कर दिया गया?

सत्ता के मोह में सबकुछ भुला दिया गया। लोगों ने क्यों विभाजन स्वीकार किया? सिर्फ सत्ता के लिए। इसलिए आदर्शवाद को नकार दिया गया। सिद्धांतों की किसी को परवाह नहीं। सत्ता के लिए दल बदले जा रहे हैं। आज केंद्र की सरकार में विभिन्न दलों के लोग हैं। क्या उनकी एक विचारधारा है। केवल नारेबाजी है।

नेता राष्ट्र-निर्माण में कैसे योगदान कर पाएंगे?

नेता नहीं कर पाएंगे। नेताओं को सिखाना पड़ेगा। लोगों को नेताओं के पीछे नहीं जाना है।

विराट पुरुष

असली सत्ता लोकसत्ता है, राजसत्ता नहीं, यहां यही सिखाया जा रहा है। यहां के लोगों ने नेताओं को सबक सिखाया है कि वे अपने पैर पर खुद खड़े हो सकते हैं।

नानाजी, राजनीति से अलविदा कहने के पूर्व क्या आपने कभी राजनीतिक व्यवस्था साफ करने की कोशिश की?

मैं राजनीति में किसी पद या लाभ के लिए नहीं था। जब मुझे समझ आया कि राजनीति के माध्यम से जनसेवा नामुमकिन है तो मैंने राजनीति छोड़ दी।

क्या आपने अन्य नेताओं को बदलाव लाने के लिए प्रेरित किया?

मैंने कोशिश की। 1977 में इंदिरा गांधी पदच्युत हुईं। तब मोरारजी भाई देसाई, चौधरी चरण सिंह, जगजीवन राम सब प्रधानमंत्री बनना चाहते थे। आखिरकार इंदिरा गांधी ने इसका फायदा उठाया। चरण सिंह को तोड़कर खुद प्रधानमंत्री बन बैठी। ऐसी राजनीति से देश का भला नहीं हो सकता, यह सोचकर मैंने राजनीति छोड़ दी। मुझे मंत्रीपद का प्रस्ताव भी दिया गया। मैंने ठुकरा दिया।

क्या आपको लगता है, मंत्री बनकर आप देश की सेवा कर सकते थे?

जो कुछ गलत चल रहा था, और आज भी चल रहा है, मैं उसका शिकार बन जाता।

क्या इसे स्पष्ट करना चाहेंगे?

देखिए, नेता लोग सिर्फ सत्ता चाहते हैं। नौकरशाही पैसा बनाने का माध्यम बना दी गई, न कि जनसेवा का। नौकरशाही लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकती। नेताओं के साथ भी यही है। नेताओं का मतलब है—पैसा, सत्ता, भ्रष्टाचार। आपको हैरानी होगी, कोई भी मंत्री, सांसद या विधायक अपनी संपत्ति की घोषणा करने को तैयार नहीं। इसलिए मुझे लगा, यही सही समय है अलविदा कहने का। मैंने सोचा, यह दिखाऊं कि जनशक्ति कैसे काम करती है, बजाय कि सत्ता या पैसा। जैसे प्रभु रामचंद्र ने बिना पैसा या सत्ता के लोगों की शक्ति का निर्माण किया। इसलिए मैंने चित्रकूट का चयन किया।

सरकार और नौकरशाही से लोगों का विश्वास क्यों उठ गया?

नौकरशाही पैसा बनाने में लगी है। आपको पता लग गया होगा, पंजाब में जनसेवा आयोग ने कितना पैसा लिया। हर पद के लिए लाखों रुपया लिया। आयोग के एक अध्यक्ष ने करोड़ों रुपया बनाया। कितने मामले तो सामने आते ही नहीं।

पचास साल से ऐसा कैसे हो रहा है?

इसलिए मैं इस व्यवस्था से बाहर आ गया। हमने ब्रिटिश शासकों की संसदीय व्यवस्था

अपना ली। उन्होंने हमारे देश पर राज किया था। हमारी अपनी कोई शासन व्यवस्था नहीं बन पाई।

क्या आपको लगता है कि कृषि क्षेत्र में विकास से गरीबी घटाई जा सकती है?

कृषि और उद्योग मिलकर गरीबी का उन्मूलन कर सकते हैं। मैं गांवों में ऐसा कर रहा हूँ।

योजनाओं के तहत तो कृषि पर भारी कर लादकर उद्योगों को वित्तीय सहायता दी जा रही है। यह कैसे बदलेगा?

आप जिन्हें योजना समझती हैं, वे अंधेरे में काम कर रही हैं। जीवन में परस्परपूरकता की आवश्यकता है। शरीर का हर अंग काम करता है तभी शरीर चलता है। हर अंग अपने लिए नहीं, शरीर के लिए काम करता है। कृषि व उद्योग भी साथ मिलकर कार्य करें। पश्चिम में इन्हें अलग रखने की धारणा है।

क्या इसे और स्पष्ट करेंगे?

रूस में 1917 में क्रांति हुई। 1980 में वो भी खत्म हो गई। इसका आधार ही गलत था। परस्परपूरकता पर आधारित सोच ही उचित है।

आपने कहा था, हमने 'उलटी दुनिया' बना ली है। इसे समझाएं?

यह 'उलटी दुनिया' है जो चल रही है। इसे 'सुलटी दुनिया' बनाने के लिए परस्परपूरकता आवश्यक है।

लेकिन 'उलटी दुनिया' है क्या?

'उलटी दुनिया' पूर्ण नहीं है। सब स्वार्थ के लिए जी रहे हैं। उन्हें लगता है, पैसा कमाओ, सब पा लो। लेकिन व्यक्ति खुद को नष्ट हुआ महसूस कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र आजकल'''

संयुक्त राष्ट्र उसी दिशा में जा रहा है, जिस दिशा में उसका पूर्ववर्ती जा रहा था। वह अमरीका के साथ जाने की बात करता है। अमरीका संयुक्त राष्ट्र की मदद करता है। अब इराक में क्या हुआ। इराक ने संयुक्त राष्ट्र की बात मानी। उसने कहा, हमारे यहां अपना दल भेजिए, हथियारों का निरीक्षण करने के लिए। पर अमरीका ने कहा, नहीं यह हमें स्वीकार नहीं। लोगों को यह स्वीकार नहीं। अमरीका सद्दाम के पीछे पड़ा है, क्योंकि वो दुनिया भर के तेल पर कब्जा चाहता है। तेल दुनिया के लिए जीवन-रेखा है। पूरे विश्व पर राज करना चाहते हैं। लोगों के हित के लिए नहीं, अपने स्वार्थ हेतु।

विराट् पुरुष

नानाजी, मैं कुछ और पूछना चाह रही थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के बहुत से संगठन धर्म का प्रयोग सामाजिक तनावों को समाप्त करने और शांति स्थापना के माध्यम के रूप में कर रहे हैं। भारत में ऐसा किया जाता है तो इसे कट्टरपंथ का नाम दिया जाता है। इसके बारे में आप क्या कहेंगे?

संयुक्त राष्ट्र अव्यावहारिक आधार पर यह सब कर रहा है। इसे समझ नहीं है। धर्म तो पहले से स्थापित है। धर्म क्या है? सबका भला करना। संयुक्त राष्ट्र इस दिशा में क्या मदद करेगा? क्या वह लोगों को प्रेरित करता है कि सब एक-दूसरे के लिए काम करें।

क्या धार्मिक नैतिकता से शांति आ सकती है?

नैतिकता धार्मिक नहीं होती। नैतिकता के धार्मिक या राजनैतिक रंग नहीं होते। नैतिकता अपने आप में ही धर्म है।

आपके बारे में हमेशा एक विवादास्पद प्रश्न पूछा जाएगा, आप इसके लिए मुझे माफ करें नानाजी, कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ा व्यक्ति गांधी को कैसे आधार बना सकता है?

आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से पूछें। मैं इस पर कुछ भी कहने के लिए अधिकृत नहीं हूँ। मैं दीनदयाल शोध संस्थान पर बोलने के लिए अधिकृत हूँ।

क्या संस्थान गांधी के दर्शन पर आधारित है?

हमारी विचारधारा 'एकात्म मानववाद' पर आधारित है।

क्या आप समझाएंगे कि मानववाद को विकास से कैसे जोड़ा जा सकता है?

मानवीय मूल्य तो विकास का ही परिणाम है। व्यक्ति को पहले स्थानीय स्तर, फिर वृहत्तर स्तर और उसके बाद विश्व स्तर पर हैं यानी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' पर आधारित कल्याण भावना से जुड़ना चाहिए। आप अफ्रीका में हों, अमरीका में हों, मैक्सिको, चीन, जापान कहीं भी हों, एक-दूसरे की पीड़ा के लिए तो भावनाएं होनी चाहिए। यही सच्चा धर्म है। हमारा संस्थान इसी आधार पर काम करता है।

आज के जमाने में हमारे प्रशासन, राजनीति और उद्योग में जो अनैतिकता आ गई है, उसके बदलाव के लिए हमें कहां से शुरू करना चाहिए ?

गांव में जाइए। गांव में पाप करने वाला 10 बार सोचता है। शहर में अभी चार दिन पहले अखबार में पहले पेज में चार साल की बच्ची के रेप की खबर थी। चार साल की बच्ची को क्या समझते हैं? यह शहर में हो रहा है। गांव में नहीं। गांव में जाइए, काम करिए, आपको अपनापन मिलेगा। अभी गांव में किसी के घर कोई मरता है तो तीन दिवस तक घर में चूल्हा

साक्षात् नानाजी

नहीं जलता। गांव के लोग खिलाते हैं। मेरे गांव की लड़की कहीं ब्याही है तो मैं उस गांव में खाना नहीं खाता। लड़की के घर खाना नहीं खाना, यह गलत है या सही, पर अभी ऐसी भावनाएं वहां हैं।

इस वक्त भगदड़ मची हुई है, शहरों में भागने के लिए, क्योंकि वहां पैसा है, ग्लैमर है, लग्जरी है। परंतु गांव का बिचारा बच्चा पढ़ा भी नहीं है, शहर पहुंच जाता है, वहां शोषित होता है। उसको रोकने के लिए क्या किया जा सकता है ?

गांव ठीक करो। हमारे लोग नहीं जा रहे। अभी मझगवां की तरफ जाइए। वहां एक इंजीनियर है, जिसके घर में 17 एकड़ खेती थी। मुंबई में काम करता था। हमने काम शुरू किया तो वहां से छोड़ करके आए। यहां खेती कर रहा है। यहां ज्यादा कमा रहा है।

ग्रामीण क्षेत्र में कृषि और औद्योगीकरण को बुनियादी बढ़ावा देने से पलायन कैसे थमेगा?

पलायन तो देखिए, इसलिए है कि आपको काम नहीं गांव में। और शहर तो शहर हैं। गांव पर आपने कोई सुविधा निर्माण नहीं की तो गांव के लोग भाग रहे हैं।

लेकिन अब पलायन जो है बहुत बड़ी आकांक्षाओं पर आधारित है। तो क्या बुनियादी सुविधाओं से लोग...

नहीं-नहीं, बड़ी आकांक्षाओं पर आधारित नहीं है। जो पलायन है सुख-सुविधाओं के लिए है। सुख-सुविधा हर एक आदमी चाहता है। नेचुरल है कि सुख-सुविधाएं जहां ज्यादा मिलेंगी, आदमी वहां भागेगा। स्वयं आदमी रिसर्च करता नहीं है। स्वयं आदमी लंबे काल के लिए सोचता नहीं है। शहर में आप टाउन प्लानिंग करते हैं। मैंने कहा, टाउन प्लानर सुनो। आज तुमने टाउन प्लानिंग किया। रोज हजार, दो हजार लोग आकर के धमक रहे हैं शहरों में। गंदी बस्ती बढ़ रही है। तुम अभी प्लानिंग करते हो। 10 दिन के बाद वहां बस्ती तैयार हो जाती। ये जो चीजें हो रही हैं तो न शहर ठीक रहने वाले हैं, न देहात ठीक रहनेवाले हैं।

पर आपको लगता है कि आज आशा है सुधार की ?

निश्चित आशा है, नहीं तो हम काम क्यों करते। दुनिया ठीक रास्ते पर चल नहीं रही है। दुनिया के लिए रास्ता हम खड़ा कर रहे हैं।

महात्मा गांधी ने 'हिंद स्वराज' में यही कहा था कि गांव आधारित तरक्की होनी चाहिए। लेकिन नेहरू माने नहीं, किस वजह से नहीं माने ?

नेहरू के बारे में मैं क्या कहूं। माने नहीं, आप कह रहे हैं, मैं भी मानता हूं। क्यों नहीं माने, अब तो नेहरू से पूछा नहीं जा सकता। अब तो वे हैं नहीं।

विराट् पुरुष

नानाजी, दीनदयाल शोध संस्थान का मूल दर्शन क्या है?

यदि एक वाक्य में कहना हो तो 'एकात्म मानव दर्शन'।

इसको थोड़ा सा विस्तार से समझाएं।

'एकात्म मानव दर्शन' ऐसा है कि मनुष्य चार बातों से मिलकर बना है। एक है शरीर, दूसरा है मन, तीसरी चीज है बुद्धि और चौथी चीज है आत्मा। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते हैं। इन चारों चीजों को मिलाकर के जो तत्त्व बनता है, उसे ही मानव कहते हैं। शरीर उपभोग प्रबल है—खाए बिना आप रह नहीं सकते, चाहे वह साधु हो, संत हो, चाहे जैसा भी व्यक्ति हो, शरीर टिक ही नहीं सकता बिना भोग के। तो उपभोग आवश्यक है। उपभोग आदमी को संग्रह के लिए प्रेरित करता है। और दूसरा कोई भी प्राणी संग्रह नहीं करता, केवल मानव संग्रह करता है। आपको संतोष नहीं होता, यदि हजार रुपए महीना मिले तो दस चाहिए—पचास चाहिए, लेकिन उसके साथ आत्मा है। तो आत्मा संवेदनशील है। आत्मा दुनिया के अंदर का कष्ट देखकर दुखी होती है। कष्ट निवारण करने के लिए प्रेरित करती है। मन कल्पना करता है, बुद्धि काम के लिए प्रेरणा देती है। अब मन और बुद्धि शरीर से ही प्रभावित रही तो मानव दानव बन सकता है। लेकिन आत्मा जो है, वो जब प्रेरणा देती है तो मानव की भोग शक्ति पर संयम आता है। इन चारों चीजों को संतुलित रूप में बनाए रखना मानव जीवन की आवश्यकता है, और इसलिए मानव को शिक्षण की आवश्यकता है। दूसरा कोई भी प्राणी ऐसा नहीं, जिसे सिखाना पड़ता है। मानव पैदा होता है तो पूरा असहाय होता है। जानवर का बच्चा पैदा हो तो तुरंत उठ जाएगा। मां उसे उठाएगी नहीं। दूध कहां से पीना है, मुंह लगाकर पीना शुरू कर देगा। मानव का बच्चा तो मर जाएगा, पर उठ नहीं पाएगा। लेकिन वहीं मानव का बच्चा धीरे-धीरे इतना कर्तृत्ववान बनता है कि दुनिया में चाहे जो कुछ कर सकता है। तो ये चारों चीजें मिलकर 'इंट्रीग्रेटिड ह्यूमन बीइंग' अर्थात् 'एकात्म मानव' बनाती हैं। वह दुनिया में परोपकारी बनता है। यह है दर्शन दीनदयाल शोध संस्थान का।

चित्रकूट अभियान को आपने इस प्रकार सोचा कि एक सेंट्रल एरिया होना चाहिए, जिससे विकास का क्षेत्र बढ़ता जाएगा। इस परिकल्पना का रूप आगे जाकर क्या बनेगा और कैसे बनेगा?

यह तो हम एक मॉडल बना रहे हैं कि पूरा समाज कैसा होना चाहिए। इसलिए हमने 500 गांव चुने। एक-दो गांव में नहीं कर रहे। इनमें मानव की सब जातियां आती हैं। मानव के सब मजहब आते हैं। सब प्रकार का मानव आता है। मिलकर इस प्रकार का मानव जीवन बराबर विकसित हो सकता है, सुखी हो सकता है, आनंदमय हो सकता है, उपकारक हो सकता है। इसका एक मॉडल तैयार करने की जरूरत है। क्योंकि इन सब चीजों को सोच करके मानव दुनिया में जी नहीं रहा है। इसलिए परेशान है। कष्टकर है। संघर्ष है। नीचे-ऊपर हो रहा है।

विषमता हो रही है। किसी के पास खाने के लिए कोई कमी नहीं और कोई बिचारा भूखा मर रहा है। आज किसी के पास इतने वस्त्र हैं, कुछ तो बिलकुल टंडक से मर रहे हैं। तो ये जो विषमता है, ये मानवीयता के अभाव का लक्षण है। तो हम एक मॉडल बनाना चाहते हैं कि कैसे समाज में जीवन होना चाहिए। मानव को कैसा रहना चाहिए।

भारत में ऐसी कौन सी विशेष बातें हैं, जिनका विकास की प्रक्रिया पर असर पड़ता है?

दुनिया भर में सोचा गया 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख।' लेकिन हिंदुस्तान ने कहा, नहीं। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' सभी सुखी हों। यहां का चिंतन सबके सुख का है। अधिक-से-अधिक लोगों के सुख का नहीं। सबका सुख, यह वास्तविक मूल है। यह भारत की विशेषता रही है। लेकिन अब वह है नहीं। कहने के लिए है। बताने के लिए है।

आज की वास्तविकता क्या है?

वास्तविकता यह है कि हर एक अपने लिए जितना मिल सकता है, बटोरता है। 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' यह वास्तविकता है।

आप कई बार कहते हैं कि राजनैतिक स्वतंत्रता और आजादी के बीच में भ्रम हो गया। उसको दुबारा आप समझा सकते हैं?

हम अखंड हिंदुस्तान चाहते थे और हमने खंडित भारत को क्यों स्वीकार किया? जल्दबाजी करने की क्या जरूरत थी? हमको तो अखंड भारत चाहिए था। आखिर में आजादी तो मिलती ही। सांप्रदायिक आधार पर विभाजन तो नहीं होता। हम तो पावर के लिए परेशान हो गए। गलती यही हुई। अंग्रेज यही चाहते थे। 1905 में अंग्रेजों ने जब बंगाल का विभाजन किया तब हमने मना किया। तब उन्होंने हिंदू और मुसलमानों को अलग-अलग भड़काया। हम लोगों ने अंग्रेजों की बात 1947 में मान ली। पावर ले ली। आजादी नहीं ली। पावर के पीछे पागल हैं।

प्रभु राम के अलावा आपने और किन-किन कारणों से चित्रकूट को अपने अभियान के लिए चुना ?

चित्रकूट केवल राम और भरत के लिए नहीं, आज हमारे हिंदुस्तान में क्या हो रहा है? सत्ता के लिए आदमी कोई सिद्धांत पालता है। पार्टी बदलता है। 'आया राम-गया राम' यहां चलता रहता है। किसी का कोई उसूल ही नहीं है। आप सरकार चला रहे हैं तो आपको दिखाई पड़ेगा कि भाजपा भी है, पुराने कांग्रेसी भी हैं, सोशलिस्ट भी हैं, जातिवादी भी हैं। काहे के लिए हैं? कि भाई इकट्ठा आ जाओ। सत्ता अपने हाथ में रहेगी। लेकिन राम ऐसे कि जिनको सत्ता मिल रही थी, राज्य अभिषेक होनेवाला था। कैकेयी ने कहा, तेरे बाप ने जो वचन दिए थे तो मैं चाहती हूँ कि 14 वर्ष वनवास जाओ। भरत को राज्य मिलना है। उन्होंने कहा कि यह बहुत अच्छा है, इसमें क्या बात है। एक क्षण नहीं लगा। ठीक है तो भरत को तो बुलाइए और दीजिए राज्य। मैं जा रहा हूँ वनवास।

विराट् पुरुष

भरत आया और कहा यह आपने क्या किया, राम तो मेरा बड़ा भैया है। हुकूमत तो उसको करनी चाहिए थी। वो निकला है चित्रकूट को। चलो, हम वहीं चलें। तो सत्ता का मोह नहीं। अब बिना सत्ता के भी सामाजिक शक्ति इतनी बड़ी हो सकती है कि रावण की शक्ति भी सामने टिकती नहीं। समाज की यह विशेषता है। जिसका व्यावहारिक रूप चित्रकूट में साकार हुआ था।

आपने कहा है कि मेरा काम सात पीढ़ियों तक चलेगा। इसको विस्तार से थोड़ा और बताएं।

कारण क्या है कि हम पथ से हट गए हैं, पता नहीं कितने सालों से। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' गायब है हमारे जीवन से। आज एक के बाद एक पीढ़ी तैयार हो जाए तब जाकर के इस काम में एक स्थायित्व आएगा। एक आदमी आया, बढ़िया काम किया, वो चला गया। दूसरा ठीक आएगा, ये जरूरी नहीं। लाल बहादुर शास्त्री एक अच्छे आदमी आए और चले गए। बाद में तो गड़बड़ हो गई। बाद में तो इमरजेंसी लगानी पड़ी। सत्ता के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ा। तो यह परंपरा चल पड़ी। इसलिए मेरा कहना है कि कई पीढ़ियां लगानी पड़ेंगी।

नानाजी 'विश्व व्यापार संघ' (डब्ल्यूटीओ) की स्वावलंबन के मॉडल में क्या भूमिका है?

देखिए, डब्ल्यूटीओ का संचालन कौन कर रहा है? संचालन करने वालों का हेतु क्या है? ये सबसे शक्तिशाली लोग हैं, जिन्होंने किसी-न-किसी बहाने राजनैतिक शक्तियों को भी चलाना शुरू कर दिया है। दूसरे विश्व युद्ध में राजनैतिक साम्राज्यवाद रहा। आर्थिक साम्राज्यवाद की तरकीबें चल रही हैं। डब्ल्यूटीओ के पीछे प्रेरणा यही है। पेटेंट हो रहे हैं। भारत का चावल बासमती पेटेंट हो रहा है अमरीका में। हलदी पेटेंट हो रही है, तुलसी पेटेंट हो रही है। वे सबको दबाना चाहते हैं। पहले क्या था कि प्रतियोगिता के लिए रूस भी था, अब वो रहा नहीं। अब अमरीका सोचता है कि किसी दूसरे को पनपने न दिया जाए। सब पर मैं हावी हो जाऊं।

जो इतना शक्तिशाली संस्थान है, उसके सामने स्वावलंबन का एक मॉडल कैसे टिक सकता है?

ये शक्तियां कभी टिका नहीं करतीं। कभी तो बड़ा शक्तिशाली रावण भी था। कहां टिका? ये शक्तियां टिकेंगी नहीं। क्योंकि मानव मूलतः स्वतंत्र प्रकृति का है। किसी की शक्ति कितनी बड़ी हो जाएगी, ज्यादा देर टिकेगी नहीं। क्योंकि भावना सबके भले की नहीं है। आप देख रहे होंगे कि रूस शक्तिशाली है और अब चायना बढ़ रहा है, जापान बढ़ रहा है। मैं आपको बताता हूं यूरोप बढ़ रहा है। वह अमरीका का प्रभाव नहीं चाहता। अभी आपने देखा होगा कि अमरीका जब इराक को तहस-नहस करना चाहता है तो सबके सब लोग उसके साथ आए नहीं हैं, क्योंकि कोई भी किसी एक को सर्वेसर्वा बनने नहीं देगा।

लोगों में स्वतः काम करने की प्रेरणा और उसके क्रियान्वयन की दिशा में आज भारत को किन बदलावों की आवश्यकता है?

देखिए, स्वयं काम करने की प्रेरणा तो आदमी में होती ही है। प्रेरणा सबकी भलाई के लिए हो, यह उसको दिशा देने की जरूरत है।

उसके लिए समाज में और सरकार की नीतियों में किस तरह के बदलावों की जरूरत है?

देखिए, समाज में ही बदलाव की जरूरत है, सरकार तो स्वयंभू नहीं है। किसी की भी सरकार हमेशा रही नहीं। रहती नहीं है। समाज रहता है। अपने समाज के बारे में सोचो तो इतिहास बता नहीं सकता कि कब शुरू हुआ है। लेकिन सत्ता तो अच्छे से अच्छे लोगों की आई, वह चली भी गई।

चित्रकूट के मॉडल और वर्तमान में विकास के मॉडल में क्या अंतर है?

विकास का अभी कोई मॉडल है ही नहीं। विकास का मॉडल होता तो नौ पंचवर्षीय योजनाएं सफल होतीं। जो संपन्न लोग हैं, वे अधिक संपन्न होते जा रहे हैं। जो गरीब हैं, और गरीब हो रहा है। नौ पंचवर्षीय योजनाएं संपन्न हुईं। क्या हुआ?

क्या आप मानते हैं कि पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए? इससे क्या फायदा हो सकता है?

देखिए, उसका कोई अर्थ नहीं है। अध्ययन तो मानव के मनोविज्ञान का होना चाहिए। ये सब चीजें मानव के मनोविज्ञान के कारण होती हैं। यदि मेरी वृत्ति यह है कि आप चाहे भूखे रहो, लेकिन मेरे पास तो साल भर का अनाज बना रहे, तो मेरी सोच ही खराब है।

लेकिन अगर ग्रामीण क्षेत्र में औद्योगीकरण करना है तो क्या तुलनात्मक अध्ययन की जरूरत नहीं है?

देखो, यह तो व्यर्थ के शब्दों का जंजाल है। यदि आपको लोगों का भला करना है तो दो चीजें करनी होंगी। एक तो कोई भी बेकार न रहे, ऐसी टेक्नोलॉजी लानी होगी। दूसरे, ऐसी टेक्नोलॉजी लानी होगी, जिससे प्रदूषण न हो। अब मैं बताता हूँ, धीरे-धीरे क्या हो रहा है। ऑटोमेशन आ रहा है। रोबोट आ रहा है। यंत्र मानव बन रहे हैं। तो मानव को तो काम से आप हटा रहे हैं। इसलिए बड़े विकसित कहने वाले देशों में बेकारी बढ़ रही है। बेकारी बढ़ेगी तो विषमता बढ़ेगी। विषमता बढ़ेगी तो असंतोष बढ़ेगा। असंतोष बढ़ेगा तो शांति नहीं रहेगी। शांति नहीं रहेगी तो बना-बनाया विकास चौपट हो जाएगा। तो वस्तुतः अपने को देखना होगा कि कोई भी सशक्त मानव बेकार न रहे। महिला हो चाहे पुरुष, आज की टेक्नोलॉजी अमरीका को भी बचानेवाली नहीं है।

किस परिकल्पना के आधार पर आपने एक ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना की? क्या यह देश का पहला ऐसा विश्वविद्यालय था ग्रामीण क्षेत्र में?

यह जरूर था, लेकिन ग्रामीण विश्वविद्यालय बनाने में मुझसे एक गलती हुई। मुझे लगा कि

विराट पुरुष

चलो, शासन और समाज मिलकर काम करेंगे। लेकिन शासन बदलता है। उसको शक होता है कि अरे यार, इसके हक में इतने विद्यार्थी। मैंने छोड़ दिया साढ़े तीन साल के अंदर। मैंने कहा, ले लीजिए आप, मुझे नहीं चाहिए।

लेकिन आपका विजन क्या था?

विजन यही था, जो मैं आज कर रहा हूँ। यही कि मैं यूनीवर्सिटी शुरू करूंगा, जिससे मेरे पास हजारों जवान विद्यार्थी रहेंगे। टीचिंग स्टाफ भी रहेगा। काम में सुविधा होगी। यह मेरी अपेक्षा मेरी गलती निकली। सरकार से सहयोग की अपेक्षा गलत निकली।

गोंडा के अनुभव को आपने चित्रकूट के लिए कैसे रूपांतरित किया?

नहीं, रूपांतरित नहीं किया। उनका उपयोग कर रहा हूँ। गोंडा का काम अभी चल ही रहा है।

क्या गोंडा में कुछ ऐसे अनुभव थे, जिनमें आपको लगा कि कुछ परिवर्तन किया जा सकता है चित्रकूट के लिए?

नहीं-नहीं, गोंडा के अनुभव ऐसे हुए कि गोंडा में जमीन बहुत अच्छी थी। पानी की कमी नहीं थी। परंतु देश भर में जमीन ठीक नहीं है। पानी नहीं है तो लगा कि मॉडल ऐसा चाहिए कि देश में कहीं भी जाकर के काम कर सकें। तो सब प्रकार की टोपोग्राफी मुझे यहां मिली है। और प्रभु राम का आशीर्वाद मिला तो वहां काम कर ही रहा हूँ। वहां छोड़ा नहीं है। दूसरी तरफ सेहद्री के पूर्व में लिया जहां पानी नहीं है। बारिश नहीं है। पहाड़ी क्षेत्र है। बह जाता है। तो वहां भी काम कर रहा हूँ।

पिछले 50 सालों में मल्टी एजेंसीज की सरकारी नीति जो है, उसका ग्रामीण विकास पर क्या असर पड़ा?

मल्टी एजेंसीज जो है, उनका हेतु ग्रामीण विकास है ही नहीं। वो ग्रामों को शहरी बनाना चाहते हैं। ग्रामों को शहरी बनाकर ग्राम विकास नहीं होता है। जो टेक्नोलॉजी शहरों की है, वो टेक्नोलॉजी गांव में ले जाकर न गांव का विकास होता और न शहर का होता है। सबसे बड़ी टेक्नोलॉजी वो है, जिसमें कोई बेकार न रहे। गरीबी का कारण यह है कि आपके पास उत्पादन के साधन नहीं।

जो ग्रेजुएट दंपती की परिकल्पना है, उसकी क्या विशेषता है?

वो इसलिए है, एक तो समाज में महिला पुरुष दोनों मिलकर के काम करें। संतान को दिखाई पड़ता है कि माता-पिता दोनों काम कर रहे हैं तो संतान भी उस दृष्टि से तैयार होती है। एक दूसरी चीज है कि मां को सामाजिक बोध रहना चाहिए। बच्चा मां के गर्भ में ही रहता है। बाप के

साक्षात् नानाजी

गर्भ में तो रहता नहीं। गर्भ में भी बच्चे पर असर होते हैं। तो इसलिए मां भी वहीं हो, जिसमें सामाजिक बोध हो, वरना कैकेयी बन जाती है। तो इतिहास में सारा कुछ दिखाई पड़ता है। ग्रेजुएट इसलिए कि दोनों हमारे रिसर्च वर्कर हैं। उनको पढ़ना पड़ता है, सोचना पड़ता है, नए-नए इलाज करने पड़ते हैं।

हमने कोशिश तो की आपसे कई सवाल पूछने की, लेकिन हो सकता है कि कोई मूल बात हम भूल गए हों। आप कुछ और कहना चाहते हैं?

देखिए, मूल बात यह है कि हिंदुस्तान आजाद होने के बाद जनशक्ति को हमने छोड़ दिया, जो कि असली पावर है। हम शासन की ताकत के पीछे पड़ गए और इसलिए गड़बड़ हो गया। हमने लोगों का विचार नहीं किया। आपको बताता हूँ कि 1947 के पहले देश के लिए काम करने की लोगों में उमंग थी। हिंदुस्तान आजाद होने के बाद देश के लिए काम करने के लिए किसी जवान से पूछो। देशभक्ति खत्म हो गई है।

क्यों खत्म हो गई?

इन राजनीतिज्ञों ने समझाया कि तुमको कुछ करने की जरूरत नहीं है। हम करेंगे। सरकार सारा कुछ करेगी। तुम खाओ, पियो और आराम से रहो। तुम्हें वोट देना है और हमें पावर में बैठा दो, सब हो जाएगा। राह भटका दी, मैंने पहले भी कहा है।

जब आप अकेले में मनन करते हैं तो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के वर्षों के विषय में आप क्या सोचते हैं?

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की प्रवृत्तियों को देखकर ही मैंने 1978 में यह कार्य शुरू किया। मैं खुश हूँ कि मुझे सफलता मिली। तभी तो आप लोग मुझसे मिलने चित्रकूट आए हैं।



मनोगत

‘आ’ नंद यात्री के रूप में आजन्म प्रवास करनेवाला यह कर्मयोगी अब थकता जा रहा है। पर नानाजी का थकते जाना भी कृतार्थ है। उनको इस प्रकार थकते हुए देखकर, देखनेवाले के मन को अंतर्मुखी करनेवाला एक महत्वपूर्ण अध्याय भी है। पेड़ को कृतार्थ करनेवाला फल अब गलकर गिरनेवाला है, यह देखनेवाले फूलों के मनोभावों जैसा। दस-बारह वर्ष पूर्व जब नानाजी ने व्हील चेयर का साथ लिया, तब एक पत्र में उन्होंने लिखा था, “मानव जीवन का यह अध्याय भी बहुत मजेदार है। जीवन में अपनत्व का साक्षात्कार करानेवाले अनेक मित्र मिले। अब उनमें से एक को हमेशा ही मेरे साथ रहना होगा।” जब आंखों ने जवाब देना प्रारंभ किया तब वे बोले, “अब पढ़ने की परेशानी से मुक्ति मिल गई। पढ़कर सुनानेवाला सतत साथ में ही रहता है।”

ऐसा होते हुए भी नानाजी अब शीघ्र ही साथ छोड़ देंगे—यह कल्पना मात्र सभी के लिए असह्य थी। विनोबा ने एक बार कहा था, “सच पूछा जाए तो सूर्य कुछ भी नहीं करता। किंतु उसके अस्तित्व से ही हम सभी जाने-अनजाने कुछ-न-कुछ कार्यरत हो जाते हैं। उसका ‘अस्तित्व’ में रहना ही अपने आपमें महत्वपूर्ण होता है।” नानाजी की सशरीर उपस्थिति का अहसास भी कुछ इसी तरह का था।

एकाएक नानाजी के शरीर त्याग का समाचार पाकर मन बहुत अस्वस्थ हो गया। नियति के सम्मुख मानव की लाचारी का अहसास। नियति के इस क्रूर विधान पर हम निरीह मानव अश्रुपूरित श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के अतिरिक्त कर भी क्या सकते हैं।

पर कभी-कभी नियति मानो अपने ऊपर प्रसन्नता की वर्षा करती हो। अपनी कल्पना की उड़ान भी जहां पहुंच नहीं पाती, ऐसा एक विलक्षण दान हमारी झोली में डाल देती है। दिल्ली में रहते हुए अचानक हिमालय जैसी ऊंचाई के व्यक्तित्ववाले दो महानुभावों का सान्निध्य मुझे

यह मनोगत श्री दत्तप्रसाद दाभोलकर ने नानाजी की मृत्यु के पश्चात् लिखा था। यहां यह नानाजी को श्रद्धांजलि स्वरूप दिया जा रहा है। लेखक महोदय ‘श्रीराम इंस्टीट्यूट फॉर इंडस्ट्रियल रिसर्च दिल्ली’ के पूर्व संचालक होने के साथ ही अनेक प्रख्यात अंतरराष्ट्रीय रिसर्च संस्थानों के सम्मानीय ‘फेलो’ रहे हैं। मराठी, हिंदी, अंग्रेजी और गुजराती में अनेक पुस्तकें एवं शताधिक आलेख उनकी साहित्यिक प्रतिभा के साक्षी हैं।

प्राप्त हुआ। ये थे मधु लिमये और नानाजी देशमुख। अत्यंत आत्मीय बंधु के रूप में हंसी-मजाक करते हुए उन्होंने मुझसे किसी भी विषय पर खुलकर चर्चा करने में जरा भी संकोच नहीं किया।

मधु लिमये और नानाजी दोनों ही अप्रतिम बुद्धिमान, किंतु पूर्णतः अलग-अलग विचारोंवाले, कई बार तो परस्पर विरोधी विचारवाले होते हुए भी परस्पर आत्मीय संबंध निभाते हुए कार्यशील रहे। केवल विचारधारा में ही नहीं, अपितु दोनों की कार्यशैली में भी कोई साम्य नहीं। पर ऐसा होते हुए भी कम ही लोगों को यह ज्ञात होगा कि दोनों आजन्म अभिन्न मित्र रहे। उन दोनों में सतत एक संवाद-सेतु विद्यमान था। उसका भी संभवतः एक प्रमुख कारण था। जनता पार्टी के निर्माण का राजनीतिक खेल जो बाद में असफलता के बिंदु तक पहुंच गया—इन्हीं दोनों ने मिलकर खेला था। सच पूछा जाए तो ये दोनों ही उसके प्रमुख शिल्पकार थे। अत्यंत शक्ति-संपन्न कांग्रेस के गुब्बारे की मानो हवा ही निकाल डाली। या यों कहें कि उसके तानपूरे के तार छिन्न-विच्छिन्न कर उसे महत्वहीन बना डाला। और इतना असंभव सा लगनेवाला कार्य संपन्न करके दिखाने के बाद दोनों ने ही एकदम राजनीति से संन्यास भी ले लिया।

भारतीय राजनीति में 'हवाला कांड' एक झंझावात लेकर आया। बड़े-बड़े राजनीतिक महारथी उसके चपेट में आ गए। मधु जैसे व्यक्ति के लिए यह असह्य चोट थी। उनका हृदय विदीर्ण हो गया। अनेक जाने-माने महानुभावों को पत्र लिखकर उन्होंने अपनी वेदना से अवगत कराया। पर किसी ने भी उनके पत्रों का उत्तर तक नहीं दिया। अंत में निराश होकर एक दिन मुझसे कहा 'दाभोलकर, अब मैं नानाजी को ही एक पत्र लिखूंगा। तुम दो-चार दिनों बाद आकर वह पत्र नानाजी को दे आना।'

किंतु इसे नियति के विधान के अतिरिक्त और क्या कहा जाए? इस वार्तालाप के चार-पांच दिनों बाद ही लिमये ने अंतिम श्वास ले ली। मेरे मित्र तेंदुलकर के मुख से बरबस ये शब्द फूट पड़े—“यह इस देश के हवाला कांड की पहली बलि है। दूसरी बारी है अपने लोकतंत्र की।”

मैं खिन्न मन से नानाजी के पास गया। उन्हें बताया कि लिमयेजी मृत्यु के पूर्व आपको एक पत्र देनेवाले थे। वह पत्र वे लिख नहीं पाए। पर उसमें वे क्या लिखनेवाले थे—इस संबंध में उन्होंने हमसे चर्चा जरूर की थी।

नानाजी ने बीच में ही टोकते हुए मुझसे कहा, उस पत्र में वे क्या लिखना चाहते होंगे—इसका कुछ अनुमान मैं अवश्य कर सकता हूं। मधु को निश्चित रूप से 'हवाला' प्रकरण के बारे में ही मुझसे बात करने की इच्छा रही होगी। सच पूछा जाए तो मधु निश्चय ही मेरी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान व अध्ययनशील थे। पर व्यवहार-ज्ञान और व्यक्तियों को पहचानने के मामले में मैं उनसे आगे था। इस देश की राजनीति कुमार्य से गुजर रही है, इसका भान मधु को अब लग पाया, पर मुझे तो सन् 77 में ही इस बात का विश्वास हो गया था कि इस देश की राजनीति भटक गई है। उसने गलत रास्ता पकड़ लिया है। अब वह इसी गंतव्य की ओर बढ़ रही है। इस धारणा ने मुझे उसी समय अस्वस्थ कर डाला था। आज के सभी राजनीतिक दल और नेता सत्ता के भूखे हैं। उनसे देश का भला होने की कोई संभावना नहीं। इसी कारण मैंने राजनीति से मुंह मोड़ लिया।

विराट् पुरुष

(मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि नानाजी इस बात का साक्षात्कार आपको कब कैसे हुआ— इसके उत्तर में नानाजी ने जो बातें बताईं उनका विस्तृत विवरण 'साक्षात्कार' के पृष्ठों में अंकित होने के कारण यहां उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।)

नानाजी से अनेक बार निःसंकोच अनेक गंभीर विषयों पर चर्चाएं करने का अवसर मिला। बिना किसी असमंजस के नानाजी ने खुले दिल से स्पष्ट शब्दों में अपने मनोभाव प्रकट किए। (साक्षात्कार के पृष्ठ स्वयं इसके साक्षी हैं) नानाजी प्रामाणिक और पारदर्शी थे। अत्यंत सहज रूप में उन्होंने साधारण गपशप में अनेक गंभीर बातों पर चर्चा की। उसे शब्दांकित करने की पूरी छूट भी दी। पर उनके बोलने और व्यवहार में स्थितप्रज्ञता की झलक थी। उन्हें मार डालने के एक असफल प्रयत्न का उल्लेख करते हुए वे सहज भाव से बोले, 'मेरा कोई भी शत्रु नहीं, फिर मुझे मौत से डर भी क्यों हो?' यह बात बोलते समय उनका निर्विकार स्वरूप उजागर हुआ। हम में से किसी की जेब कट जाने पर हम उतने सहज नहीं रह पाएंगे, पर नानाजी की सहजता तो देखते ही बनती थी।

नानाजी के आयुष्य में 30-30 वर्षों के तीन कालखंड दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम कालखंड उनके बाल्यकाल और संघ समर्पण का, दूसरा जनसंघ का और तीसरा सामाजिक कार्य के लिए आत्मार्पण का। उनके साथ हुई सुदीर्घ वार्ता के दौरान इसका विस्तार से वर्णन है। इस अवधि में प्रत्येक अवसर पर उनके अलौकिक व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। अत्यंत विरोधी विचारधारावाले डॉ. लोहिया और जयप्रकाश नारायण का विश्वास संपादन करना सहज नहीं था। पर नानाजी के निष्कपट व्यवहार से वे उनके अंतरंग मित्र बन गए। इंडियन एक्सप्रेस समूह के श्री रामनाथ गोयनका, चंद्रशेखर सिंह, मुलायम सिंह यादव, नानी पालखीवाला, जमशेद जी टाटा जैसे 'बड़े' लोगों का (जिनका रा.स्वयं. संघ से लगभग 36 का आंकड़ा था) विश्वास संपादन करना नानाजी के असाधारण व्यक्तित्व का साक्षी है। संघ प्रचारक के रूप में सभी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने अल्पावधि में ही पूर्वी उत्तर प्रदेश में शाखाओं का जाल बिछा दिया। इसी अवधि में शिशु शिक्षा के क्षेत्र में नया प्रयोग 'सरस्वती शिशु मंदिर' भी प्रारंभ किया। बाद में प्रकाशन के क्षेत्र में भी 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन का दायित्व सफलतापूर्वक निभाया।

जहां तक दूसरे कालखंड का प्रश्न है—उनकी चाणक्य बुद्धि का लोहा तो तत्कालीन अजेय समझी जानेवाली कांग्रेस के बड़े से बड़े नेताओं को भी मानना पड़ा। उ.प्र. में चंद्रभान गुप्त जैसे दिग्गज को दो बार चुनावों में धूल चटाने—सन् 68 में पहली बार गैर-कांग्रेसी सरकार बनाने और बाद में 'समग्र क्रांति' का झंडा उठाकर लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में श्रीमती इंदिरा गांधी को सत्ताच्युत कर जनता पार्टी के गठन में प्रमुख भूमिका निभाने का काम भी नानाजी ने ही किया था।

इस अवधि में उनके जीवन का स्वर्णिम काल प्रकट हुआ। केंद्रीय मंत्रिमंडल के महत्वपूर्ण विभाग का मंत्रिपद टुकराकर, राजनीति से मुंह मोड़कर उन्होंने सामाजिक पुनरुत्थान का मार्ग पकड़ा। गोंडा जिले में मात्र दो वर्ष की निर्धारित अवधि में 27 हजार से भी अधिक नलकूप लगवाने

का अभूतपूर्व प्रयोग एक नया मानक बन गया। श्रीमती गांधी के पुनः सत्तारूढ़ होने पर उनकी सरकार ने उनके दावे को निराधार सिद्ध करने के लिए प्रेमभाई के नेतृत्व में जांच आयोग बैठाया। इंदिराजी की अपेक्षा के विपरीत उस आयोग ने नानाजी के दावे पर मुहर ही नहीं लगाई, अपितु उस प्रयोग की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए सरकार को अधिकाधिक सहयोग करने की सलाह दी। प्रेम भाई के अनुसार—“नानाजी न केवल एक अच्छे स्ट्रेटेजिस्ट अर्थात् चाणक्य हैं, अपितु स्वतः उन्होंने ग्रामीण पुनर्रचना के कार्य में अपनी सारी ताकत झोंक दी है। यह व्यक्ति मुझे पूरी तरह प्रामाणिक और पारदर्शक लगता है।”

नानाजी ने राजनीति से पूरी तरह संन्यास लिया, यह बात सही है या झूठ? राजनीति को हमेशा के लिए राम-राम कहने के बाद भी उन्होंने राज्यसभा की सदस्यता क्यों स्वीकार की? क्या यह संघ परिवार की आवश्यकता थी? किंतु इससे भी बड़ा प्रश्न यह है कि इंदिराजी की निर्मम हत्या के बाद उन्होंने यह खुला आह्वान क्यों किया कि “ऐसी विषम परिस्थिति में सभी दलों को ‘राजीव’ का समर्थन करना चाहिए।” समूचे संघ परिवार ने इस वक्तव्य का निषेध किया। सरसंघचालक के द्वारा विरोध जाहिर करने के बाद भी उन्होंने अपना वक्तव्य वापस नहीं लिया।

ऐसे कितने ही प्रश्न अनुत्तरित थे। पर एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि राजनीति से पूर्णतः अलिप्त होने के बावजूद और सत्ता से संबंधित किसी भी बड़े पद पर न रहते हुए भी सत्ता के गलियारे में उनका विलक्षण प्रभाव था।

ऐसी कितनी ही घटनाओं का मैं स्वयं साक्षी हूँ। उदाहरणस्वरूप यहां एक घटना का उल्लेख समीचीन होगा। सन् '84 के दिल्ली के बीभत्स अमानुषिक दंगों में रामलाल नामक एक देशभक्त नागरिक अपने पड़ोसी सिक्ख परिवार का संरक्षण करते हुए स्वयं बलिदान हो गया। उस विवरण पर मेरी एक पुस्तक का प्रकाशन राजहंस प्रकाशन ने सन् '86 में किया था। इस पुस्तक से मिलनेवाला मानधन मैं स्व. रामलाल की पत्नी को समर्पित करना चाहता था। पर उसका पता ठिकाना लगाने के लिए मुझे ऐड़ी चोटी एक करनी पड़ी। किसी तरह एक झुग्गी-झोंपड़ी में निराश्रित जीवन बिता रही उस महिला को पुलिस कमिश्नर की सहायता से खोज निकालने में मुझे सफलता मिली। पुलिस कमिश्नर की उपस्थिति में एक सादे समारोह में मैंने उसे वह चेक समर्पित किया। दिल्ली के राष्ट्रीय समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित भी हुआ। दिल्ली सरकार ने उसके रहने के लिए एक आवास भी मुहैया करवा दिया। उससे मुझे बहुत मानसिक सुकून हुआ।

पर मात्र दो वर्षों के अंदर वह महिला मेरा पता खोजते हुए रोती हुई मेरे सामने प्रकट हुई। उसके किसी नजदीकी रिश्तेदार ने धोखा देकर सादे कागज पर उसके हस्ताक्षर करवा लिये और उसके आवास पर कब्जा करके उसे निष्कासित कर दिया था। मकान के स्वामित्व से संबंधित दस्तावेज उसके पास मौजूद थे। उसने विलपते हुए मुझे मकान वापस दिलाने की प्रार्थना की। पर ऐसे मामले में मैं कर भी क्या सकता था? शायद नानाजी इसमें कुछ मदद कर सकें—इस विचार

विराट् पुरुष

से मैं उनके पास गया। सारी घटना से उन्हें अवगत कराया। मैंने आग्रह किया कि आप फोन पर कमिश्नर महोदय से बात करें। नानाजी ने कहा, “आप जैसे विद्वान् यह भी नहीं समझ पाते कि इस मामले में कमिश्नर चाहकर भी कुछ कर नहीं सकेगा।” “यहां की सरकार के बड़े साहब हैं राज्यपाल महोदय। मारकंडेय नामक उस राज्यपाल से नानाजी का नजदीकी परिचय था। उन्होंने तत्काल उनसे फोन पर संपर्क साधना चाहा। पर वे दिल्ली में थे ही नहीं। फोन उनकी पत्नी ने उठाया। बताया कि साहब दिल्ली के बाहर हैं। देर रात तक वापस आने की संभावना है। नानाजी ने उनसे कहा, “बहनजी, मुझे बहुत महत्वपूर्ण बात करनी है। देर में आने पर भी आप उनसे बात करवा दें।” उस महिला के आग्रह पर नानाजी ने प्रातः दस बजे भेंट करना स्वीकार किया।

दूसरे दिन ठीक दस बजे वे उनके निवास राजभवन पहुंचे। मैं भी उनके साथ था। राज्यपाल महोदय नानाजी की राह देख रहे थे। नानाजी ने सविस्तार घटना का उल्लेख करते हुए इसमें एक शहीद राष्ट्रभक्त की पत्नी को न्याय दिलाने का आग्रह किया। राज्यपाल महोदय ने कहा, “नानाजी, इतनी सी बात के लिए आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं थी। मैं स्वयं इस समस्या का हल निकाल लूंगा।”

मुझे लगा कि राज्यपाल महोदय आश्वासन देकर टालना चाहते हैं। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब दो ही दिनों बाद उस महिला ने पुनः भेंट कर मुझे बताया कि आपकी कृपा से मुझे मेरा मकान वापस मिल गया।”

ऐसी कितनी ही घटनाएं मेरे मनःपटल पर अंकित हैं। पर नानाजी उसका उल्लेख करना भी पसंद नहीं करते थे। उनका कहना था कि ऐसी बातें न बोलते, न लिखते और न बताते हुए भूल जानी चाहिए। यह तो हर मनुष्य का सहज मानवीय कर्तव्य होता है।

संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता होने के कारण सामान्यतः यही धारणा थी कि वे कट्टरपंथी सनातनी हिंदू होंगे। पर नानाजी ने शास्त्र सम्मत विधान को नजरंदाज करते हुए मृत्यु के उपरांत ‘शरीरदान’ किया। यह बात सुधारवादी सावरकरजी को भी करना संभव नहीं हुई। समाजवादी नेता श्री ना.ग. गोरेजी की इच्छा होते हुए भी उनके रिश्तेदारों ने वैसा होने नहीं दिया। मधु लिमये ने अपनी धर्म-पत्नी चंपाताई की भावनाओं का समादर करते हुए वैसा कुछ करने का विचार छोड़ दिया।

नानाजी ने स्वतः तो शरीर दान किया ही, साथ ही अनेक लोगों को भी इसके लिए प्रेरित किया। मुझे इसकी पूरी जानकारी है। पर उसका उल्लेख भी नानाजी के लिए कष्टकर होगा। जहां तक मेरा संबंध है, नानाजी जानते थे कि मैंने पहले ही शरीरदान का फार्म भर दिया है। मेरी मां ने 94 वर्ष की आयु में और बहन ने भी 70 वर्ष की आयु में शरीरदान किया था।

अब मुझे नानाजी से कुछ मस्खरापन करने की सूझी। मैंने कहा, “नानाजी, यह सब होते हुए भी मुझे शरीर दान करना गलत लगता है। आप चाहें तो मैं तर्कयुक्त यह बात सिद्ध कर सकता हूं।”

नानाजी ने मेरे चेहरे का हाव-भाव देखकर मेरा मानस समझ लिया। वे बच्चे की तरह खिल-खिलाकर हंस पड़े। चुटकी लेते हुए बोले, “दाभोलकर, पुणे की समाजवादी मंडली से व्यर्थ की

साक्षात् नानाजी

चर्चा में समय नहीं गंवाना चाहिए—यह बात मैंने बचपन में ही सीख ली थी। इसी कारण तो आज मैं यहां तक पहुंच पाया हूं।''

यह सब होते हुए भी मैं सोचता हूं कि क्या मैं सचमुच ही नानाजी को समझ पाया। कुछ लोग नानाजी को 'चाणक्य' कहते हैं तो कुछ चंद्रगुप्त। कुछ लोग उन्हें चाणक्य और चंद्रगुप्त की सम्मिलित प्रतिकृति समझते हैं। नानाजी समाज सुधारक थे या कृतिशूर विचारवंत?

ऐसे शब्दों के चक्रव्यूह में नानाजी के व्यक्तित्व का मूल्यमापन करने की भूल मैं कब का छोड़ चुका हूं। कारण, अपने लिए मैं अच्छी प्रकार समझ चुका हूं कि यह व्यक्ति ऐसे लचर शब्दों की चौखट में समानेवाला है ही नहीं—

यह विराट् व्यक्तित्व है आसमान जैसा असीम।

—दत्तप्रसाद दामोलकर

दो शब्द अनुवादक के

सन् 1978 में श्री नानाजी देशमुख ने सक्रिय राजनीति से संन्यास लेकर अपनी संपूर्ण शक्ति बुद्धि ग्राम विकास के प्रयोग में लगा दी। प्रथम प्रयोग के रूप में उन्होंने उ.प्र. के सर्वाधिक पिछड़े जिलों में से एक 'गोंडा' को चुना। गोंडा कृषि-प्रधान क्षेत्र होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से 'अति पिछड़ा' माना जाता था। कृषि विकास में सर्वाधिक बाधा थी सिंचाई के लिए पानी का अभाव।

राजकीय सर्वेक्षणों में गोंडा जिले में भूगर्भ-जल की कोई कमी नहीं थी। नानाजी ने सर्वप्रथम जिले भर में दो वर्ष की अवधि में 25 हजार नलकूप लगवाने का संकल्प लिया। स्वल्प अवधि में ही इतने बड़े प्रमाण में नलकूप लगवाने का काम लगभग असंभव सा लगता था। पर संकल्प और कर्तृत्व के धनी नानाजी ने इस असंभव को संभव कर दिखाया।

संपूर्ण देश में इस सफल प्रयोग के बारे में किसानों की ही नहीं, प्रबुद्ध जनसेवकों, सरकारी अधिकारियों के साथ ही पत्रकारों और वैज्ञानिकों में भी उत्सुकता पैदा कर दी। ऐसे अनेक विशिष्ट लोग इस प्रयोग को देखने-समझने के लिए गोंडा में आने लगे। ऐसे ही महानुभावों में एक अनुसंधानरत वैज्ञानिक गोंडा पधारे। वे थे सतारा जिला महाराष्ट्र के निवासी एवं श्रीराम इंस्टीट्यूट फॉर इंडस्ट्रियल रिसर्च में उच्च पदस्थ अधिकारी श्री दत्तप्रसाद दाभोलकर।

मेरी उनकी प्रथम भेंट गोंडा में ही हुई। उनकी जिज्ञासा थी कि एक राजनीति निपुण व्यक्ति (नानाजी देशमुख) ने कृषि क्षेत्र में इतनी बड़ी सफलता कैसे पाई? दूसरी ओर मेरी उत्सुकता थी, एक विज्ञान विशारद व्यक्ति को इतनी दूर आकर ग्राम विकास के इस 'गोंडा प्रकल्प' देखने समझने की उत्कंठा क्यों हुई?

जो भी हो, एक सप्ताह तक उन्होंने गोंडा के ग्रामों का भ्रमण कर कार्यकर्ताओं से साक्षात्कार कर इस प्रकल्प का सूक्ष्म अध्ययन किया और लौटकर अपनी मातृभाषा मराठी में पूरे विवरण सहित एक पुस्तक लिख डाली। इस पुस्तक का नाम था 'प्रकाश वाटा'। महाराष्ट्र सरकार की ओर से इस पुस्तक को पुरस्कृत भी किया गया।

श्री नानाजी को पुस्तक भेंट करते हुए श्री दाभोलकरजी ने कहा, "नानाजी, आप नाराज न होना। मैंने आपके प्रयोग की समीक्षा करते हुए इस पुस्तक में अनेक त्रुटियों का भी उल्लेख किया है।" मुसकराते हुए नानाजी ने कहा, "मैं हमेशा अपनी कमियों को समझने का प्रयास

करता हूँ। आपने ऐसा करके मेरा बहुत उपकार किया है। बहुत अनुगृहीत हूँ मैं।''

इस छोटी सी भेंट ने वैचारिक दृष्टि से दो धुवों को एक साथ मिला दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समर्पित, पूर्णकालिक प्रचारक श्री नानाजी और संघ की वैचारिक पृष्ठभूमि से पूर्णतः मतभेद रखनेवाले समाजवादी—डॉ. राम मनोहर लोहिया और मधु लिमये के अनुयायी श्री दाभोलकर प्रगाढ़ मैत्री में आबद्ध हो गए। इस साक्षात्कार की भूमिका के प्रारंभ में ही स्पष्ट रूप से यह लिखा, ''मैं संघ परिवार का सदस्य नहीं। नानाजी मेरी तुलना में उम्र में, ज्ञान में, अनुभव एवं अधिकार में मुझसे सौ गुना बड़े थे। फिर भी मैं नानाजी का नजदीकी मित्र बन गया। यह कैसे संभव हो पाया—इसका मेरे अनेक मित्रों सहित मुझे भी बहुत आश्चर्य होता है।'' इन दोनों महानुभावों की आत्मिक प्रगाढ़ता का अनुभव तो पाठकों को इस साक्षात्कार के पठन से सहज ही हो सकेगा।

मा. नानाजी के देहावसान के बाद यह मांग उठने लगी कि उनके विचार और कृतित्व की जानकारी साहित्य प्रकाशन के द्वारा उपलब्ध कराई जाए। इसी कड़ी में मित्रवर देवेंद्र स्वरूपजी ने यह सुझाव दिया कि श्री दाभोलकरजी के साक्षात्कार का प्रकाशन भी बहुत उपयोगी होगा। उन्होंने दाभोलकरजी से इसकी अनुमति भी प्राप्त कर ली।

यह पूरा आलेख मराठी में ही प्रकाशित था। हिंदीभाषी पाठकों के लिए इसका अनुवाद करना आवश्यक हो गया। मैंने स्वयं ही यह दायित्व स्वीकार तो कर लिया, पर एक सिद्धहस्त मराठी लेखक की विशिष्ट शैली में लिखा गया यह वार्तालाप उसकी भाव-भावनाओं को सुरक्षित रखते हुए हिंदी में भाषांतरित करने में मेरी तो एक प्रकार से परीक्षा ही हो गई। शारीरिक अस्वस्थता भी इसमें आड़े आई। पर मैंने इस छोटे से साक्षात्कार में नानाजी के समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व की अभिव्यक्ति देखी। भगवत कृपा से यह काम पूरा हो गया। इस अनुवाद को मैंने मान्यवर लेखक महोदय के पास भेजकर इसमें आवश्यक सुधार करने का आग्रह किया। प्रत्युत्तर में उनका फोन आया, ''हार्दिक अभिनंदन। मैंने अपने हिंदीभाषी मित्रों को पढ़ने के लिए दिया। उनका कहना है कि शाब्दिक अनुवाद तो कोई भी लेखक कर सकता है, पर आपकी विशिष्ट शैली और भाव-भावनाओं को इस अनुवाद में पूर्णतः सुरक्षित रखा गया है।''

अब यह अनुवादित साक्षात्कार आपके हाथों में है। वैचारिक मतभिन्नता होते हुए भी श्री दाभोलकर मा. नानाजी के विचार और कार्यों से कितने अभिभूत थे—इसका अनुभव पाठक वर्ग लेखक द्वारा नानाजी के निधन के बाद उनके बारे में लिखे गए एक लेख की इन अतिम पंक्तियों से ही कर सकेंगे—

''नानाजी क्या थे? चाणक्य? या जैसा कुछ लोग कहते हैं—चाणक्य और चंद्रगुप्त दोनों की प्रतिभा का समन्वित रूप? या नानाजी थे एक समाज सुधारक अथवा कर्तृत्ववान चिंतक? सच कहें तो ऐसे शब्दजाल में उलझकर मैंने नानाजी को समझने का प्रयास बहुत पहले ही छोड़ दिया है। कारण, मेरी अपनी समझ में यह धारणा निश्चित रूप से पैठ चुकी है कि नानाजी नामक व्यक्ति शब्दों के घेरे में समाविष्ट हो ही नहीं सकता। वह व्यक्तित्व है आकाश जैसा विशाल।''

—यादव राव देशमुख



समग्र विकास के माध्यम से समग्र क्रांति

20 अप्रैल, 1978

बड़ी चिंता की बात है कि वार्षिक परीक्षाओं के समय भी देश के अधिकांश विश्वविद्यालय उग्र छात्र-आंदोलनों के फलस्वरूप बंद पड़े हैं। राष्ट्र की युवा पीढ़ी के मन में व्याप्त निराशा और अशांति का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है? इसे मात्र अनुशासनहीनता कहकर टाला नहीं जा सकता। युवा पीढ़ी को आंदोलन और विध्वंस के रास्ते से अलग करने का उपाय दमन का मार्ग नहीं, अपितु उसकी कर्म शक्ति को राष्ट्र-निर्माण के रचनात्मक कार्यों में प्रवाहित करना है। भारत के राजनीतिक नेतृत्व को आज खुले मन से यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि युवा पीढ़ी की कर्मशक्ति को रचनात्मक दिशाओं में प्रवाहित करने की दृष्टि से उसके द्वारा पिछले 30 वर्षों में कोई ठोस प्रयास नहीं हुआ है।

हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि आपातकालीन अधिनायकवाद के विरुद्ध संघर्ष में लोकतंत्र की विजय-पताका को फहराने में लोकनायक जयप्रकाशजी के व्यक्तित्व के साथ युवा पीढ़ी का ही सर्वाधिक योगदान रहा है। युवा पीढ़ी ही उस वोट-क्रांति का मुख्य वाहक बनी, जिसके फलस्वरूप केंद्र में सत्ता-परिवर्तन का कल्पनातीत चमत्कार घटित हो सका और जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई। यह एक युग-परिवर्तन था, जिसने नई पीढ़ी के मन में राष्ट्र-निर्माण के प्रति अदम्य उत्साह, उमंग और आत्मविश्वास का संचार किया था। किंतु यह बहुत पीड़ा और चिंता की बात है कि गत एक वर्ष में हम उस उमंग और उत्साह को रचनात्मक दिशा नहीं दे पाए। आज वह पुनः आंदोलन तथा विध्वंस के रास्ते पर भटक गई है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् संपूर्ण सार्वजनिक जीवन सत्ता राजनीति के दायरे में सिमट गया है। स्वाधीनता के पूर्व गांधीजी की प्रेरणा से जो रचनात्मक राजनीतिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी, वह भी स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात्, उपेक्षावश बिलकुल सूख गई। रचनात्मक कार्यों की उपेक्षा का ही परिणाम है कि एक ओर तो हम विगत तीस वर्षों में राष्ट्र जीवन के किसी भी क्षेत्र में कोई मौलिक रचना खड़ी नहीं कर पाए, दूसरी ओर संपूर्ण सार्वजनिक जीवन

जनता पार्टी के महामंत्री संसद सदस्य श्री नानाजी देशमुख द्वारा पत्रकार सम्मेलन में प्रसारित वक्तव्य (सक्रिय राजनीति छोड़ रचनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर होते हुए नानाजी ने यह वक्तव्य दिया था।)

सत्ताभिमुखी राजनीति का बंदी बन गया। ऐसी स्थिति में युवा पीढ़ी की रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलती भी तो कहां से और कैसे? युवा पीढ़ी की कर्मशक्ति को रचनात्मक दिशाओं में प्रवाहित करने के लिए आवश्यक था कि राष्ट्र के वरिष्ठ एवं प्रभावशाली राजनेता स्वयं रचनात्मक कार्य का उदाहरण प्रस्तुत करते और उसमें युवा पीढ़ी को सहभागी बनाते।

युवा पीढ़ी को राष्ट्र-निर्माण के कार्य में सम्मिलित करने के लिए आवश्यक है कि हम राजनीतिज्ञ अपने आचरण के द्वारा यह सिद्ध करें कि सत्ता हमारे लिए साध्य न होकर राष्ट्र-निर्माण का एक रचनात्मक साधन है। यह तभी हो सकता है जब हममें से कुछ वरिष्ठ अनुभवी राजनेता स्वेच्छा से सत्ता को त्यागकर रचनात्मक कार्यों में जुटें। एक साधारण राजनीतिक कार्यकर्ता होते हुए भी मेरे मन में यह विचार इतना प्रबल होता जा रहा है कि अब मैं उसे दबा सकने में असमर्थ हूं।

मुझे लगता है कि जीवन के 60 वर्ष पूर्ण कर लेने के बाद भी मैं केवल राजनीतिक कार्य में लगा रहूँ, यह ठीक नहीं है। अब मुझे अपना शेष जीवन रचनात्मक कार्यों में लगाना चाहिए। देश में व्याप्त बेकारी, गरीबी और आर्थिक तथा सामाजिक विषमता सीमा पार कर चुकी है। केवल क्रांतिकारी नारे, चुनावी रणनीति, संसदीय गतिविधि एवं विध्वंसात्मक आंदोलन के माध्यम से यह समस्या कदापि हल नहीं होगी। इसका एक ही उपाय है कि उत्पादन को बढ़ाने तथा बेकार हाथों को काम देने के लिए देश की स्थिति के अनुरूप उपयुक्त तकनीकी का विकास रचनात्मक प्रयोगों के माध्यम से किया जाए। वस्तुतः आज हमारा राष्ट्रीय मिशन होना चाहिए 'समग्र विकास के माध्यम से समग्र क्रांति'। अब यही मेरा जीवन-व्रत रहेगा। मेरे इस रचनात्मक अभियान की आधार होगी देश की युवाशक्ति। विश्वास है कि इस रचनात्मक पथ पर बढ़ते समय मेरे समस्त सहयोगियों एवं देश के समस्त नागरिकों का शुभाशीर्वाद मुझे सतत प्राप्त होता रहेगा।

□□□